Advance Educational Psychology

MAE-202

Self Learning Material

Directorate of Distance Education

SWAMI VIVEKANAND SUBHARTI UNIVERSITY

MEERUT-250005

UTTAR PRADESH

विषय-सूची

इकाई (Units) (CONTENTS) पृष्ठ संख्या (Page No.)

1.	व्यक्तित्व और मनोविज्ञान	1
2.	विशिष्ट बालकों की शिक्षा	85
3.	व्यक्तित्व का मूल्यांकन	100
4.	मानसिक स्वास्थ्य	115

Syllabus

UNIT-I

- ❖#Personality: Concept, development, structure and dynamics of personality
- ❖#Theories of Personality – Allport, Eysenck; Psychoanalytic approach of Freud, Erickson;
- ❖#Behavioural approach – Miller, Dollard and Bandura, Humanistic approach – Rogers, Maslow

UNIT-II

- ❖#Exceptional Children II: Identification, Characteristics and Education of Creative and Learning Disable Children.

UNIT-III

- ❖#Assessment of Personality – Techniques:
- ❖#Personality inventories – rating scales
- ❖#Projective techniques : Rorchach, TAT

UNIT-IV

- ❖#Adjustment and Mental Health:
- ❖#Concept, mechanism of adjustment – defence; escape, withdrawal, compensatory.
- ❖#Introduction to common forms of neuroses, psychosis and somatic disorders
- ❖#Principles of mental hygiene – preventive, constructive, curative measures,
- ❖#Implications for education

Practicum: (any one)

- ❖#Prepare two case studies regarding various factors of personality
- ❖#Organize a programme for mental health and report the outcomes

अध्याय-1

व्यक्तित्व और मनोविज्ञान

नोट

(Structure)

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 व्यक्ति के अर्थ एवं प्रकृति
1.4 व्यक्ति की परिभाषाएँ (अर्थ)
1.5 व्यक्ति के पक्ष
1.6 व्यक्ति की विशेषताएँ
1.7 व्यक्ति के प्रकार उपागम
1.8 व्यक्ति के गुण उपागम
1.9 व्यक्तित्व की अवधारणा
1.10 व्यक्तित्व विकास का अर्थ
1.11 व्यक्तित्व विकास की अवस्थाएँ
1.12 व्यक्तित्च विकास को प्रभावित करने वाले कारक
1.13 व्यक्ति का संप्रत्यय
1.14 फ्रायड का व्यक्तित्व सिद्धान्त
1.15 इरिक इरिक्सन: व्यक्ति का मनोसामाजिक सिद्धान्त
1.16 केरेन हार्नी का व्यक्तित्व सिद्धान्त
1.17 सुल्लीवान का व्यक्तित्व सिद्धान्त
1.18 एडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त
1.19 इरिक फ्रोम का व्यक्तित्व सिद्धान्त
1.20 केरेन हार्नी का व्यक्तित्व सिद्धान्त
1.21 बेन्डुरा का व्यक्तित्व सिद्धान्त
1.22 पावलोव का क्लासिकी अनुबन्धन सिद्धान्त
1.23 स्किनर का क्रियाप्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त
1.24 मैस्लो का आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त
1.25 रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त
1.26 मिलर एवं डोलार्ड का व्यक्तित्व सिद्धान्त
1.27 गॉर्डन आलपोर्ट : व्यक्ति का शीलगुण सिद्धांत
1.28 टाइप ए तथा बी व्यक्ति सिद्धांत

नोट

1.29 व्यक्ति के शीलगुण उपागम
1.30 आइजेन्क का व्यक्ति सिद्धांत
1.31 सारांश
1.32 अभ्यास प्रश्न
1.33 संदर्भ पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे–

- व्यक्ति का अर्थ एवं प्रकृति जान पायेंगे;
- व्यक्ति की विभिन्न विशेषताओं को समझ सकेंगेँ;
- व्यक्ति की भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणा को समझ सकेंगे;
- व्यक्ति विकास का अर्थ समझ पायेंगे;
- व्यक्ति के शब्दिक अर्थ को समझ सकेंगे:
- व्यक्ति की मनोगत्यात्मक विचारधारा को समझ सकेंगे:
- व्यक्ति की सामाजिक विचारधारा को समझ सकेंगे;
- पावलोव के क्लासिकी अनुबन्धन के विभिन्न संप्रत्ययों को समझ सकेंगे;
- स्किनर के क्रियाप्रसूत अनुबन्धन के विभिन्न संप्रत्ययों को समझ सकेंगे;
- मिलर एवं डोलार्ड के व्यक्तित्व सिद्धान्त को समझ सकेंगे,
- आलपोर्ट के व्यक्ति सिद्धांत के बारे में जानेंगे;
- आइजेन्क के व्यक्ति सिद्धांत को समझेंगे।
- व्यक्ति के पांच कारकीय सिद्धांत को बता सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

यद्यपि व्यक्ति शब्द बहुत व्यापक है और व्यक्ति शब्द का प्रयोग हम विभिन्न अर्थ में किया करते है। जब हम किसी व्यक्ति के बारे में कहते है 'मोहन का व्यक्ति अच्छा है' तब प्राय: इसका अर्थ साधारण जन शारीरिक रचना, सुन्दरता इत्यादि से लेते है, कुछ लोग किसी व्यक्ति के विचारों के प्रकटीकरण के आधार पर उसे अच्छा कहते है। कुछ उसे अन्य के साथ किए जाने वाले व्यवहार के आधार पर अच्छा कहते है कुछ लोग उससे यह सब गुण देखना चाहते है अर्थात् 'व्यक्तित्व अत्यन्त व्यापक शब्द है जिसे हमें उसके उद्‌गम से समझने की आवश्यकता है। तभी हम इसकी प्रकृति, विशेषताओं को उसके उपागमों को समझ सकेंगे। प्रस्तुत अध्याय इन्हीं सभी मुद्दों पर प्रकाश डाल रहा है।

व्यक्ति की व्याख्या के लिए जो दूसरा दृष्टिकोण सामने आया उसे तात्विक दृष्टिकोण (Substance view) कहते है। यह दृष्टिकोण व्यक्ति के आन्तरिक गुणों को महत्त्व देता है। वारेन एवं कारमाइकल इसके समर्थक हैं। इनके अनुसार विकास की किसी भी अवस्था में व्यक्ति का समग्र मानसिक संगठन ही उसका व्यक्तित्व है। इसमें

व्यक्ति के चरित्र के सभी आयाम, बुद्धि, स्वभाव, कौशल, नैतिकता एवं अभिवृत्तियाँ इत्यादि, जो कि विकासात्मक प्रक्रियाओं के कारण प्रदर्शित होती है, सम्मिलित है।

नोट

इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि व्यक्ति की व्याख्या या तो बाह्य आभास या स्वाभाविक गुणों के आधार पर करने का प्रयास लम्बे समय तक होता रहा है। परन्तु इनमें से कोई भी दृष्टिकोण उपयुक्त नहीं है। वास्तव में व्यक्ति के अन्तर्गत व्यक्ति की सम्पूर्ण विशेषता आती है उनमें पारस्परिक समन्वय पाया जाता है। समन्वय के अभाव में व्यक्ति की विशेषताओं का उपयोग तथा महत्त्व घट जाता है। क्योंकि व्यक्तित्व का प्रमुख कार्य समायोजन स्थापित करना है और इसके लिए समन्वय आवश्यक है।

सिसरो द्वारा उल्लेखित अर्थ – जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे पर्सोना (Persona) शब्द का अर्थ परिवर्तित होता चला गया। ईसा पूर्व पहली शताब्दी में रोम के प्रसिद्ध लेखक कूटनीतिज्ञ सिसरो (Persona) ने उसका प्रयोग चार अर्थ में किया - (1) जैसा कि एक व्यक्ति दूसरे को दिखाई देता है, पर जैसा कि वह वास्तव में नहीं है, (2) वह कार्य जो जीवन में कोई करता है, जैसे कि दार्शनिक (3) व्यक्तिगत गुणों का संकलन, जो एक मनुष्य को उसके कार्य के योग्य बनाता है और (4) विशेषता और सम्मान, जैसा कि लेखन शैली में होता रहा है। इस प्रकार तेरहवी शताब्दी तक पर्सोना शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता रहा।

समाज में 'व्यक्तित्व' एक अति प्रचलित शब्द है। यह ऐसा शब्द है जिसके स्वरूप के बारे में अनेकानेक दृष्टिकोण उपलब्ध है। विज्ञान ने उसे अपनी-अपनी दृष्टि से परिभाषित भी किया है। इस सम्प्रत्यय का अर्थ काफी व्यापक है। परन्तु इसके रूप के बारे में विज्ञान का विचार प्राय: संकीर्ण रहा है। इसीलिए व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक या खराब है। इससे वास्तव में व्यक्तित्व का सही चित्रण नहीं हो पाता है क्योंकि एक आकर्षक व्यक्ति का व्यक्तित्व खराब और एक अनाकर्षक व्यक्ति का व्यक्ति अच्छा भी हो सकता है। इसमें बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही प्रकार की विशेषताएँ पाई जाती है। इनमें समुचित समन्वय को व्यक्ति कहा जा सकता है। अत: व्यक्तित्व की विभिन्न अवधारणाओं, व्यक्तित्व विकास की अवस्थाओं और व्यक्ति विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करने की महत्ती आवश्यकता है।

व्यक्ति के स्वरूप की व्याख्या करने के लिए विभिन्न उपागमों के तहत कई सिद्धान्तों का प्रतिपादनि किया गया है। इन सैद्धान्तिक उपागमों में इस इकाई में मनोविश्लेषणात्मक या मनोगयामक सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे। मनोविश्लेषणात्मक उपागम का प्रतिपादन सिगमण्ड फ्रायड द्वारा किया गया था। इस उपागम में व्यक्ति की व्याख्या अचेतन मन की इच्छाओं, यौन एवं आक्रामकता के जैविक आधारों आरम्भिक बाल्यावस्था के मानसिक संघर्षों के आधार पर की गई है। साथ ही इरिक्सन, फ्रोम एव हार्नी ने व्यक्ति में जैविक कारकों के साथ-साथ सामाजिक कारकों की भूमिका पर भी जोर दिया।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति को परिभाषित करने, समझाने में विभिन्न विचारधाराओं का उपयोग किया है। फ्रायड की विचारधारा जहां अचेतन को मुख्य निर्धारक मानती थी, वहीं कुछ मनोवैज्ञानिक ऐसे भी थे जो प्रारम्भ में फ्रायड के साथ थे, किन्तु धीरे-धीरे कुछ बिन्दुओं पर उनकी विचारधारा में भिन्नता आई। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने फ्रायड के विचाराधारा से अलग अपने एक व्यक्तित्व सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इनमें अल्फ्रेड एडलर, कार्ल युग, एरक फ्रोम आदि प्रमुख थे। फ्रायड से कुछ समानताएँ एवं कुछ अलग विचार रखने वाले इन मनोवैज्ञानिकों को मनोवैज्ञान में नवफ्रायडवाद या नवविश्लेषणवाद के नाम से जाना जाता है।

पावलोव व स्किनर के सिद्धान्त मनोविज्ञान के व्यवहारवादी विचारधारा को सामने रखते है। इनके अनुसार मानव मूलतः बाह्य एवं वस्तुनिष्ठ कारकों से प्रभावित होता है इन कारकों के अभाव में मानव व्यवहार को सही

रूप में समझना संभव नहीं है। व्यवहारवादी व्यक्ति को स्पष्ट दिखने वाले ओवर्ट बीहेवियर के आधार पर ही समझने का प्रयास करते है।

मिलर एवं डोलार्ड का सिद्धान्त एक अन्तरशास्त्रीय उपागम है जिसमें एक मनोवैज्ञानिक नील मिलर एवं एक समाजशास्त्री जॉन डोलार्ड के विचारों का संगम है। यह सिद्धान्त अधिगम सिद्धान्तों, मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों तथा व्यवहार को समझने में अंर्तदृष्टि तीनों का समावेश किया गया है। इस सिद्धान्त में उद्दीपक एवं अनुक्रिया के मध्य स्थापित संबंध या साहचर्य पर अधिक बल डाला गया है। इसी कारण इसे उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त भी कहा जाता है।

नोट

व्यक्तित्व सिद्धांत से तात्पर्य संबंधित पूर्वकल्पनाओं के एक ऐसे समूह से होता है जिनसे तार्किक निगमनात्मक विवेचन द्वारा जांचनीय प्राक्कल्पना बनायी जा सकती है तथा जिनसे प्रेक्षणों को एक संगिठत रूप मिलता है शोध की उत्पत्ति होती है, व्यवहारों का मार्गदर्शन होता है एवं मानव व्यवहार में संगति की व्याख्या होती है। प्रस्तुत इकाई में आप आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धांत तथा टाइप ए एव बी व्यक्ति सिद्धांत का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। 1

व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक गुणों का वह गत्यात्मक संगठन है जो व्यक्ति के वातावरण के प्रति अपूर्व समायोजन को निर्धारित करता है। व्यक्ति अध्ययन के लिए अन्य-अन्य सिद्धान्तों/उपागमों का विकास हुआ। प्रस्तुत इकाई में आप आइजेन्क का व्यक्तित्व सिद्धान्त तथा व्यक्ति का वह वृहद पांच कारकीय सिद्धांत का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

1.3 व्यक्ति के अर्थ एवं प्रकृति

व्यक्ति संबंधी उपर्युक्त धारणायें उसके अर्थ की पूर्ण व्याख्या नहीं करती है। 'व्यक्तित्व' में एक मनुष्य के न केवल शारीरिक गुणों का वरन् उसके सामाजिक गुणों का भी समावेश होता है, किन्तु इतने से भी व्यक्ति का अर्थ पूर्ण नहीं होता है। कारण यह है कि यह तभी सम्भव है, जब एक समाज के सब सदस्यों के विचार, संवेगों के अनुभव और सामाजिक क्रियाएँ एक सी हों। ऐसी दशा में व्यक्तित्व का प्रश्न ही नहीं रह जाता है। इसीलिए, मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि व्यक्तित्व - मानव के गुणों, लक्षणों, क्षमताओं, विशेषताओं आदि की संगिठत इकाई है। मन के शब्दों में -"व्यक्ति की परिभाषा, व्यक्ति के ढाँचे, व्यवहार की विधियों, रुचियों, अभिवृत्तियों, क्षमताओं, योग्यताओं और कुशलताओं के सबसे विशिष्ट एकीकरण के रूप में की जा सकती है।"

"Personality may be defined as the most characteristic integration of an individual's structure, modes of behavior, interest, attitudes, capacities, abilities and aptitudes"

आधुनिक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति को संगिठत इकाई न मानकर गतिशील संगठन और एकीकरण की प्रक्रिया मानते है। इस संबंध में **शार्प** व **शगलर** ने लिखा है - "जटिल पर एकीकृत प्रक्रिया के रूप में व्यक्तित्व की धारणा आधुनिक व्यावहारिक मनोविज्ञान की देन है। "

"The concept of personality as complex but unified process is contribution of modern empirical psychology"

1.4 व्यक्ति की परिभाषाएँ (अर्थ)

व्यक्ति की कुछ आधुनिक परिभाषाएँ दृष्टव्य है -

बिग व **हट** - "व्यक्तित्व एक व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमान और इसकी विशेषताओं के योग का उल्लेख करता है।"

"Personality refers to the whole behavioral pattern of an individual-to the totality of its characteristics." —**Bigge & Hunt**

आलपोर्ट - ''व्यक्तित्व व्यक्ति में उन मनोशारीरिक अवस्थाओं का गतिशील संगठन है, जो उसके पर्यावरण के साथ उसका अद्वितीय सामंजस्य निर्धारित करता है। ''

नोट

"Personality is the dynamic organization within the individual of those psychophysical systems that determine the unique adjustments in his environment." —**Allport**

ड्रेवर -''व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग, व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक नैतिक और सामाजिक गुणों के सुसंगठित और गत्यात्मक संगठन के लिए किया जाता है, जिसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन के आदान प्रदान में व्यक्त करता है।''

"Personality is a term used for the integrated and dynamic organization of the physical, mental, moral and social quality of the individual, as that manifests itself to other people, in the give and take of social life." —**Drever**

व्यक्तित्व, व्यक्ति के विषय में एक समग्र धारणा है। **डेविल** ने कहा है - ''व्यक्तित्व व्यक्ति के संगिठत व्यवहार का सम्पूर्ण चित्र होता है। '' (A man's personality is the total picture of his organized behavior. Deshiell) **बीसौंज** की धारणा है - ' व्यक्तित्व, मनुष्य की आदतों, दृष्टिकोणों तथा विशेषताओं का संगठन है। यह जीवशास्त्र सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों में संयुक्त उपक्रम द्वारा उत्पन्न होता है। ''

"Personality is the organization of person's habits, attitudes and traits arises from the interplay of biological social and cultural factors." — **Biesonj and Biesonj**

मन ने कहा है -''व्यक्तित्व एक व्यक्ति के व्यवहार के तरीकों, रुचियों, दृष्टिकोणों, क्षमताओं, योग्यताओं तथा अभिरुचियों का सबसे विशिष्ट संगठन है।''

"Personality may be defined as the most characteristic integration of an individual's structure, modes of behavior, interest, attitudes, capacities, abilities and aptitudes."

— **N.L. Munn**

1.5 व्यक्ति के पक्ष

व्यक्ति के बारे में निम्नांकित पक्षों का उल्लेख किया जा सकता है -

1. **गत्यात्मक संगठन** (Dynamic Organization) – यह अवधारणा यह इंगति करती है कि व्यक्तित्व प्रतिमान सतत् रूप में विकसित तथा परिवर्तित होते रहते है ताकि समायोजन स्थापित होता रहे। अर्थात् व्यक्ति गत्यात्मक होता है।
2. **संगठन एवं व्याख्या** (Organization of System) – ये सम्प्रत्यय यह इंगति करते है कि व्यक्तित्व में अनेक घटक पाये जाते हैं और वे परस्पर अन्तर संबंधित तथा संगिठत होते हैं।
3. **मनोदैहिक** (Psychophysical) – इसका आशय यह है कि व्यक्तित्व में मानसिक तथा शारीरिक (स्नायुविक) दोनों प्रकार के कारकों का समावेश होता है। अर्थात् मन और शरीर के संकार्य (Operations) परस्पर मिश्रित रूप में संगिठत होकर कार्य करते है।

नोट

4. **निर्धारित करना** (Determine) – **आलपोर्ट** का कहना है कि व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण करता है। व्यक्ति के कार्य या व्यवहार के पीछे उसका व्यक्ति ही होता है।

5. **परिवेश के प्रति विशिष्ट समायोजन** (Unique Adjustment to Environment) – किसी परिस्थिति या परिवेश में व्यक्ति द्वारा किया गया समायोजी या अनुकूलन व्यवहार विशिष्ट या अनौखा होता है। किसी परिस्थिति में लोगों के व्यवहार में कुछ न कुछ विशिष्टता (अन्तर) अवश्य पाई जाती है। इसीलिए व्यक्ति के समायोजन को विशिष्ट या अनौखा कहा जाता है।

1.6 व्यक्ति की विशेषताएँ

व्यक्तित्व शब्द में अनेक विशेषताएँ निहित होती है। व्यक्तित्व में निम्न विशेषताओं को देखा जाता है –

1. **आत्म चेतना** (Self Consciousness) – व्यक्तित्व की पहली और मुख्य विशेषता है – आत्म चेतना। इसी के कारण मानव को सब जीवधारियों में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जाता है और उसके व्यक्तित्व की उपस्थिति को स्वीकार किया जाता है। पशु और बालक में आत्म-चेतना न होने के कारण यह कहते हुए कभी नहीं सुना जाता है कि इस कुत्ते या बालक का व्यक्तित्व अच्छा है। जब व्यक्ति यह जान जाता है कि वह क्या है, समाज में उसकी क्या स्थिति है, दूसरे उसके बारे में क्या सोचते है– तभी उसमें व्यक्ति का होना स्वीकार किया जाता है।

2. **सामाजिकता** (Sociability) – व्यक्ति की दूसरी विशेषता है– सामाजिकता। समाज से पृथक मानव और उसके व्यक्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। मानव में आत्म-चेतना का विकास तभी होता है, जब वह समाज के अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर क्रिया और अन्त:क्रिया करता है। इन्हीं क्रियाओं के फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। अत: व्यक्तित्व में सामाजिकता की विशेषता होनी अनिवार्य है।

3. **सामन्जस्य** (Adjustability) – व्यक्ति की तीसरी विशेषता है-सामन्जस्यता। व्यक्ति को ये केवल बाह्य वातावरण से ही नहीं, वरन् अपने स्वयं के आन्तरिक जीवन से भी सामंजस्य करना पड़ता है। सामंजस्य करने के कारण उसके व्यवहार में परिवर्तन होता है और फलस्वरूप उसके व्यक्ति में विभिन्नता दृष्टिगोचरर होती है। यही कारण है कि चोर, डाकिये, पत्नी, डॉक्टर आदि के व्यवहार और व्यक्ति में अन्तर मिलता है। वस्तुत: मानव को अपने व्यक्तित्व को अपनी दशाओं, वातावरण, परिस्थतियों आदि के अनुकूल बनाना पड़ता है।

4. **निर्देशित लक्ष्य प्राप्ति** (Goal Directedness) – व्यक्ति की चौथी विशेषता है - निर्देशित लक्ष्य की प्राप्ति। मानव के व्यवहार का सदैव एक निश्चित उद्देश्य होता है और वह सदैव किसी-न-किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संचालित किया जाता है। उसके व्यवहार और लक्ष्यों से अवगत होकर हम उसके व्यक्ति का सहज ही अनुमान लगा सकते है। इसीलिए ''व्यक्ति या व्यक्तित्व को समझने के लिए हमें इस बात पर विचार करना हो जाता है कि उसके लक्ष्य क्या है और उसे उनका कितना ज्ञान है।''

5. **दृढ़ इच्छा शक्ति** (Strong will power) – व्यक्ति की पांचवी विशेषता है - दृढ़ इच्छा शक्ति। यही शक्ति व्यक्ति को जीवन की कठिनाइयों से संघर्ष करके अपने व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाने की क्षमता प्रदान करती है। इस शक्ति की निर्बलता उसके जीवन को अस्त-व्यस्त करके उसके व्यक्ति को विघटित कर देती है।

6. **शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य** (Physical & Mental Health) – व्यक्ति की छठवीं विशेषता है - शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य। मनुष्य मनो-शारीरिक (Psycho-Physical) प्राणी है। अत: उसके अच्छे व्यक्तित्व के लिए अच्छे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का होना एक आवश्यक शर्त है।

7. **एकता व एकीकरण** (Unity & Integration) – व्यक्तित्व की सातवीं विशेषता है – एकता व एकीकरण। जिस प्रकार व्यक्ति के शरीर का कोई अवयव अकेला कार्य नहीं करता है, उसी प्रकार व्यक्ति का कोई तत्व अकेला कार्य नहीं करता है। ये तत्व है - शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि। व्यक्ति के इन सभी तत्वों में एकता या एकीकरण होता है। ''व्यक्ति मानव की सब शक्तियों और गुणों का संगठन व एकीकरण है। ''

8- **विकास की निरंतरता** (Developmental Continuity) – व्यक्ति की अन्तिम किन्तु महत्त्वपूर्ण विशेषता है– विकास की निरन्तरता। उसके विकास में कभी स्थिरता नहीं आती है। जैसे-जैसे व्यक्ति के कार्यों, विचारों, अनुभवों, स्थितियों आदि में परिवर्तन होता जाता है, वैसे-वैसे उसके व्यक्ति के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। विकास की यह निरन्तरता शैशवावस्था से जीवन के अन्त तक चलती रहती है। ऐसा समय कभी नहीं आता है, जब यह कहा जा सके कि व्यक्ति का पूर्ण विकास या पूर्ण निर्माण हो गया है। इसीलिए, **गैरसन** व अन्य ने लिखा है - ''व्यक्तित्व निरन्तर निर्माण की क्रिया में रहता है।'

''Personality is constantly in the process of becoming'' –**Gerrison & others**

1.7 व्यक्ति के प्रकार उपागम

प्रकार सिद्धान्त व्यक्ति का सबसे पुराना सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को खास-खास प्रकार (Type) में बांटा जाता है और उसके आधार पर उसके शीलगुणों का वर्णन किया जाता है। मार्गन, किंग, बिस्ज तथा स्कौपलर (Mogan, King, Weisz & Schopler, 1986) के अनुसार व्यक्तित्व के प्रकार से तात्पर्य ''व्यक्तियों के ऐसे वर्ग (class) से होता है जिनके गुण एक-दूसरे से मिलते जुलते है। '' जैसे अन्तर्मुखी (introvert) एक प्रकार है और जिन व्यक्तियों को उसमें रखा जाता है उनमें कुछ सामान्य गुण जैसे लज्जालुपना (shyness), सामाजिक कार्यों में अरुचि, लोगों से कम बोलना या मिलना-जुलना आदि पाये जाते है।

यदि व्यक्तित्व के अध्ययन का इतिहास पर ध्यान दिया जाए, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि आज से 2000 वर्ष पहले भी इस सिद्धान्त के द्वारा व्यक्ति की व्याख्या की जाती थी। सबसे पहला प्रकार सिद्धान्त (Type theory) **हिप्पोक्रेटस** (Hippocrates) ने 400 बी.सी. में प्रतिपादित किया था। इन्होंने शरीर-द्रव्यों के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार है। इनके अनुसार हमारे शरीर में चार मुख्य द्रव (humors) पाये जाते है - पीला पित्त (yellow bile), काला पित्त (black bile), रक्त (blood) तथा कफ या श्लेष्मा (phlegm)। प्रत्येक व्यक्ति में इन चारों द्रवों में काई एक द्रव अधिक प्रधान होता है। और व्यक्ति का स्वभाव या चित्तप्रकृति (temperament) इसी की प्रधानता से निर्धारित होता है। जिस व्यक्ति में पीले पित्त की प्रधानता होती है, उस व्यक्ति की चित्तप्रकृति या स्वभाव चिड़िचड़ा (irritable) होता है और व्यक्ति प्राय: बेचैन (restless) दीख पड़ता है। ऐसे व्यक्ति तुनुकिमजाजी (hot-blooded) भी होते है। इस तरह के 'प्रकार' (Type) को हिप्पोक्रेट्स ने 'गुस्सैल' (choleric) कहा है। जब व्यक्ति में काले पित्त की प्रधानता होती है, तो वह प्राय: उदास तथा

नोट

नोट

मंदित (depressed) नजर आता है। इस तरह के प्रकार को विषादी' या 'निराशावादी' (melancholic) कहा गया है। जिस व्यक्ति में अन्य द्रवों की अपेक्षा रक्त (blood की प्रधानता होती है, वह प्रसन्न (cheerful) तथा खुशिमजाज होता है। इस तरह के व्यक्ति के 'प्रकार' को 'उत्साही' या 'आशावादी' (sanguine) कहा गया है। जिस व्यक्ति में कम या श्लेष्मा जैस द्रव की प्रधानता होती है, वह शांत (calm) स्वभाव का होता है तथा उसमें निष्क्रियता (inactiveness) अधिक पायी जाती है। इसमें भावशून्यता के गुण भी पाये जाते है। इस तरह के व्यक्ति के 'प्रकार' को विरक्त कहा गया है।

यद्यपि हिपोक्रेट्स का यह प्रकार सिद्धान्त अपने समय का एक काफी महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त था, फिर भी आज के मनोवैज्ञानिक द्वारा इसे पूर्णत: अस्वीकृत (reject) कर दिया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि व्यक्ति के शीलगुणों तथा उसकी चित्तप्रकृति का संबंध शारीरिक द्रवों (bodily fluids) से होने का कोई सीधा एवं वैज्ञानिक प्रमाण नहीं मिलता। इन मनोवैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि हिपोक्रेट्स द्वारा बताये गये शारीरिक द्रव सचमुच व्यक्ति में होते है या नहीं इसका भी कोई प्रमाण (evidence) नहीं मिलता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने प्रकार सिद्धान्त को मूलत: दो भागों में बांटकर उसके द्वारा व्यक्ति की व्याख्या की है। पहले भाग में व्यक्ति के शारीरिक गुणों (bodily characterstics) एवं उसके चित्तप्रकृति या स्वभाव (temperament) के संबंधों पर बल डाया गया है तथा दूसरे भाग में व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक गुणों (psychological characterstics) के आधार पर उसे भिन्न-भिन्न प्रकारों (types) में बांटकर अध्ययन करने की कोशिश की गई है। प्रकार सिद्धान्त (type theories) के इन दोनों भागों का वर्णन निम्नांकित है –

1. **शारीरिक गुण** (bodily characterstics) **के आधार पर** – शारीरिक गुणों के आधार पर प्रतिपादित प्रकार सिद्धान्त को शरीरगठन सिद्धान्त (constitutional type) कहा गया है।

   शारीरिक गुणों के आधार पर दो वैज्ञानिकों अर्थात् क्रेश्मर (Kretshmer) तथा शेल्डन (Sheldon) द्वारा किया गया व्यक्ति का वर्गीकरण काफी महत्त्वपूर्ण है। क्रेश्मर जो एक जर्मन मनोचिकित्सक थे, शारीरिक गुणों के आधार पर व्यक्ति के चार प्रकार बताए हैं। प्रत्येक प्रकार से संबंधित कुछ खास-खास शीलगुण भी है जिनसे संबंधित स्वभाव या चित्तप्रकृति का पता चलता है। क्रेश्मर ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन दो तरह के मानसिक रोग यानि मनोविदालिता एवं उत्साह विषाद से ग्रसित व्यक्तियों के प्रक्षेपण के आधार पर किया था। वे चार प्रकार निम्नांकित है–

   (i) **पिकनिक प्रकार** (Pyknic type) – ऐसे व्यक्ति का कद छोटा होता है तथा शरीर भारी एवं गोलाकार होता है। ऐसे लोगों की गर्दन छोटी एवं मोटी होती है। इस तरह के व्यक्ति के स्वभाव की कुछ खास-खास विशेषता होती है जैसे- ऐसे व्यक्ति सामाजिक (social) होते हैं, जो खाने पीने तथा सोने में काफी मजा लेते है तथा खुशिमजाज होते हैं। इस तरह के स्वभाव या चित्तप्रकृति (temperament) को क्रेश्मर ने साइक्लाआड (cyeloid) की संज्ञा दी है। ऐसे व्यक्तियों में मानसिक रोग उत्पन्न होने पर उत्साह-विषाद (manic depression) के लक्षण विकसित होने की संभावना अधिक होती है।

   (ii) **एस्थेनिक प्रकार** (Asthenic type) – इस तरह के व्यक्ति का कद लम्बा होता है, परन्तु वे दुबले-पतले शरीर के होते है। ऐसे व्यक्तियों के शरीर की मांसपेशियाँ विकसित नहीं होती है और शरीर का वजन उम्र के अनुसार होने वाले सामान्य वनज से कम होता है। ऐसे लोगों का स्वभाव कुछ चिड़िचड़ा होता है, सामाजिक उत्तरदायित्व से इनमें दूर रहने की प्रवृति

अधिक देखी जाती है, ऐसे व्यक्ति में दिवास्वप्न अधिक होता है तथा काल्पनिक दुनिया में भ्रमण करने की आदत इनमें अधिक तीव्र होती है। मानसिक रोग होने पर इनमें मनोविदालिता (schizophrenia) होने की संभावना तीव्र होती है। इस तरह की चित्तप्रकृति या स्वभाव को क्रेश्मर ने 'सिजोआड' (schizoid) की संज्ञा दी है।

नोट

(iii) **एथलेटिक प्रकार** (Athletic type) – इस प्रकार के व्यक्ति के शरीर की मांसपेशियां काफी विकसित एवं गठी होती हैं तथा शारीरिक कद न तो अधिक लम्बा और न तो अधिक छोटा ही होता है। इनका पूरा शरीर सुडोल एवं हर तरह से संतुलित दिखाई देता है। ऐसे व्यक्ति के स्वभाव में न तो अधिक चचंलापन और न अधिक मंदन (depression) ही होता है। ऐसे व्यक्ति बदलती हुई परिस्थिति के साथ आसानी से समायोजन (adjustment) कर लेते हैं। अत:, इन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा (social prestige) काफी मिलती है।

(iv) **डाइस्पलास्टिक प्रकार (Dysplastic type)** – इस श्रेणी में उन व्यक्तियों को रखा जाता है जिनमें ऊपर के तीन प्रकारों में किसी एक प्रकार का स्पष्ट गुण नहीं मिलता है बल्कि इन तीनों प्रकारों का गुण मिला-जुला होता है।

परन्तु बाद में क्रेश्मर के इस वर्गीकरण को कुछ मनोवैज्ञानिकों ने जैसे शेल्डन ने अपने अध्ययन के आधार पर बहुत वैज्ञानिक नहीं पाया और इसमें विधि (methodology) से संबंधित कई दोष पाए। इन्होंने यह भी कहा कि क्रेश्मर का यह वर्गीकरण मानसिक रोग से ग्रसित व्यक्तियों की व्याख्या करने में भले ही समर्थ हो, परन्तु सामान्य व्यक्तियों की व्याख्या करने में असमर्थ है। फलस्वरूप उन्होंने एक दूसरा सिद्धान्त बनाया जिसे सोमैटोटाइप (Somatotype) कहा जाता है।

शेल्डन ने 1940 में शरीरगठन (physique) के ही आधार पर एक दूसरा सिद्धान्त बनाया जिसे सोमैटोटाइप सिद्धान्त कहा गया। इन्होंने शारीरिक गठन के आधार पर व्यक्ति का वर्गीकरण करने के लिए 4000 कालेज छात्रों की नग्न तस्वीर (nacked pictures) का विश्लेषण कर यह बताया है कि व्यक्ति को मूलत: तीन प्रकार में बाँटा जा सकता है और प्रत्येक प्रकार के कुछ खास शीलगुण (traits) होते हैं जिनसे उसका स्वभाव या चित्तप्रकृति का पता चलता है। प्रत्येक प्रकार तथा उससे संबंधित शीलगुणों के बीच का सहसंबंध 0.78 से अधिक था जो अपने आप में इस बात का सबूत है कि प्रत्येक शारीरिक प्रकार तथा उससे संबंधित गुण आपस में काफी मजबूत है। शेल्डन द्वारा बताये वे तीन प्रकार तथा उससे संबंधित चित्तप्रकृति संबंधी गुण निम्नांकित हैं–

(i) **एण्ड्रोमार्फी** (Endromorphy) – इस प्रकार के व्यक्ति मोटे एवं नाटे होते है और इनका शरीर गोलाकार दीखता है। स्पष्ट है कि शेल्डन का यह 'प्रकार' क्रेश्मर के 'पिकनिक प्रकार' से मिलता-जुलता है। शेल्डन ने यह बताया कि इस तरह के शारीरिक गठन वाले व्यक्ति आरामपसंद, खुशिमजाज, सामाजिक तथा खाने-पीने की चीज में अधिक अभिरुचि दिखाने वाले होते हैं। ऐसे स्वभाव को शेल्डन ने 'विसरोटोनिया' (Viscerotonia) कहा है।

(ii) **मेसोमार्फी** (Mesomorphy) – इस प्रकार के व्यक्ति के शरीर की हड्डियाँ एवं मांसपेशियाँ काफी विकसित होती हैं तथा शारीरिक गठन काफी सुड़ौल होता है। ऐसे व्यक्ति के स्वभाव को सोमैटोटोनिया (Somatotonia) कहा गया है जिसमें जोखिम तथा बहादुरी का कार्य करने की तीव्र प्रवृति, दृढ़कथन, आक्रामकता आदि के गुण पाये जाते है। ऐसे लोग अन्य लोगों को

नोट

आदेश देने में अधिक आनन्द उठाते है। ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि मेसामार्फी बहुत कुछ क्रेश्मर का एथेलेटिक प्रकार से मिलता-जुलता है।

(iii) **एक्टोमार्फी** (Ectomorphy) – इस प्रकार के व्यक्ति का कद लम्बा होता है, परन्तु ऐसे व्यक्ति दुबले पतले होते है। इनके शरीर की मांसपेशियां अविकसित होती हैa और इनका पूरा गठन एकहरा होता है। इस प्रकार के व्यक्ति की चित्तप्रकृति को सेरीब्रोटिनिया कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति को अकेला रहना तथा लोगों से कम मिलना-जुलना अधिक पसंद आता है। ऐसे लोग संकोचशील और लज्जालू भी होते है। इनमें नींद संबंधी शिकायत भी पाई जाती है।

शेल्डन ने यद्यपि शारीरिक गठन को तीन प्रकारों में बांटा है, फिर भी इसे उन्होंने एक सतत् प्रक्रिया माना है। इसका मतलब यह हुआ कि इन तीनों तरह के शारीरिक गठन एवं उससे संबंधित शीलगुण आपस में बिल्कुल ही अलग-अलग नहीं होते। फलत: उन्होंने प्रत्येक शारीरिक गठन का मापन 1 से 7 तक की श्रेणियों में बाँटकर किया। दूसरे शब्दों में 4000 व्यक्तियों में प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक गठन का तीनों श्रेणियों में (1 से 7 तक में) श्रेणिकरण किया। यहां 1 श्रेणी से तात्पर्य 'सबसे कम तथा 7 श्रेणी से तात्पर्य 'सबसे अधिक' से है। जैसे जो व्यक्ति नाटा कद का है, परन्तु काफी मोटा तथा गोलाकार गठन का है, उसे एण्डोमार्फी पर 7 तथा अन्य दोनों श्रेणियों जैसे मेसामार्फी तथा एक्टोमार्फी पर 1-1 का श्रेणी दिया जाएगा। अत: इस तरह के व्यक्ति को शेल्डन ने 7-1-1 कहा है। उसी तरह संभव है कि कोई व्यक्ति को एक्टोमार्फी में 7 दिया जाए। स्वभावत: तब ऐसे व्यक्ति को मेसोमार्फी तथा एडोमार्फी में 1-1 दिया जाएगा। अत: इस तरह के व्यक्ति को 1-1-7 कहा जाएगा। शेल्डन ने 7-1-1 श्रेणी प्राप्त करने वाले व्यक्ति को प्रबल एण्डोमार्फी, 1-7-1 वाले व्यक्ति को प्रबल एक्टोमार्फी कहा है। शेल्डन ने बताया कि सबसे संतुलित व्यक्ति वाले व्यक्ति उन्हें कहा जाता है जिन्हें तीनों प्रकारों में बीच की श्रेणी यानी 4 प्राप्त होती है। अत:, शेल्डन के अनुसार संतुलित व्यक्ति वह है जिसका श्रेणीकरण 4-4-4 होता है।

2 **मनोवैज्ञानिक गुण के आधार पर** (on the basis of psychological characteristics) – कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति का वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर किया है। इनमें युंग (Jung), आईजेन्क तथा गिलफोर्ड का नाम अधिक मशहूर है। युंग ने व्यक्ति के निम्नांकित दो प्रकार बताए है –

(i) **बहिर्मुखी** (Extrovert) – इस तरह के व्यक्ति की अभिरुचि समाज के कार्यों की और विशेष होती है। यह अन्य लोगों से मिलना-जुलना पसंद करता है तथा प्राय: खुशिमजाज होता है। ऐसे व्यक्ति आशावादी (optimistic) होते हैं तथा अपना संबंध यथार्थता (realism) से अधिक और आदर्शवाद से कम रखते है। ऐसे लोगों को खाने-पीने की और भी अभिरुचि अधिक होती है। ऐसे लोग समाज के लिए काफी उपयोगी होते हैं।

(ii) **अन्तर्मुखी** (Introvert) – ऐसे व्यक्ति में बहिर्मुखी के विपरीत गुण पाये जाते है। इस तरह के व्यक्ति बहुत लोगों से मिलना-जुलना पसंद नहीं करते और उनकी दोस्ती कुछ ही लोगों तक सीमित होती है। इनमें आत्मकेन्द्रिता का गुण अधिक पाया जाता है। इन व्यक्तियों को अकेलापन अधिक पसंद होता है तथा ऐसे लोग रूढ़िवादी (conservative) होते हैं तथा पुराने रीति-रिवाज एवं नियमों का आदर करते है।

नोट

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा युंग के इन दो प्रकारों की आलोचना की है और इन लोगों ने कहा कि सभी लोग इन दोनों में किसी एक श्रेणी में आए, यह जरूरी नहीं है। कुछ लोगों में इन दोनों श्रेणियों के गुण पाए जाते है। फलस्वरूप, एक परिस्थिति में वे बहिर्मुखी के रूप में व्यवहार करते है। ऐसे व्यक्तियों को आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने उभयमुखी (ambivert) की संज्ञा दी है।

आईजेन्क (Eysenck, 1947) ने भी मनोवैज्ञानिक गुणों (psychological characteristics) के आधार पर व्यक्ति के तीन प्रकार बताए हैं। इन्होंने युंग के अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी सिद्धान्त की सत्यता की जांच करने के लिए 10000 सामान्य (normal) एवं तंत्रिका रोगियों (neuroties) पर अध्ययन किया और विशेष सांख्यिकीय विश्लेषण (statistical analysis) कर यह बताया कि व्यक्ति के निम्नांकित तीन प्रकार होते है जो द्विध्रुवीय है –

(i) अन्तर्मुखता-बहिमुर्खता – आइजेन्क ने युंग की अन्तर्मुखता तथा बहिमुर्खता के सिद्धान्त को तो स्वीकार किया, परन्तु युंग के समान उन्होंने इसे व्यक्ति का दो अलग-अलग प्रकार नहीं माना। उनका कहना था कि चूँकि ये दोनों प्रकार एक-दूसरे के विपरीत है, अत: इन्हें एक साथ मिलाकर रखा जा सकता है तथा एक ही मापनी बनाकर अध्ययन किया जा सकता है। चूँकि ऐसा नहीं होता है कि ये दोनों तरह के गुण एक व्यक्ति में अधिक या कम हों, अत: इसे आइजेन्क ने व्यक्ति का एक ही प्रकार या बिम्ब माना है जो द्विध्रुवीय है। जैसे किसी व्यक्ति में सामाजिकता अधिक है तथा वह लोगों से मिलना-जुलना अधिक पसंद करता है, तो यह कहा जाता है कि व्यक्ति इस बिम्ब की बहिमुर्खता पक्ष में ऊंचा है। दूसरी तरफ, यदि व्यक्ति अकेले रहना अधिक पसंद करता है, लज्जालु तथा संकोचशील भी है तो ऐसा कहा जाता है कि ऐसा व्यक्ति की अन्तर्मुखता पद में अधिक ऊँचा है।

(ii) स्नायुविकृति/स्थिरता (Neuroticism/stability) – आइजेन्क के अनुसार व्यक्ति का यह दूसरा प्रमुख प्रकार है। इस तरह के व्यक्ति में सांवेगिक नियंत्रण कम होता है तथा उनकी इच्छाशक्ति कमजोर होती है। इनके विचारों एवं क्रियाओं में मंदता पाई जाती है इनमें अन्य व्यक्तियों के सुझाव को चुपचाप स्वीकार कर लेने की प्रवृति अधिक होती है तथा इनमें सामाजिकता का अभाव पाया जाता है। ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्राय: अपनी इच्छाओं का दमन किया जाता है। स्नायुविकृति के दूसरे छोर पर स्थिरता होती है जिसकी और बढ़ने पर उक्त व्यवहारों या लक्षणों की मात्रा घटती जाती है और व्यक्ति में स्थिरता की मात्रा बढ़ती है।

(iii) मनोविकृति/सुपर ईगो की क्रियाएँ (Psychoticism/super ego function) – आइजेन्क ने व्यक्तित्व के इस प्रकार को बाद में किए गए शोध के आधार पर जोड़ा है। आइजेन्क ने इस प्रकार की व्याख्या करते हए कहा कि व्यक्ति का यह प्रकार मानसिक रोग की एक विशेष श्रेणी जिसे मनोविक्षिप्त रोग से पीड़ित व्यक्ति में मनोविकृति के गुण अधिक होंगे। आइजेन्क के अनुसार मनोविकृति वाले व्यक्ति के प्रकार में क्षीण एकाग्रता क्षीण स्मृति तथा क्रूरता का गुण अधिक होता है। इसके अलावा ऐसे व्यक्ति में असंवेदनशीलता, दूसरे के प्रति न के बराबर खयाल रखना, किसी प्रकार के खतरा के प्रति असतर्कता, सर्जनात्मकता की कमी आदि गुण पाये जाते है। मनोविकृति के दूसरे छोर पर सुपर ईगो की क्रियाएँ होती है। जैसे-जैसे इस छोर की और हम बढ़ते है, उक्त लक्षणों या व्यवहारों की मात्रा घटती जाती है तथा व्यक्ति में आदर्शत्व तथा नैतिकता की मात्रा बढ़ती जाती है।

इस तरह हम देखते है कि आइजेन्क के तीनों 'प्रकार' ध्रुव य है जिसका मतलब यह कदापि नहीं है कि अधिकतर व्यक्ति को दो छोरों में किसी एक छोर पर रखा जा सकता है। सच्चाई यह है कि प्रत्येक c'प्रकार' या बिम्ब के बीच में ही अधिकतर व्यक्तियों को रखा जाता है।

नोट

प्रकार उपागम के दोष

उक्त गुणों के बावजूद इस सिद्धान्त की आलोचना की गई है। इसमें निम्नांकित दोष है –

1. प्रकार सिद्धान्त में इस बात की पूर्व कल्पना की गई है कि सभी व्यक्ति किसी-न-किसी 'प्रकार' श्रेणी में निश्चित रूप से आते है। परन्तु, सच्चाई यह है कि एक ही व्यक्ति में व्यक्तित्व के कई एक प्रकारों का गुण मिलता है जिसके कारण उन्हें किसी एक प्रकार में रखना संभव नहीं है। उदाहरणस्वरूप, अधिकतर व्यक्तियों में अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी दोनों के गुण पाये जाते हैं। अत: उन्हें इन दोनों प्रकारों में किसी एक प्रकार में रखकर अध्ययन करना सर्वथा भूल होगी।
2. प्रकार सिद्धान्त के अनुसार जब किसी व्यक्ति को एक विशेष प्रकार में रखा जाता है, तो वह पूर्वकल्पना भी साथ ही साथ कर ली जाती है कि उसमें उस प्रकार से संबंधित सभी गुण होंगे। परन्तु सच्चाई ऐसी नहीं होती। जैसे यदि किसी व्यक्ति को अन्तर्मुखी की श्रेणी में रखा जाता है तो यह पूर्वकल्पना की जाती है कि उसमें अन्य गुणों के अलावा, सांवेगिक संवदेनशीलता भी होगी तथा ऐसा व्यक्ति एकान्तप्रिय होगा। परन्तु दोनों गुण एक अन्तर्मुखी व्यक्ति में हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है। एक सांवेगिक रूप से संवदेनशील व्यक्ति अकेले भी रहना पसंद कर सकता है तथा अन्य लोगों के समूह में भी रहना पसंद कर सकता है। अत: प्रकार सिद्धान्त की यह पूर्वकल्पना भी सही नहीं है।
3. प्रकार सिद्धान्त द्वारा व्यक्ति की व्याख्या तो होती है, परन्तु व्यक्ति विकास की व्याख्या नहीं होती है। इस सिद्धान्त में उन कारकों का उल्लेख नहीं है जिनसे व्यक्ति का विकास प्रभावित होता है तथा इस सिद्धान्त से विकास की अवस्थाओं का भी पता नहीं चलता।
4. कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि प्रकार सिद्धान्त में, विशेषकर शारीरिक गठन के आधार पर किए गए वर्गीकरण में सामाजिक तथा सांकृतिक कारक के महत्तव को बिल्कुल ही गौण रखा गया है। शेल्डन का यह दावा कि व्यक्ति के शारीरिक संगठन तथा उसके शीलगुणों में एक निश्चित संबंध होता है, जो व्यापक होता है तथा सभी परिस्थितयों में समान रहता है, उचित नहीं है। विटेकर के अनुसार इस तरह का संबंध सचमुच में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों द्वारा प्रभावित होता है।
5. शेल्डन ने अपने प्रकार सिद्धान्त में शारीरिक गठन तथा स्वभाव से संबंधित शीलगुणों के बीच उच्च सहसंबंध यानी 0.78 से अधिक सहसंबंध पाया है। कुछ आलोचकों का मत है कि यह सहसंबंधं वास्तविक नहीं है। चूँकि शेल्डन स्वयं ही शारीरिक गठन तथा स्वभाव या चित्तप्रकृति से संबंधित गुणों का रेटिंग किए थे, अत: सहसंबंध को तो अधिक होना ही था। हॉल तथा लिण्डजे ने ठीक ही कहा है, ''सहसंबंध की मात्रा से अन्वेषणकर्ता की पूर्व धारणा की शक्ति का पता चलता है न कि शारीरिक गठन एवं चित्तप्रकृति के बीच वास्तविक संबंध का।

इन आलोचनाओं के बावजूद प्रकार सिद्धान्त की मान्यता आज भी बनी हुई है जिसका प्रमाण हमें इस बात से मिल जाता है कि इन विभिन्न प्रकारों में मनोवैज्ञानिकों द्वारा विशेष रूप से अध्ययन किया जा रहा है।

1.8 व्यक्ति के गुण उपागम

नोट

व्यक्ति के शीलगुण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति की संरचना भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक शीलगुणों से मिलकर बनी होती है। शीलगुण से तात्पर्य व्यक्ति के व्यवहार का वर्णन करने वाली उन संज्ञाओं से है जो व्यवहार के संगत एवं अपेक्षाकृत स्थायी रूप को अभिव्यक्त करती है। जैसे ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठता, समय की पाबन्दी, सहयोग, परोपकार, सत्य बोलना आदि शीलगुण है। स्पष्ट है कि शीलगुण परस्पर एक-दूसरे से भिन्न होते है। शीलगुण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को प्रकार के रूप में नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है वरन् भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक शीलगुण द्वारा निर्धारित माना जाता है। ये शीलगुण भिन्न-भिन्न मात्रा में व्यक्ति में विमान होते है एवं इनके आधार पर व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या की जा सकती है। वस्तुत: शीलगुण उपागम के अन्तर्गत शीलगुण को व्यक्ति की मौलिक इकाई माना जाता है जो परस्पर स्वतंत्र है तथा जिनके आधार पर व्यक्तियों में भेद किये जा सकते हैं। आलपोर्ट तथा कैटल नामक दो मनोवैज्ञानिकों के व्यक्तित्व शीलगुणों के संबंध में महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। इन दोनों विचारों एवं कार्यों की चर्चा आगे की जा रही है।

आलपोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त

जी.डब्ल्यू. आलपोर्ट का व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धान्त के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने शीलगुणों को दो भागों में सामान्य शीलगुण तथा व्यक्तिगत शीलगुण में विभक्त किया। सामान्य शीलगुण से तात्पर्य उन शीलगुणों से है जो किसी समाज/संस्कृति के अधिकांश व्यक्तियों में पाये जाते है। इसके विपरीत व्यक्तिगत शीलगुण वे शीलगुण हैं जो बहुत कम व्यक्तियों में पाये जाते है। व्यक्तिगत शीलगुणों का अध्ययन करना बहुत कठिन होता है जबकि सामान्य शीलगुणों को सहसंबंधात्मक विधियों से सरलता से ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु आलपोर्ट ने सामान्य शीलगुणों की अपेक्षा व्यक्तिगत शीलगुणों के अध्ययन पर अधिक बल दिया। उसने व्यक्तिगत शीलगुणों की तीन प्रवृतियों - प्रमुख प्रवृति, केन्द्रीय प्रवृति तथा गौण प्रवृति बताई है। प्रमुख प्रवृति वाले शीलगुण से तात्पर्य व्यक्ति के उन प्रमुख व प्रबल शीलगुणों से है जो छिपाये नहीं जा सकते हैं एवं जो व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार से परिलक्षित होते है। जैसे सत्य व अहिंसा में अटूट विश्वास नि:सदेह महात्मा गांधी के व्यक्तित्व की प्रमुख प्रवृति थी जबकि अधिनायकवाद हिटलर तथा नैपोलियन के व्यक्ति की प्रमुख प्रवृति थी। केन्द्रीय प्रवृति वाले शीलगुणों से तात्पर्य उन शीलगुणों से है जो व्यक्ति में अधिक सक्रिय रहते है एवं व्यक्ति के अधिकांश व्यवहारों में कमोवशे परिलक्षित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में प्राय: ऐसे शीलगुण होते हैं। वास्तव में ये शीलगुण ही उसके व्यक्ति की रचना करते हैं। आत्मविश्वास, सामाजिकता, उत्साह, व्यवहार, कुशलता आदि किसी व्यक्ति के केन्द्रीय प्रवृति वाले शीलगुण हो सकते हैं। गौण प्रवृति वाले शीलगुणों से अभिप्राय उन शीलगुणों से है जो अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण तथा कम संगत होते है। ये शीलगुण व्यक्ति के समान प्रकार के व्यवहार में परिलक्षित हो जाते हैं तथा कभी परिलक्षित नहीं भी होते हैं। इनकी सहायता से व्यक्ति की व्याख्या करना प्राय: संभव नहीं हो पाता है। यहां पर स्पष्ट करना उचित ही होगा कि शीलगुण किसी व्यक्ति के लिए केन्द्रीय प्रवृति वाला हो सकता है तथा दूसरे व्यक्ति के लिए गौण प्रवृति वाला हो सकता है। जैसे बहिर्मुखी व्यक्ति के लिए सामाजिकता एक केन्द्रीय प्रवृति वाला शीलगुण है जबकि अन्तर्मुखी व्यक्ति के लिए सामाजिकता गौण प्रवृति वाला शीलगुण हो सकता है।

आलपोर्ट के अनुसार व्यक्ति असंबंधित शीलगुणों का झुंड मात्र नहीं है वरन् इसमें शीलगुणों के समन्वय तथा संगतता का भाव निहित रहता है। इसे उसने अपनापन कहा। प्रोप्रियम एक लैटिन शब्द से बना है। जिसका

नोट

अर्थ अपना है। आलपोर्ट के लिए अपनापन से तात्पर्य व्यक्ति के उन सभी पक्षों से है जो एकीकरण व संगतता के साथ व्यक्ति के अनोखे अपनेपन को दर्शाता है। उसने शैशवावस्था से किशोरावस्था तक फै ली सात अवस्थाओं में प्रोप्रियम के विकास की बात कही है। प्रथम तीन अवस्थायें अर्थात् शारीरिक स्व पहचान तथा स्वमान का विकास प्रथम तीन वर्ष में होता है। इसमें वाद की दी अवस्थाएं अर्थात् स्व विस्तार तथा स्व प्रतिमा का विकास 4 से 6 वर्ष की आयु में होता है। तार्किक अनुकूलन का विकास 6 से 12 वर्ष की आयु के बीच होता है जबकि उपयुक्त प्रयास का विकास किशोरावस्था में होता है। किशोरावस्था में जाकर प्रोप्रियम का विकास पूर्ण हो जाता है तथा इसमें ये सातों पक्ष समाहित रहते हैं।

आलपोर्ट के अनुसार परिपक्व वयस्क में कार्यात्मक स्वायत्तता होती है अर्थात् वह गत अनुभूतियों से प्रभावित न होकर स्वतंत्र रूप से कार्य करता है। जैसे यदि धन कमाने के लिए गरीब व्यक्ति कठोर श्रम करता है तथा धनी व्यक्ति बन जाने पर भी वह आदतवश कठोर श्रम करना पहले लक्ष्य प्राप्ति (धनार्जन) का एक साधन था जो जब एक लक्ष्य बन गया है। वस्तुत: वह अब निर्धनता की अनुभूति से स्वतंत्र होकर कठोर श्रम कर रहा है। कार्यात्मक स्वायत्तता का प्रत्यय व्यक्ति के व्यवहार के पीछे अभिप्रेरण को समझने में महत्तवपूर्ण सहायता करता है। आलपोर्ट के अनुसार व्यक्ति जन्मजात न होकर परिस्थितियों से प्रभावित होकर विकसित होता है। सकारात्मक परिस्थितियों में ही स्वस्थ व्यक्ति का विकास हो पाता है जबकि विषम परिस्थतियों में पले बालकों के व्यक्ति में नकारात्मक शीलगुण अधिक प्रभावी हो जाते हैं।

कैटल का शीलगुण सिद्धान्त

व्यक्ति के एक अन्य शीलगुण सिद्धान्त का प्रतिपादन कैटल ने किया। उसने लगभग 4500 शीलगुण शब्दों की सूची में से समानार्थक तथा दुर्लभ विशेषताओं को अलग करके पहले 171 वर्णनात्मक पदों का चयन किया एवं फिर इन 171 पदों के बीच संबंधों का अध्ययन करके इन्हें शीलगुणों के 35 वर्गों में अवकिलत कर दिया। तत्पश्चात् कैटल ने कारक विश्लेषण नाम की सांख्यिकीय प्रविधि का उपयोग करके व्यक्ति को अभिव्यक्त करने वाले 12 मूलभूत कारकों को ज्ञात किया तथा इन्हें व्यक्तित्व शीलगुण के नाम से संबोधित किया। कैटल के द्वारा किये गये इन बारह प्राथमिक शीलगुणों को सारणी में प्रस्तुत किया गया है। स्पष्ट है कि कैटल के द्वारा बताये कुछ शीलगुण - धनात्मक चरित्र, व्यवहार कुशलता, संवेगात्मक स्थिरता, दृढ़ता, संवेदनशीलता, बुद्धि, सामाजिकता, सौम्यता, आत्मविश्वास इत्यादि है।

कैटल ने व्यक्ति की व्याख्या करते हए कहा कि किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व वह विशेषता है जिसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सके कि किसी दी गयी परिस्थिति में वह व्यक्ति किस प्रकार का व्यवहार करेगा। उसके अनुसार व्यक्ति विशेषक मानसिक संरचनाएँ है तथा इन्हें व्यक्ति की व्यवहार प्रक्रिया की निरन्तरता तथा नियिमतता के द्वारा जाना जा सकता है। कैटल का विश्वास था कि कुछ सामान्य शीलगुण होते हैं जो सभी व्यक्तियों में कुछ न कुछ मात्रा में पाये जाते है तथा कुछ विशिष्ट शीलगुण होते है, जो कुछ विशेष व्यक्तियों में उपस्थित होते हैं। कैटल ने शीलगुणों को दो प्रकार (1) सतही शीलगुण तथा (2) स्रोत शीलगुण का बताया है। (1) सतही शीलगुण व्यक्ति के द्वारा अभिव्यक्त किये जा रहे व्यवहार से परिलक्षित होते है तथा व्यक्ति के व्यवहार को प्रत्यक्षत: प्रभावित करते है। प्रसन्नता, परोपकारता, सत्यनिष्ठा सतही शीलगुणों के कुछ उदाहरण हैं। इसके विपरीत (2) स्रोत शीलगुण व्यक्ति के व्यवहार के पीछे छिपे रहते है तथा अभिव्यक्त को प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित व निर्धारित करते है। स्पष्टत:

नोट

सारणी

व्यक्तित्व के प्राथमिक शीलगुण

(Primary Traits of personality)

I .	Cyclothymia	Vs.	Schizothymia
	Outgoing		Withdrawn
	Good-natured		Surly
	Adaptable		Inflexible
II	Intelligence	Vs.	Mental defect
	Intelligent		Stupid
	Conscientious		Slipshod
	Thoughtful		Unreflective
III.	Emotionally mature	Vs.	Demoralised emotionality
	Realistic		Subjective
	Stable		Uncontrolled
	Patient		Exeitable
IV.	Dominance	Vs.	Submissiveness
	Boastful		Modest
	Egotistic		Self-effacing
	Tough		Sensitive
V.	Surgency	Vs.	Melancholic desurgency
	Cheerful		Unhappy
	Optimistic		Pressimistic
	Sociable		Aloof
VI.	Sensitive, imaginative	Vs.	Rigid, lough, poised
	Idealistic		Cynical
	Intuitive		Logical

नोट

	Friendly		Hardhearted
VII.	Trained, Socialised	Vs.	Boorish
	Thoughtful		Narrow
	Sophisticated		Simple
	Aesthetic		Coarse
VIII.	Positive intergration	Vs.	Immature, dependent
	Independent		Dependent
	Presevering		Slipshod
	Practical		Unrealistic
IX.	Charitable, adventurous	Vs.	Obstructive, withdrawn
	Kindly		Cynical
	Cooperative		Obstructive
	Frank		Secretive
X.	Neurasthenia	Vs.	Vigorous character
	Languid		Alert
	Quitting		Painstaking
	Incoherent		Strong-willed
XI.	Hypersensitive, Infantile	Vs.	Frustration tolerance
	Infantile		Adjusting
	Restless		Calm
	Impatient		Phlegmatic
XII.	Sergent eyelothymia	Vs.	Paranoia
	Enthusiastic		Frustrated
	Friendly		Hostile
	Trustful		Suspicious

स्रोत शीलगुणों का महत्त्व सतही शीलगुण से अधिक होता है। स्रोत शीलगुण का एक उदाहरण मित्रता है। मित्रता शीलगुण व्यक्ति में सामाजिकता, नि:स्वार्थता व हास-परिहास जैसे सतही शीलगुण आ सकते है। जैसा कि बताया जा चुका है, इन शीलगुणों की जानकारी के लिए कैटल ने कारक विशेषण नामक सांख्यिकीय प्रविधि का उपयोग किया था। कैटल के अनुसार विभिन्न शीलगुण के परस्पर आन्तरिक संबंध अत्यंत जटिल होते हैं तथा उनकी परस्पर अन्तर्क्रिया ही व्यक्तित्व को निर्धारित करती है। व्यक्ति के तात्कालिक उद्देश्यों से संबंधित शीलगुण उसके मुख्य तथा अन्तिम उद्देश्यों से संबंधित शीलगुण के अधीन रह कर कार्य करते हैं।

कैटल के द्वारा बनाये गये प्रसिद्ध व्यक्ति मापन उपकरण 16 पी एफ प्रश्नावली में व्यक्ति के सोलह द्विध्रुवीय कारकों को सम्मिलित किया गया है। व्यक्ति के इन सोलह कारकों को पाठकों के अवलोनार्थ सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

नोट

सारणी कैटल के द्वारा सोलह पी.एफ. प्रश्नावली में प्रयुक्त व्यक्तित्व कारक

क्र.स.	कारक	कारकों के दो विपरीत ध्रुव	
1.	ए A	उत्साही (Outgoing)	एकाकं (Reserved)
2.	बी B	अधिक बुद्धिमान (More Intelligent)	कम बुद्धिमान (Less Intelligent)
3.	सी C	स्थिर (Stable)	संवेगात्मक (Emotional)
4.	ई E	दृढ़ (Assertive)	नम्र (Humble)
5.	एफ F	हसं मुख (Happy-go-lucky)	सौम्य (Sober)
6.	जी G	आध्यात्मिक (Conscientious)	संसारिक (Expedient)
7.	एच H	सामाजिक (Venturesome)	संकोची (Shy)
8.	आई I	संवेदनशील (Tender Minded)	निष्ठुर (tough-minded)
9.	एल L	शंकाल (Suspicious)	विश्वस्त (Trusting)
10.	एम M	कल्पनावादी (Imaginative)	यथार्थवादी (Practical)
11.	एन N	व्यवहारकुशल (Shrewd)	सामान्य (Forthright)
12.	ओ O	चिन्तित (Apprehensive)	आत्मविश्वासी (Placid)
13.	क्यू 1Q1	आधुनिक (Experimenting)	रूढ़िवादी (Conservative)
14.	क्यू 2Q2	स्व-आधारित (Self-sufficent)	समूह नियन्त्रित (Group-tied)
15.	यू 3Q3	नियन्त्रित (Controlled)	अन्तर्द्वन्दी (Casual)
16.	क्यू 4Q4	तनावयुक्त (Tense)	तनावमुक्त (Relaxed)

आइजेंक का शीलगुण उपागम

जर्मनी से आकर ब्रिटेन में बसे एच.जे. आइजेंक नामक एक अन्य मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व को प्रकार - शीलगुण प्रत्यय (Type-Traits Concept) के रूप में प्रस्तुत किया। आइजेंक के अनुसार व्यवहार संगठन के निम्न चार स्तर होते है :

(i) विशिष्ट अनुक्रियाएँ (Specific Responses)

(ii) आदतजन्य अनुक्रियाएँ (Habitual Responses)

(iii) शीलगुण (Traits)

(iv) प्रकार (Type)

विशिष्ट अनुक्रियाएँ वस्तुत : अलग-अलग क्रियाओं के रूप में होती है। जैसे पलक झपकाना, आँखे झुकाना विशिष्ट अनुक्रियाओं के उदाहरण है। आदतजन्य अनुक्रियाएँ व्यक्ति की आदतों के फलस्वरूप होती है। व्यक्ति

नोट

समान परिस्थितियों में समान आदतजन्य अनुक्रियाएँ करता है। जैसे शीघ्रता से मित्र बनाना या न बनाना अथवा, अजनवियों से सहज (Shyness) ढंग से बातचीत न कर पाना आदतजन्य अनुक्रियाएँ है। कुछ आदतजन्य अनुक्रियाओं के एकीकृत होने पर शील गुण बनते है। जैसे शीघ्रता से मित्र न बनाने तथा दूसरे से सहजता से बातचीत करने में कठिनाई महसूस करने की आदतें संकोच शीलगुण की सूचक है। अनेक शीलगुणों के एकीकृत रूप को आइजेंक ने प्रकार कहा है। जैसे आग्रह (Pertistence) दृढ़ता (Rigidity), आत्मनिष्ठ (Subjectivity) झेंप (Shyness) तथा चिड़चिड़ापन (irritability) आदि शीलगुणों से मिलकर व्यक्ति का अन्तर्मुखी (Introversion) प्रकार बनता है।

वस्तुत: इस चतुर्थ एवं अन्तिम स्तर पर व्यक्ति का एक स्पष्ट प्रकार परिलक्षित होता है। अत: व्यक्तित्व प्रकार को परस्पर संबंधित शीलगुणों का समूह कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में समान प्रकृति के शीलगुण मिलकर व्यक्तित्व के प्रकार को इंगति करते हैं। उपरोक्त वर्णित व्यक्ति को अन्तर्मुखी प्रकार को चित्र में स्पष्ट किया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति को अन्तर्मुखी तब ही कहा जा सकता है जब उसके शीलगुण स्तर तीन के समान हों, उसका आदतजन्य व्यवहार स्तर दो के समान हो तथा उसकी विशिष्ट अनुक्रिया स्तर एक के अनुरूप हो। स्पष्ट है कि आइजेंक के अनुसार व्यवहार को एक ऐसे पदानुक्रम के रूप में समझा जा सकता है जिसके निम्नवत स्तर पर विशिष्ट अनुक्रियाएँ हैं तथा उच्चतम स्तर पर व्यक्ति का प्रकार स्थित होता है। आइजेंक ने व्यक्तित्व की तीन निम्न मूलभूत विमाओं (Basic Demensions) को प्रस्तुत किया है।

(i) मुखता (Versionism i.e. Introversion - Extroversion)

(ii) स्नायुविकता (Neuroticism i.e. Emotional Instability- Emotional Stability)

(iii) मनोविकारता (Psychoticism)

बिग फाइव (Big Five) मॉडल

सम्प्रति शीलगुणों के क्षेत्र में पाँच मूल आयामों की विश्व स्तर पर चर्चा है। मैक्के एवं कोस्टा ने मूल शीलगुणों की संख्या कारक विश्लेषण के आधार पर पाँच बतायी है। इसे 'बिग फाइव' मॉडल भी कहा जाता है। (i) बहिमुर्खता (Extraversion) - इससे व्यक्ति की सामाजिक उन्मुखता का पता चलता है। (ii) सहमतिजन्यता (Agreeableness) - इससे व्यक्ति की उदारता, विश्वास एवं स्वभाव का पता चलता है। (iii) कर्तव्यिनष्ठा(C onscientiousness)- इसके द्वारा आत्म-अनुशासन, कर्तव्यपालन आदि के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। (iv) स्नायुविकृति (Neuroticism) - इससे चिन्ता, संवेगात्मक स्थिति एवं स्वभाव के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। (v) अनुभवों के प्रति खुलापन (Openness to experience)- अर्थात् व्यक्ति कितना रचनात्मक, मौलिक विचार, जिज्ञासा एवं कल्पनाशक्ति वाला है। इन आयामों पर उच्च एवं निम्न प्राप्ताकों का आशय अलग-अलग है।

शीलगुण उपागम के दोष

यद्यपि शीलगुण सिद्धान्त 'प्रकार सिद्धान्त' से अधिक वैज्ञानिक एवं पूर्ण लगता है, फिर भी मनोवैज्ञानिकों ने इसकी भी कुछ आलोचनाएँ की है, जो निम्नांकित है–

(i) शीलगुण सिद्धान्त (trait theory) में कारक विश्लेषण (factor analysis) की प्रविधि द्वारा यह निश्चित करने की कोशिश की गई है कि व्यक्तित्व के कितने प्रमुख शीलगुण है। शीलगुण सिद्धान्तवादी (trait theorists) ऐसे शीलगुणों की कोई एक निश्चित संख्या निर्धारित करने में अब तक असमर्थ रहे है। कैटेल के अनुसार इस तरह का शीलगुण 16 है जबकि आलपोर्ट इतनी कम संख्या से संतुष्ट नहीं है। नौरमनै (Norman,1963) ने यह बताया कि कुछ ऐसे ही शीलगुण सिद्धान्तवादी है जो,

प्रमुख शीलगुणों की संख्या मात्र पाँच ही मानते हैं। इस तरह की असहमति से व्यक्ति की व्याख्या सही ढंग से नहीं की जा सकती है।

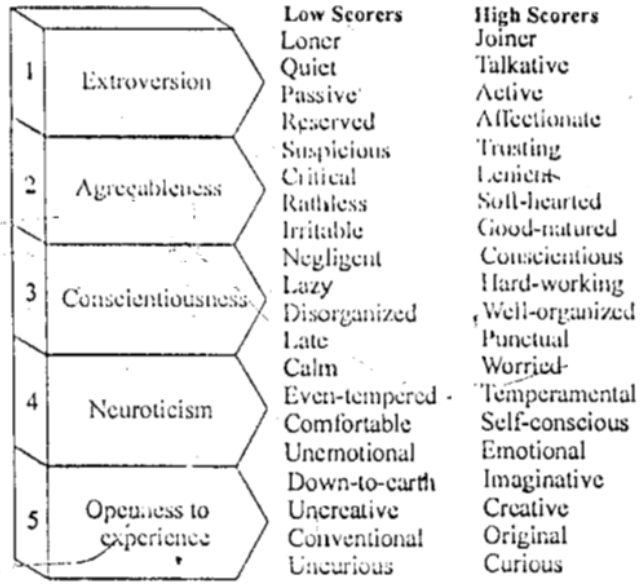

(ii) शीलगुण सिद्धान्तवादियों द्वारा बताए गए प्रमुख शीलगुण की संख्या के बारे में असहमति तो है ही, साथ ही साथ ऐसे शीलगुण एक-दूसरे से पूर्णत: स्पष्ट, भिन्न एवं स्वतंत्र नहीं है। दूसरे शब्दों में, कुछ प्रमुख शीलगुण से इस तरह से जुड़े हुए है तथा संबंधित है कि लगता है एक ही बात को दो ढंग से कहा जा रहा है जिससे व्यक्ति के मन में संभ्रान्ति (confusion) अधिक होती है। जैसे अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता (introversion-extroversion) एक ऐसा शीलगुण है जो अस्थिरता-स्थिरता (instability-stability) के शीलगुण से ऐसा मिलता है कि इसमें स्पष्टता कम तथा संभ्रान्ति अधिक पैदा होती है। अन्तर्मुखता का गुण तथा अस्थिरता का गुण करीब-करीब एक ही समान है। ठीक उसी प्रकार बहिर्मुखता के गुण अस्थिरता के गुण से काफी मिलता-जुलता है। इस तरह शीलगुण सिद्धान्त में संभ्रान्ति अधिक तथा स्पष्टता (clarity) कम है।

(iii) शीलगुण सिद्धान्त में व्यक्तित्व की व्याख्या अलग-अलग शीलगुणों के रूप में की जाती है। आलोचकों का मत है कि इस तरह के विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से व्यक्ति की एक सम्पूर्ण व्याख्या (whole explanation) नहीं की जा सकती और तब व्यक्ति के बारे में कोई उचित सामान्यीकरण (generalization) या नियम बनाने की बात सिर्फ इस सिद्धान्त के आधार पर सही नहीं की जा सकती।

(iv) शीलगुण सिद्धान्त में परिस्थिति कारकों (situational factors) के महत्त्व को स्वीकार नहीं किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि किसी व्यक्ति में 'प्रभुत्व' (dominance) का शीलगुण है, तो इसका मतलब यह हुआ कि वह हर परिस्थिति में वह 'प्रभुत्व' दिखाएगा और दूसरे पर आधिपत्य रखने की कोशिश करेगा। परन्तु ऐसा होता नहीं है। एक छात्र अपने साथियों के बीच काफी प्रभुत्व दिखा लेता है, परन्तु अपने माता-पिता या शिक्षक के सामने वह विनम्रता से पेश आता है। स्पष्ट है कि शीलगुण सिद्धान्त से हमें यहां इस छात्र के व्यवहार को समझने में मदद नहीं मिल पाती है। इन आलोचनाओं के बावजूद शीलगुण सिद्धान्त (trait theory) व्यक्तित्व का एक मुख्य सिद्धान्त है तथा 'प्रकार सिद्धान्त' (type theory) से श्रेष्ठ (superior) माना माना गया है।

नोट

1.9 व्यक्तित्व की अवधारणा (Concept of Personality)

नोट

व्यक्तित्व (Personality) को लेकर विज्ञान में अनेक मतभेद रहे है। 'व्यक्तित्व- शब्द लैटिन भाषा है परसोना से बना है, जिसका अर्थ है मुखौटा। नाटकों में चेहरे पर पात्र एक मुखौटा पहनते थे जो नाटक के पात्र की चारित्रिक विशेषताओं के दर्शन कराता था। नाटकों में वेशभूषा भी पात्रानुकूल होती थी। इससे पात्रों के चारित्रिक वैशिष्टय का पता चलता है।

व्यक्तित्व के विषय में भारत तथा यूरोप एवं अमेरिका में पृथक अवधारणायें प्रचलित हैं। इन अवधारणाओं के आधार पर व्यक्ति का विश्लेषण किया जाता है।

व्यक्ति की भारतीय अवधारणा

(1) **दार्शनिक दृष्टिकोण** (Philosophical Outlook) – दर्शनशास्त्र की अवधारणा है कि आत्मज्ञान, आत्मानुभूति वाला व्यक्ति ही व्यक्तित्व है, अन्य सभी साधारण जन है। आत्मज्ञान की अधिकता ही व्यक्तित्व को आकर्षक बनाती है। ऐसा व्यक्ति ही पूर्णता का आदर्श है। आत्मज्ञान से पूरित है।

दार्शनिक दृष्टिकोण वैदिक युग से प्रचलित है। पाप-पुण्य, शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा से संबंधित तत्वों का समजंन ही व्यक्तित्व का निर्माण करता है। एक वेद मंत्र में कहा गया है – ''हे आत्मजन, मेरे सारे अंग - वाणी, नेत्र, श्रोत्र आदि सभी कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ प्राण समूह, शारीरिक और मानसिक शक्ति तथा ओज सब पुष्टि एवं वृद्धि को प्राप्त हों।''

सांख्य दर्शन आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आदि दैविक के भेद से दु:ख तीन प्रकार के है। शारीरिक दु:ख का कारण वात, पित्त, कफ की विषमता के कारण रोग एवं दु:ख देने वाले विर्षयों की प्राप्ति है। मानस दु:ख का साधन काम, क्रोध, मोह, विर्षाद आदि है।

न्याय दर्शन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, आन्विक्षी, वार्ता तथा दण्ड नीति व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। वैशेविक दर्शन द्रव्य, गुण, कम, सामान्य और पंचम तत्व पर बल देते है। वैशेविक सिद्धान्त प्रतिनियत अवस्था से ही सुखी, दुखी, उच्च वंशीय, नीच वंशीय, विज्ञान तथा मूर्ख होते है। मीमांसा दर्शन के अनुसार-आत्मज्ञानपूर्वक वैदिक कर्मों के अनुष्ठान से धर्माधर्म के विनाश के लिये देह, इन्द्रिय आदि का आत्यन्तिक निराकरण ही मोक्ष है। शंकराचार्य ने शिक्षा निरुक्त, छनद, ज्योतिष और व्याकरण की शिक्षा से युक्त व्यक्ति ही सर्वोत्तम व्यक्तित्व है।

आयुर्वेद में वात, पित्त तथा काम प्रधान व्यक्ति कहे गये है, इन तीनों गुणों का असन्तुलन व्यक्तित्व विकार करता है तथा सन्तुलन व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

तैतरीय उपिनषद में स्नातकों को उत्तम व्यक्तित्व का निर्माण करने के लिए समावर्तन के समय जो उपदेश दिये जाते थे, सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वध्याय का त्याग न करो। सत्य, अर्थ, कल्याणकारी कार्य, देव, पितृ कर्मों का त्याग न करो। आचार्य, देव तथा पिता की अर्चना करो।

(2) **समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण** (Sociological Outlook) – दार्शनिक दृष्टिकोण ने व्यक्तित्वादी, व्यक्तित्व संबंधी अवधारणाओं को जन्म दिया है। व्यक्ति समाज का अंग है और उस पर समाज के अनेक दबाव तथा प्रभाव पड़ते है। इन दबाव तथा प्रभावों से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति की समाज में भूमिका (Role) तथा स्थिति (Status) का निर्वाह होता है। भारत में निम्न वर्ग के प्रतिभाशाली व्यक्ति भी वर्ण, आश्रम तथा जातीय व्यवस्था के दबावों से पीड़ित रहते है। भले हीवे अपने निजी गुणों के कारण कितना भी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लें।

नोट

प्राचीन मनोविज्ञान की भूमिका (Role of old psychology) – आज के औपचारिक मनोविज्ञान का इतिहास एक सदी पुराना है जबकि मानव विकास के इतिहास से इसका पुराना संबंध है। प्राचीन अवधारणा का आधार धर्म है। एशिया में प्रचलित धर्म भले ही अपने समर्थकों के विशेष व्यक्तित्व की पहचान न करा पाये किन्तु उन धर्मों के प्रवर्तक प्रचारकों-योगी, सन्यासी, धर्मगुरू, मठाधीश तथा महन्त एवं पुजारी जैसे व्यावसायिकों के व्यक्तित्व का निर्माण विशिष्ट शैली में हुआ है। यह वास्तव में व्यावहारिक मनोविज्ञान पर आधारित है।

अभिधम्मा : व्यक्तित्व सिद्धान्त (Abhidhamma : Personality theory) - अभिधम्मा व्यक्तित्व सिद्धान्त ईसा से 500 वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध के विचारों को प्रतिबिम्ब है। भिक्षु नयनपोनिका ने कहा है - '' बौद्ध धर्म में मस्तिष्क वह आरम्भिक बिन्दु है, वह केन्द्रीय स्थिति है जहां साधक मुक्ति एवं पवित्रता की और बढ़ता है। इसमें स्वस्थ व्यक्ति के लिये साधना के विभिन्न चरण अपनाये जाते हैं।'

अधिधम्म सिद्धान्त में व्यक्ति का सम्पूर्ण विश्लेषण किया जाता है। एक कथा है - एक अपूर्व सुन्दरी पति से झगड़कर जा रही थी, एक बौद्ध साधक ने उसे देखा। उसके मन में एक विचार आया कि कंकाल ने वस्त्र पहन रखे हैं। कुछ क्षण उपरान्त उस स्त्री का पति उस और गुजरा। बोला - 'महात्मन! इधर आपने किसी स्त्री को तो नहीं देखा।'' साधक का उत्तर था-''इस मार्ग से कोई स्त्री गुजरी है या पुरुष, मैंने ध्यान नहीं दिया है। अस्थियों का एक बोरा अवश्य इधर से गुजरा है। ''

चूँकि इस कथा में साधक शरीर के 32 अंगों पर ध्यान केन्द्रित कर रहा था, इसीलिए उसने स्त्री के सौंदर्य आदि पर ध्यान नहीं दिया।

अधिगम्म में व्यक्ति की अवधारणा अट्ट (Atta) या आत्म (Self) पर आधारित है। आत्म, शरीर के अंगों, विचार, संवेदना, इच्छा, स्मृति तथा संकार आदि का योग है। यह भाव (Bhav) द्वारा चेतना की निरन्तरता से जुड़ा है।

आत्मा (Soul) – प्राचीन अवधारणाओं में आत्मा का सिद्धान्त हिन्दू युग में विकसित हुआ। आत्मा, मन का चेतन भाव है और हमारे व्यवहार का नियन्त्रक है, मूल है। यह कल्पना तथा आदर्श पर आधारित है। आत्मा का सिद्धान्त, कर्म पर आधारित है। सत, रज, तम गुणों पर व्यक्ति का वर्गीकरण किया जाता है।

व्यक्ति की पाश्चात्य अवधारणा

व्यक्ति की पाश्चात्य अवधारणाओं का आधार शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक स्थिरता आदि गुण है। इन गुणों पर वंशक्रम तथा वातावरण का प्रभाव पड़ता है। प्रभावी विहिन ग्रन्थियों, सामान्य स्वास्थ्य, स्नायुमण्डल आदि व्यक्तित्व को प्रभावित करते है। वातावरण संबंधी तथ्यों में परिवार, पड़ौस, बालक समूह, विद्यालय, पुस्तकें, जीवन लक्ष्य, मनोरंजन के साधन, आर्थिक स्थिति, सांस्कृतिक वातावरण, जलवायु तथा शिक्षा आदि व्यक्तित्व पर प्रभाव डालते हैं।

इसीलिए पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति की अवधारणा का विकास इन सिद्धान्तों पर किया है :

1. मनोविज्ञान
2. मानवतावाद
3. व्यवहारवाद

4.. विकासवाद

5. क्षेत्रीय मनोविज्ञान

6. प्रकारवाद

नोट

7. गुणवाद

कुल मिलाकर भारतीय और पाश्चात्य व्यक्ति अवधारणाएँ, मनुष्य के आन्तरिक तथा बाह्य स्वरूप के आधार पर सम्पूर्ण व्यक्ति का विश्लेषण करके उसका निर्धारण करते है। भारतीय सिद्धान्त का आधार अध्यात्म है, वह ऊपरी आवरण को सम आन्तरिक विकास पर अधिक बल देते है। प्रप्रतीचीवादी मनोविानिकों ने भौतिक आधारों पर व्यक्तित्व की अवधारणाओं का विकास किया है।

व्यक्तित्व की भारतीय तथा पाश्चात्य की अवधारणायें मुख्य रूप से अन्त: तथा बाह्य वैयक्तिक आवरण पर बल देती है। प्राचीन तथा भारतीय अवधारणा के अनुसार अच्छा व्यक्ति वह है जिसमें सदगुण होते है। ये सदगुण एक और उसका अपना विकास करते है तो दूसरी और समाज तथा समुदाय का विकास तथा कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध होते है। राम, कृष्ण, महावीर, गौतम बुद्ध, शंकराचार्य आदि व्यक्ति लोकोपकारी रहे है। अभाव पैदा कर उसके यथार्थ का अनुभव कर सामान्य जन का कल्याण करने का संकल्प लिया है। सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के दर्शन को जीवन में उतारने वाला व्यक्ति ही प्राची प्रधान होता है। आज भी अध्यात्मक के क्षेत्र में विज्ञान तथा समुदाय के क्षेत्र में निस्वार्थ भाव से सेवा में लगे व्यक्तियों की कमी नहीं है।

पश्चिमी विचार ने व्यक्तितत्व को भी प्रयोजन से जोड़ा है। उसको सूक्ष्म गुणों में स्वतंत्र रूप से देखा है। एक शिक्क्षक बहुत अच्छा पढ़ता है, उसका शैक्षिक व्यक्तित्व बहुत अच्छा है, हो सकता है उसका निजी व्यक्ति अधिकांश में दुर्गुणों से युक्त हो।

हमें केवल इतना ही कहना है कि व्यक्ति को पृथक-पृथक परिवेश में नहीं देखा जाता अपितु उसे समग्र रूप में देखा जाता है। फिर समाज के प्रभाव को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

1.10 व्यक्तित्व विकास का अर्थ

मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यक्तित्व शब्द सामान्य व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में किया जाता है। व्यक्तित्व के तत्वों से आशय है, व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करने तथा उसे स्थायी रूप देने में जो तत्व काम आते है, उन सभी का योग तथा परिणाम, व्यक्ति की समग्र छवि के विषय में एक धारणा प्रस्तुत करता है। यही धारणा व्यक्ति कहलाती है। व्यक्ति अच्छा है या बुरा, उत्तम व्यवहार वाला है या सामान्य, प्रभावशाली है या निष्प्रभावी, ये सारे तत्व व्यक्ति के अमूर्त रूप को प्रस्तुत करते है। एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति के विषय में धारणा बनाता है। खास बात यह है कि व्यक्ति स्वयं के व्यक्तित्व के विषय में कभी धारणा नहीं बनाता। जब भी बनाने का प्रयास करता है, वह बँट जाता है, खण्डित हो जाता है।

ड्रेवर के शब्दों में, ''व्यक्ति शब्द का प्रयोग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों के सुसंगठित और गत्यात्मक संगठन के लिए किया जाता है जिसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन में आदान-प्रदान के दोरान व्यक्त करता है।

"Personality is a term used for the integrated and dynamic organization of the physical, mental, moral and social qualities of the individual as the manifests itself to other people, as the give and take of social life."

1.11 व्यक्तित्व विकास की अवस्थाएँ

नोट

व्यक्तित्व का विकास एक सतत् प्रक्रिया है। इसका बीजारोपण गर्भाधान के साथ ही होता है और जीवनपर्यन्त यह प्रक्रिया चलती रहती है। इस प्रक्रिया को विकास की अवस्थाओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1 **गर्भकालीन अवस्था में व्यक्ति** (Prenatal Stage and Personality) – चूँकि व्यक्ति के स्वरूप पर आनुवंशिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है अत: गर्भकालीन परिस्थितियाँ जन्मोपरान्त प्राप्त होने वाली व्यक्ति संरचना की नींव के रूप में मानी जाती है। गर्भकालीन अवस्था की अवधि 280 दिनों तक चलती है। इसे क्रमश: अण्डाणु अवस्था (Stage of ovum) भ्रूणावस्था (Embryonic Stage) एवं गर्भाशयी अवस्था (Fetal Stage) कहते है। गर्भकालीन अवस्था पुरुष जननांग (Testes) से निकलने वाले शुक्राणु एवं स्त्रियों के जननांग (Ovary) से निकलने वाले अण्डाणु (Ovum) के मेल के साथ प्रारम्भ होती 28 है। इसी प्रक्रिया से शिशु में आनुवंशिक विशेषता आती है, उसका यौन निर्धारित होता है तथा परिवार में उसकी क्रमिक स्थिति भी तय होती है।

   कुछ लोगों ने यह अध्ययन करने का प्रयास किया है कि गर्भकालीन परिस्थतियों का बच्चों के व्यवहार तथा समायोजन पर कैसा प्रभाव पड़ता है। बच्चों के समयक शारीरिक विकास पर माँ की शारीरिक दशाओं का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। ऐसे भी प्रमाण मिले है कि गर्भकालीन दशा में माँ की संवेगात्मक दशाओं का प्रभाव जन्मोपरान्त बच्चे पर परिलक्षित होने लगता है (Sontag, 1966,1969)। माँ की आयु का भी बच्चों के व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है। जिन महिलाओं की उम्र बहुत कम या अधिक होती है उन्हें उत्पन्न बच्चों में विभिन्न प्रकार की शारीरिक, मानसिक एवं व्यावहारिक विकृतियों के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है, जैसे - बौनापन (Cretanism), मंगोलियन विशेषताएँ (Mongolism), हृदय विकार (Heart malformations) एवं जलकपालपन (Hydocephaous) इत्यादि। उपर्युक्त कारक विभिन्न प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक विकृतियाँ पैदा करते हैं। (Matagu, 1970" Pasamanick and Knoblock,1966)। यह भी पाया गया कि गर्भावस्था में कुपोषण के कारण मानसिक विकास प्रभावित होता है ऐसी महिलाएँ जो गर्भकाल में धूम्रपान करती हैं उनके बच्चों की ऊँचाई अपेक्षाकृत कम पाई जाती है (Goldstein,1971)। गर्भावस्था में प्रतिकूल मनोवैज्ञानिक कारकों का भी व्यक्ति के विकास पर घातक प्रभाव पड़ता है। ऐसी माताएँ जो गर्भकाल में चिन्ता (Anxiety), प्रतिबल (Stress), एवं तनाव (Tension) आदि से प्रभावित रहती है उनके बच्चे प्रारम्भ के 3-4 वर्ष तक प्राय: बीमार पड़ते रहते है। इससे व्यक्ति के समुचित विकास में बाधा पड़ती है (Sontage] 166,1969)। इससे स्पष्ट होता है कि गर्भकालीन दशाएँ भी व्यक्ति के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है एवं व्यक्ति का विकास गर्भकाल से ही प्रारम्भ हो जाता है।

2 **शैशवावस्था एवं व्यक्तित्व विकास** (Infancy and personality) – यह अवधि बहुत लघु परन्तु बहुत महत्त्वपूर्ण होती है वास्तविक अर्थों में व्यक्तित्व का विकास इसी अवस्था से प्रारम्भ होता है। जन्म के समय ही शिशुओं में वैयक्तिक भिन्नताएँ दिखाई पड़ने लगती है, जैसे - रोने में अन्तर, बनावट में अन्तर आदि। यहीं से शिशु समायोजन सीखना प्रारम्भ करता है (Straton,1982)। इस अवस्था से ही जन्मोपरान्त होने वाली पेशीय विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। यदि आनुवंशिक विशेषताओं को विकसित होने का अवसर मिलता है, तो बच्चों का समुचित विकास होता है अन्यथा अनेक प्रकार की समस्याएँ पैदा हो सकती हैं (Thoms et. al. 1966)। यारो (Yarrow, 1963) का निष्कर्ष है

नोट

कि यदि जन्मोपरान्त बच्चे माँ से अलग कर दिये जाते है, तो उनमें समायोजन की क्षमता अपेक्षाकृत कम विकसित हो पाती है।

इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि व्यावहारिक अर्थ में व्यक्ति का विकास शैशवावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। मिलर (1950) ने कहा कि शैशवावस्था मौलिक समायोजन का समय है 29 और इससे व्यक्ति के भविष्य के बारे में उसी प्रकार झलक मिलती है जिस प्रकार पुस्तक के स्वरूप के बारे में उसकी प्रस्तावना से झलक मिलती है (Bell et.al. 1971)।

3 **बचपन एवं व्यक्ति विकास** (Boyhood and personality) – यह अवस्था जन्मोपरान्त द्वद्वितीय सप्ताह से द्वितीय वर्ष तक मानी जाती है। इसमें बच्चों में अनेक प्रकार के शारीरिक एवं व्यावहारिक परिवर्तन होते हैं जो उनके समायोजन को प्रभावित करते हैं। इस अवस्था में 'आत्म; या 'स्व' (Self) का बोध होने लगता है तथा संज्ञानात्मक योग्यताएँ (जैसे - प्रत्यक्षीकरण एवं स्मृति आदि) का भी दर्शन होने लगता है (Mackenzic etc. 1984; Bushnel et.al. 198)। वस्तुओं पर अधिकार जमाना, हंसना, खेलना, नाराज होने एवं निर्भरता में कमी आदि का दर्शन बच्चों में होने लगता है। व्यक्ति के विकास के दृष्टिकोण से यह क्रान्तिक समय (Critical period) होता है क्योंकि इस समय जो नींव पड़ती है उसी पर प्रौढ़ व्यक्ति का निर्माण होता है। हरलॉक (1975), बाल्वी (Bowlby, 1956) एवं यारो (1963) ने निष्कर्ष दिया है कि इस अवधि में व्यक्ति संबंधी परिवर्तन का स्पष्ट आभास मिलता है।

बचपन में व्यक्ति के विकास पर माता के व्यवहार का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। चूँकि इस अवधि से ही बच्चों में निर्भरता में कमी आने लगती है, अत: इस समय उन पर दबाव या अनावश्यक देखभाल का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है (Stone and church, 1973)। इस उम्र में बच्चों के यौन (Sex) के अनुसार उनके प्रति व्यवहार भी लोगों द्वारा होने लगता है एवं वेशभूषा में अन्तर आने लगता है। इसका भी उनके ऊपर प्रभाव पड़ता है और आगे इसी प्रकार के और स्पष्ट छाप उन पर छोड़ता रहता है (Allport,1961)। इस अवस्था में जो विशेषताएँ दिखाई पड़ती है ये लम्बे समय तक बनी रहती है (Bayley,1970:Mischel, 1969)। परन्तु उन विशेषताओं में भी परिवर्तन अवश्य होता रहता है जो सामाजिक दृष्टिकोण से उचित नहीं होती है। समय के साथ व्यक्ति प्रभावी में परिवर्तन होता रहता है किन्तु उसका मूल स्वरूप स्थाई रहता है। इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि व्यक्ति के विकास में प्रारम्भिक अनुभवों का विशेष महत्त्व है।

4 **बाल्यावस्था एवं व्यक्ति विकास** (Childhood and personality) – यह अवस्था 2 वर्ष से लगभग 12 वर्ष तक मानी जाती है। इसमें बालक में व्यापक परिवर्तन होते हैं। इसमें वे घर की चाहर दीवारी से बाहर जाना शुरू कर देते है। उन पर परिवार के अतिरिक्त स्कूल तथा मित्र मण्डली का भी प्रभाव पड़ने लगता है। इनका तीव्र गति से शारीरिक, सामाजिक एवं मानसिक विकास होता है। इसके परिणामस्वरूप उनका व्यक्तित्व प्रतिमान भी परमार्जन होता रहता है और सामाजिक अन्तरक्रिया (Interaction) बढ़ जाने से व्यक्ति प्रभावी में सामाजिक गुणों की संख्या बढ़ जाती है। उनमें जिज्ञासा, अन्वेषण एवं भाषा विकास भी परिलक्षित होने लगता है। इस अवस्था में बच्चों में नकारात्मक प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ने लगती है। इसी अवधि में कौशलों का अर्जन, संवेगों में स्थिरता तथा लैंगिक अन्तर भी दिखाई पड़ने लगता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बाल्यावस्था क्रान्तिकारी परिवर्तन की अवस्था है। (Insetberg and Burke, 1973)

नोट

इस अवस्था में होने वाले व्यक्ति विकास पर माता-पिता, सम्बन्धियों एवं मित्रों आदि का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। इसी समय बच्चों में स्व या आत्म की अवधारणा' (Self concept) स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ने लगता है। इसीलिए कहा गया है कि आत्मा की अवधारणा परिवार से उत्पन्न होती है। वे कौन है? उनके माता-पिता कौन है? वह वस्तु मेरी है इत्यादि जैसी बातें उनमें दिखाई पड़ने लगती है। (Glasner, 1961)। इस समय के व्यक्ति संबंधी विकास पर उन्हें मिलने वाला शिक्षण, माता-पिता की आकांक्षा, बच्चे की परिवार में स्थिति तथा असुरक्षा की भावना का विशेष प्रभाव पड़ता है। इनकी वैयक्तिकता (Individuality) की स्पष्ट झलक इसी समय से मिलने लगती है। कुछ बच्चे शान्त, कुछ वाचाल, कुछ नेतृत्व में रुचि लेने वाले तो कुछ चुपचाप रहने वाले होते हैं। यही उनकी वैयक्तिकता है। इन पर सामाजिक अनुभवों, आर्थिक स्तर, शारीरिक बनावट, स्वास्थ्य, बुद्धि एवं आत्मविश्वास की भावना आदि का भी प्रभाव पड़ता है।

5 **पूर्व किशोरावस्था एवं व्यक्ति विकास** (Preadolescence o Puberty and personality) – इसकी अवधि 10-12 वर्ष से 13-14 वर्ष तक मानी गई है। इस अवस्था में व्यक्ति संबंधी विकासात्मक परिवर्तन की संख्या तथा सीमा अपेक्षाकृत कम होती है क्योंकि इस अवधि पर किशोरावस्था की स्पष्ट छाप रहती है। फिर भी बालक तथा बालिकाओं में लैंगिक शक्तियों का विकास होने के साथ-साथ उनके सामाजिक क्षेत्र में भी वृद्धि होती है। उन्हें नवीन प्रकार के समायोजन सीखने पड़ते हैं तथा चपलता, अस्थिरता एवं जिज्ञासा की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है और उनमें नकारात्मक दृष्टिकोण का भी दर्शन होता है (Maefarlance et.al.1954)

6. **किशोरावस्था एवं व्यक्ति विकास** (Adolescence and Personality Development) – यह अवधि 13-14 वर्ष से 18 वर्ष तक होती है। इसमें व्यक्ति में अनेक प्रकार के परिवर्तन प्रदर्शित होते है। जैसे - इस अवधि में व्यक्ति सामाजिक, संवेगात्मक, मानसिक एवं अन्य प्रकार के व्यवहार परिपक्वता अग्रसर होती है। उनमें अपने माता-पिता तथा सम्बन्धियों के प्रति यह धारणा विकसित होने लगती है कि वे उन्हें समझने की कोशिश नहीं कर रहे है और उन पर अनावश्यक दबाव डाल रहे है। वे अपनी भावनाओं, इच्छाओं, संवेगों को अधिक महत्त्व देने लगते है। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण अवास्तविक (Unrealistic) होने लगता है। उन्हें समायोजन के नवीन आयाम सीखने पड़ते है तथा उनमें नवीन मूल्य (Values) का भी विकास होता है।

किशोरावस्था में व्यक्ति अच्छी एवं गन्दी आदतों के प्रति सजग हो जाता है और अपना मूल्यांकन अपने मित्रों के साथ करने लगता है। वह सामाजिक अनुमोदन प्राप्त करने का प्रयास करता है। बाल्यावस्था में विकसित व्यक्ति प्रतिमान का स्थिरीकरण होने लगता है और व्यक्ति अवांछित आदतों को त्यागने तथा वांछित आदतों को अंगीकार करने लगता है (Allport, 1963; Blos, 1971; Kagan and Mass, 1962)। यदि व्यक्ति नवीन पर्यावरण में जाता है (जैसे - स्कूल या कॉलेज जाना या नयी जगह पर जाना) तो पर्यावरणी परिवर्तन का उसके व्यक्ति विकास पर प्रभाव पड़ता है। ऐसे बालक जो स्कूल या कॉलेज जाने लगते है उनमें उन बालकों की अपेक्षा संवेगात्मक परिवक्वता, सामाजिकता तथा साहिष्णुता के गुण अधिक विकसित होने लगते हैं जो घर पर ही रह जाते हैं (Schmidt, 1970; Waterman and Waterman, 1971)। इस अवस्था में बालक उन लोगों के साथ अधिक सम्पर्क रखना चाहता है जो उसके आत्म अवधारण के अनुकूल व्यवहार करते है। इस अवस्था में होने वाले विभिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन का व्यक्ति के प्रतिमान पर व्यापक प्रभाव

नोट

पड़ता है। इसे अवस्था में व्यक्ति प्रतिमान पर पारिवारिक संबंधों, मित्रों एवं किशारों की आकांक्षाओं का भी प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि किशोरावस्था में व्यक्ति-प्रतिमान में परिवर्तन तथा स्थिरीकरण व्यापक पैमाने पर होता है। **हरलॉक** (1975) के अनुसार, उन किशारों तथा किशोरयों के व्यक्ति प्रतिमान अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त तथा समुचित होते है। जो 1. लक्ष्य, निर्धारित करने में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण युक्त करते है, 2. जो अपनी शक्ति तथा कमजोरयों का सही मूल्यांकन करते है, 3. जिनके 'स्व' (Self) में स्थायित्व होता है तथा 4. जो अपनी उपलब्धियों में सन्तुष्ट होते है और अपनी कमियों में सुधार का प्रयास करते है। इससे स्पष्ट है कि किशारों की स्वयं अपने प्रति जो धारणा होती है उसका उसके समायोजन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

7. **प्रौढ़ावस्था एवं व्यक्ति प्रतिमान** (Adulthood and Personality Patterns) – प्रौढ़ावस्था का प्रसार 18 वर्ष से 40 वर्ष तक माना गया है। व्यक्ति के जो प्रतिमान किशोरावस्था तक विकसित हो चुके रहते है उनके विकास की अन्य अवस्थाओं में प्राय: स्थिरीकरण होता है और कुछ नवीन शीलगुण भी विकसित होते है यथा - प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति नवीन सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुरूप कार्य करना सीखता है, उसके ऊपर परिवार सम्भालने की भी जिम्मेदारी आ जाती है और जीवन तनावयुक्त हो जाता है। वह स्वतंत्र रूप से सोचना प्रारम्भ करता है। इससे उसमें सर्जनात्मकता की शक्ति बढ़ती है।

8. **मध्यावस्था में व्यक्ति प्रतिमान** (Personality Patterns in middle age) – इसका प्रसार 40 वर्ष से 60 वर्ष माना गया है। इस अवस्था में व्यक्ति की योग्यताओं में ह्रास प्रारम्भ हो जाता है। उसकी मानसिक एकाग्रता (Mental alertness), मानसिक स्थिरण (Mental fixation) एवं सक्रियता में कमी आने लगती है। इन कारणों से समायोजन में भी कठिनाई अनुभव की जाती है। जीवन में स्थिरता, एकरूपता तथा परवन के अभाव के कारण व्यक्ति में चिन्ता, बोरियत एवं उदासी बढ़ने लगती है। इसका समायोजन पर बाधक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस अवस्था में व्यक्ति प्रभावी में समन्वय की कमी आने लगती है और 50 वर्ष के बाद उपर्युक्त लक्षण पूर्णतया स्पष्ट होने लगते हैं।

9. **वृद्धावस्था में व्यक्ति प्रतिमान** (Personality Patterns in old age) – इसका प्रारम्भ 60 वर्ष से माना जाता है और जीवन के शेष समय तक यही अवस्था रहती है। इसमें ह्रास की गति बहुत तीव्र हो जाती है और व्यक्ति में शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता आने लगती है। स्मरण शक्ति कमजोर पड़ने से समायोजन की समस्या स्थाई रूप कर लेती है (Tenny, 1984) व्यक्ति में रूढ़िवादिता बढ़ जाती है और उसमें हीनता की भावना भी उत्पन्न हो सकती है। नयी पीढ़ी के साथ उसका संबंध सन्तोषजनक नहीं रह जाता है और एकाकीपन ही उसका सहारा रह जाता है। इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि व्यक्ति प्रतिमान में ास तथा समन्वय का अभाव व्यक्ति को असहायावस्था में पहँचा देते है। इन समीक्षाओं से यह भी स्पष्ट हो रहा है कि प्रौढ़ावस्था तथा उसके बाद की अवस्थाओं में व्यक्ति में कोई विशेष नवीन प्रतिमान नहीं उत्पन्न होते है बल्कि प्रतिमान में धीरे-धीरे ह्रास ही होता है। अत: व्यक्ति के विकास के दृष्टिकोण से किशोरावस्था तक की ही अवस्थाएं विशेष महत्त्व रखती हैं।

1.12 व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले कारक

व्यक्ति पर अनेकानेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। इनका वर्णन वर्गवार किया जा सकता है, जैसे – आनुवंशिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक।

व्यक्ति विकास के आनुवंशिक निर्धारक

व्यक्तित्व के विकास पर निम्नांकित आनुवंशिक कारकों का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक पड़ता है। इन्हें वैयक्तिक कारक भी कहा जाता है।

नोट

1. **शारीरिक गठन** (Physique) – शेल्डन (1940) के अनुसार, शारीरिक संरचना व्यक्ति को प्रभावित करती है। मोटे माँसल या दुर्बल लोगों के व्यक्तित्व में अन्तर उनकी शारीरिक संरचना के कारण प्रदर्शित होता है। अधिक मोटा या दुर्बल होना बच्चे कुरूपता में लेते है। इसका उनके ऊपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। (Lerner etc. 1975, Lester, 1974)। कभी-कभी अन्य बच्चे या प्रौढ़ भी बच्चों का उनकी संरचना के आधार पर नामकरण कर देते है। यदि नाम प्रतिकूल भावना व्यक्त करते है (जैसे - मल्लू, झबरा, गदहा) तो इससे उनमें हीनता भाव के विकसित होने की आशंका पैदा हो जाती है।
2. **बुद्धि** (Intelligence) – व्यक्ति के विकास में बुद्धि का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है, क्योंकि बुद्धि समायोजन, उपलब्धि तथा सर्जनशीलता जैसे सभी उपयोगी व्यवहारों को निर्धारित करती है। प्रखर बालकों में श्रेष्ठता जबकि मन्द बालकों में हीनता विकसित हो सकती है। इसका उसके व्यक्ति पर घातक प्रभाव पड़ता है। प्रखर बुद्धि के बालकों के प्रति माता-पिता, मित्रों एवं शिक्षकों की धारणा अनुकूल हो जाती है। इससे उनमें आत्म विश्वास बढ़ता है (Hilgard etc., 1975)। बालकों में बौद्धिक स्तर का मापन करके उनकी मानसिक योग्यता के अनुसार शिक्षण की व्यवस्था की जाये, तो कम बुद्धि के बालकों के व्यक्ति के विकास को भी काफी सीमा तक सन्तोषजनक बनाया जा सकता है। मानसिक मन्दता से प्रभावित बच्चे प्राय: बौने होते है। उनमें मंगोलियन (Mangolion), लघुशीर्षता (Microeephaly) एवं जलशीर्षता (Hydrocphaly) की भी विशेषताएं पाई जाती हैं। इनका व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वैसे, चूँकि मन्द बच्चे स्वयं के बारे में कम सोच पाते है। अत: योग्यता की कमी से उत्पन्न प्रतिकूल धारणाओं की वे अनुभूति नहीं कर पाते (Gottleb, 1975)।
3. **आकर्षकता** (Attractoveness) – बालक का सुन्दर या कुरूप दिखना भी आनुवंशिक प्रतिफल है। इसका उनके व्यक्ति तथा उनके प्रति लोगों की धारणा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। (Clifford and Walster, 1973,1973 Kleck et.al. 1974)। ऐसा भी देखा जाता है कि माता-पिता की भाँति शिक्षक भी आकर्षक बच्चों को अच्छा मान बैठतें है और उन्हें उच्च प्राप्तांक प्रदान करते है। इसका उनके आत्म विश्वास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत अनाकर्षक बच्चे लोगों के अपनव तथा स्नेह की कमी के कारण स्वयं में प्रत्यक्षित करने लगते है। इससे उनमें हीनता बढ़ती है और आत्म विश्वास कम होने लगता है।
4. **शारीरिक दशाएँ** (Physical Conditions) – व्यक्ति के विकास पर शारीरिक दशाओं का भी प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से सामान्य स्वास्थ्य एवं शारीरिक दोष महत्त्वपूर्ण है। प्राय: स्वय एवं दोषविहीन बालकों के प्रति परिवार वालों का दृष्टिकोण अनुकूल और अस्वस्थ तथा दोषयुक्त बच्चों के प्रति अनानुकूल हो जाता है। मैट्टसन (Mattson, 1972) ने लिखा है कि इससे अस्वस्थ तथा दोषयुक्त बच्चों में हीनता का भाव विकसित हो जाता है। खराब स्वास्थ्य के कई दुष्परिणाम सामने आते है - 1. थकान जल्दी आती है इससे बच्चे स्वभाव से चिड़िचड़े हो जाते है। अत: उनके प्रति प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ की जाती है। 2. कुपोषण के कारण शारीरिक ऊर्जा कम हो जाती है। उनमें संकोच, झुँझलाहट, ग्लानि तथा असामाजिक व्यवहार में वृद्धि होने लगती है। 3. चिरिकालिक रोग (यथा एजीमा, मधुमेह आदि) हो जाने से संवेगात्मक अस्थिरता बढ़ती है, प्रबल नकारात्मक संवेग

नोट

उत्पन्न होते हैं और परिवार पर आश्रितता बढ़ती है। 4. अन्त:स्रावी ग्रन्थियों, विशेषकर थायरफ्रायड के अधिक स्राव से घबराहट, उत्तेजना, अशान्ति तथा अतिसक्रियता और इससे कम स्राव से सुस्ती, ग्लानि तथा निष्क्रियता की समस्या पैदा होती है।

जहाँ तक शारीरिक दोष का प्रश्न है, वे दो रूपों में व्यक्ति को प्रभावित करते है। प्रथम - वे किस प्रकार की क्रियाओं में भाग ले पाते है और द्वितीय - लोगों की उनके प्रति धारणा कैसी है। किसी बालक में दोष तथा समानता जितनी अधिक होगी, उनमें हीनता भाव उतना ही अधिक या हो जाएगा (Rapier et,al.1972)।

5. **यौन की भूमिका** (Role of Sex) – व्यक्ति के विकास तथा संगठन पर लैंगिक भिन्नता का भी महत्त्व प्राप्त किया गया है। लैंगिक भिन्नता के कारण समाज में बालक बालिकाओं की भूमिका अलग-अलग निर्धारित होती है। भूमिकाओं में अन्तर और जैविक संरचना में अन्तर के कारण उनके व्यवहार में भी अन्तर होता है जो व्यक्ति के विकास तथा संरचना को प्रभावित करता है। माक्र्स (1976) के अनुसार, अनेक अध्ययन से यह प्रमाणित हुआ है कि लैंगिक भिन्नता के कारण व्यक्ति की संरचना में अन्तर प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, पुरुष की तुलना में महिलाओं में क्षेत्र अनाश्रितता की विशेषता अधिक पायी जाती है और क्षेत्र अनाश्रितता की विशेषता कम पाई जाती है। कुछ अन्य विज्ञान का निष्कर्ष है कि लड़कों की तुलना में लड़कियाँ मदान्धता एवं असुरक्षा की भावना अधिक प्रदर्शित करती है।

6. **जन्मक्रम** (Birth order) – व्यक्ति के विकास तथा संरचना पर बालकों के जन्मक्रम का प्रभाव पड़ता है। हरलॉक (1975) के अनुसार, प्रथम सन्तान में परिपक्वता शीघ्र आती है, पारिवारिक समायोजन अच्छा होता है परन्तु उसमें असुरक्षा (Insecurity) की भावना अधिक होती है और, उत्तदायित्व की भावना कम होती है परन्तु सामाजिक समायोजन अच्छा होता है (माक्र्स, 1976)। प्रथम सन्तानों में बौद्धिक क्षमता अधिक होती है परन्तु उसके साथीगण उसे कम पसंद कर सकते है क्योंकि प्रथम सन्तानों का सामाजिक समायोजन कम होता है। फ्रायड, एडलर तथा रैंक ने भी जन्मक्रम को महत्त्वपूर्ण माना है। कुछ अन्य लोगों का भी निष्कर्ष है कि बाद में जन्में बच्चों का व्यवहार अधिक स्वभाविक होता है।

7. **अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का प्रभाव** (Effects of Endocrine Glands) – व्यक्तित्व तथा व्यवहार के विकास पर अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का भी प्रभाव पड़ता है। ये ग्रन्थियाँ नलिकाविहीन होती है और अपने रसद्रवों को रक्त में प्रवाहित करती है। किसी भी ग्रन्थि से यदि असन्तुलित (आवश्यकता से कम या अधिक) स्राव होता है, तो उसका विकास पर अवरोधक प्रभाव पड़ता है। विभिन्न अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के प्रमुख रसद्रवों तथा उनके प्रभावों को निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका : अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के रसद्रव तथा उनके प्रभाव

ग्रन्थियों के नाम	प्रमुख रसद्रव	विकास व्यवहार पर प्रभाव
अग्न्याशयी (Pancreas)	Insulin	कम स्राव की दशा में मधुमेह की बीमारी, चिड़चिड़ापन एवं कमजोरी
अबटू (Thyroid)	Thyroxin	कमी होने पर बौनापन, मानिसक दुर्बलता एवं अधिक स्राव की दशा में लम्बाई में अत्यधिक वृद्धि, अस्थिरता, चिड़चिड़ापन बढ़ता है।

नोट

उप अबटू (parathyroid)	Paratharmone	स्राव कम होने पर शरीर में ऐंठन, हड्डियों में कमजोरी बढ़ती है।
अधिवृक्क (Adrenal)	Adrenalin	कमी होने पर रक्त संचार मंद पड़ता है, थकान एवं चिड़चिड़ापन बढ़ता है।
	Pituirine	रक्त स्राव कम होने पर पेशियों तथा हृदय गति में शिथिलता बढ़ती है। अन्य ग्रन्थियों के नियंत्रण में कमी आती है। यह Master gland है
	Androgens and Estrogens	कमी होने पर यौन अंगों का विकास तथा गौण लैंगिक लक्षण का विकास अवरूद्ध होता है।

व्यक्ति के सामाजिक निर्धारक

व्यक्ति के विकास में सामाजिक या पर्यावरणीय कारकों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इस दृष्टि से निम्नांकित कारक महत्त्वपूर्ण है –

1. **प्रारम्भिक सामाजिक अनुभव** (Early Social Experiences) – व्यक्ति के विकास में प्रारम्भिक सामाजिक अनुभवों का विशेष महत्त्व है। प्रारम्भिक अनुभवों को जीवन की आधारशिला के रूप में स्वीकार किया जाता है। जीवन के प्रारम्भिक वर्ष में बालकों को जैसा अनुभव होता है और वे जिन परिस्थितियों में रहते है, उनका उन बालकों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, परिवार में कोई लड़की है और उसे उसका बड़ा भाई प्राय: तंग करता हो। ऐसा प्राय: होता भी है। इसके कारण वह लड़की अपने भाई के प्रति आक्रामक व्यवहार कर सकती है और उससे घृणा भी कर सकती है। इस अनुभव का उपयोग वह उन लोगों पर भी कर सकती है जो उसके भाई जैसा व्यवहार करते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जीवन में प्रारम्भिक अनुभवों का अन्तकरण होता रहता है। इसके विपरीत यदि प्रारम्भिक अनुभव सुखद रहे हैं, तो उसका बालकों के व्यक्ति के विकास पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। बालकों का सामाजिक क्षेत्र बढ़ने से उनको यह ज्ञान होता रहता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित है।
2. **सामाजिक वंचन** (Social Deprivations) – व्यक्ति के विकास में सामाजिक अन्तर्क्रिया (Social Interaction) का विशेष महत्त्व है। जिस प्रकार की परिस्थतियों के साथ अन्तर्क्रिया होगी, उसी प्रकार का व्यक्ति भी विकसित होगा। यदि बालक को सामाजिक अन्तर्क्रिया या सामाजिक अधिगम से वंचित कर दिया जाये, तो उसमें किसी भी शीलगुण का विकास नहीं हो पायेगा। म्यूशेन आदि ने भी यही विचार व्यक्त किया है कि सामाजिक वंचन का व्यक्तित्व के विकास पर बड़ा ही घातक प्रभाव पड़ता है। भौगोलिक एकाकीपन (Geographical isolation) एवं पारिवारिक नियंत्रण के कारण भी बालकों को कभी-कभी सामाजिक अनुभवों का लाभ नहीं मिल पाता है। बच्चों को इन घातक परिस्थतियों से बचाना चाहिए। क्योंकि ऐसा न करने से बालकों को अन्तवर्क्तिक संबंध (Interpersonal relationships) स्थापित करने में कठिनाई होती है।
3. **सामाजिक स्वीकृति** (Social Acceptance) – व्यक्ति के विकास पर सामाजिक स्वीकृति का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। बच्चे अपने से बड़ों तथा साथियों की स्वीकृति एवं अनुमोदन प्राप्त करने की

नोट

प्रबल इच्छा रखते हैं। इनकी यह इच्छा उन्हें अच्छे गुणों का विकास करने के लिए प्रेरित करती है। स्कूल में प्रवेश लेने के उपरान्त वे अपने साथियों की भावनाओं को अधिक महत्त्व देने लगते हैं और उन्हें अच्छे लगने वाले व्यवहारों को अर्जित करने लगते है। कभी-कभी इस मुद्दे पर माता-पिता की असहमति हो सकती है, फिर भी वे अपने साथियों की इच्छाओं को अधिक महत्त्व देना चाहते है। वे सुखद गुणों का विकास करके लोकप्रिय बनना चाहते है। इससे स्पष्ट है कि सामाजिक स्वीकृति से बालकों में अच्छे गुणों का विकास होता है। परन्तु जिन्हें सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल पाती है या तिरस्कृत होते है उनमें हीनता घर कर जाती है। ऐसे बालक जिन्हें नाममात्र की सामाजिक स्वीकृति मिल पाती है। उनमें तनाव देखा जाता है और वे अन्य बालकों पर अपना प्रभाव जमाने का पूरा प्रयास करते है। वे समाज से विमुख होने लगते है और अन्तर्मुखता के लक्षण बढ़ते है। इससे स्पष्ट है व्यक्ति एवं सामाजिक समायोजन पर सामाजिक स्वीकृति का विशेष प्रभाव पड़ता है।

4. **प्रास्थितिप्रतीक** (Status Symobl) – बालक के स्व तथा उसके व्यक्ति पर प्रस्थिति से संबंधित प्रतीकों का भी प्रभाव पड़ता है। समाज में मान्यता प्राप्त या महत्त्व दर्शाने वाले प्रतीकों से बालकों को अवगत होना चाहिए। ऐसा देखा जाता है कि अपने समूह में जो बच्चे अच्छे वस्त्र धारण किये रहते है उनके प्रति अनुकूल या धनात्मक धारणा शीघ्रता से बन जाती है। इस प्रतीक (वस्त्र) से बालक के परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अनुमान लगता है। बिकमैन के अनुसार परिस्थिति के विभिन्न प्रतीकों में वस्त्र का स्तर बच्चों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि इससे समूह में बालकों को स्वयं की स्थिति की भी झलक मिलती है। जिन बच्चों को वस्त्र तथा अन्य सामियाँ सरलता से प्राप्त होती रहती है उनमें स्व का समुचित विकास होता है। सुविधाओं से वंचित बालकों में प्रतिक्रियात्मक प्रवृतियाँ विकसित होने लगती हैं। इनका उनके स्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

5. **परिवार का प्रभाव** (Influence of Family) – व्यक्ति के विकास पर परिवार का व्यापक एवं गहरा प्रभाव पड़ता है। बालकों के व्यवहार, आचार तथा विचार को परिवार अपनी मान्यताओं के अनुरूप संवारता है। इसके अतिरिक्त छोटे बच्चे परिवार के वरिष्ठ सदस्यों के साथ तादात्मीकरण एवं अनकुरण करके अपना अलग अस्तित्व बनाने का प्रयास करते है। परिवार में रहकर बच्चे विभिन्न प्रकार के अनुभव एवं शिक्षण प्राप्त करते है। जो उनके व्यक्ति के प्रतिमान को निर्धारित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। अनेक अध्ययन से यह प्रमाणित हो चुका है कि यदि माता-पिता के सम्पर्क तथा प्रभावों में बच्चे नहीं है तो उनमें आत्मनियंत्रण का अभाव हो जाता है। स्लैटर ने भी इस बात पर बल दिया है कि बालक का अपने माता-पिता के साथ जो संबंध होता है उसका व्यक्ति के प्रतिमान पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

   उपर्युक्त विवचेन से स्पष्ट हो रहा है कि व्यक्ति के विकास में परिवार की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। व्यक्ति के विकास के प्रसंग में परिवार के महत्त्व को स्पष्ट करते हए हरलॉक ने कहा है कि ''व्यक्ति के निर्धारकों में परिवार का प्रथम स्थान है। इसकी तुलना में विद्यालय का द्वितीय स्थान है।''

   "Of all the conditions that influence personality development relationship between the individual and the members of his family unquestionably rank first. By contrast with home, the school is indeed secondary."

   परिवार का प्रभाव क्यों (Family's Influences why)-कुछ अध्ययन से यह पता लगाने का प्रयास किया गया है कि व्यक्ति प्रतिमान पर परिवार का प्रभाव क्यों पड़ता है। इस प्रसंग में अनेक कारणों का उल्लेख किया जा सकता है। परन्तु यहां पर चार कारकों को ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. चूँकि बालकों का परिवार में समय अधिक व्यतीत होता है। अत: परिवार का प्रभाव व्यक्ति के विकास पर अधिक पड़ता है।
2. अन्य संस्थाओं या समूह की तुलना में बालकों पर परिवार का नियंत्रण अधिक रहता है।
3. पारिवारिक संबंधों का प्रभाव लम्बी अवधि तक पड़ता है।
4. परिवार के साथ होने वाले प्रारम्भिक अनुभवों का व्यक्ति के विकास में विशेष स्थान है।

नोट

''जिस प्रकार जीव का शुभारम्भ माता के गर्भाशय में होता है उसी प्रकार व्यक्ति का विकास पारिवारिक संबंधों के गर्भाशय से ही प्रारम्भ होता है।'' (Glasner, 1962)

पारिवारिक अनुभव जीवन की आधारशिला के रूप में (Family Experiences as Foundation stone of life) – चूँकि बच्चों के सामाजिक संबंधों की शुरूआत परिवार से ही होती है। अत: पारिवारिक विशेषताएँ बच्चों के व्यक्तित्व पर अमिट प्रभाव छोड़ती है। उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक आदि मान्यताओं की प्रारम्भिक शिक्षा परिवार से ही मिलती है। इसके अतिरिक्त परिवार के सदस्यों की विशेषताओं का बच्चों द्वारा अनुकरण किया जाता है। पारिवारिक परिवेश, परिवार का आकार, बच्चों की क्रमिक स्थिति तथा पारिवारिक भूमिकाएँ आदि बच्चों के व्यक्तित्व के सँवारने का कार्य करती है। यथा, विघटित परिवार के बच्चे प्राय: अवांछित व्यवहारों में लिप्त पाये जाते है। प्रथम सन्तानों से प्रत्याशाएँ अधिक की जाती है, उनमें व्यावहारिक परिपक्वता शीघ्र आती है। परन्तु समायोजन ठीक नहीं होता है। यह पाया गया है कि बड़े परिवारों में बच्चों की देखरेख संतोषजनक रूप में हो पाती है। अत: व्यावहारिक समायोजन की समस्या अधिक दिखाई पड़ती है।

हरलॉक (1978,84) ने व्यक्ति पर पड़ने वाले पारिवारिक परिवेश के प्रभाव को निम्नवत रेखांकित किया है -

1. परिवेश आलोचनात्मक होने पर निन्दात्मक प्रवृति पैदा होती है।
2. शत्रुता का परिवेश होने पर झगड़ालू स्वभाव बढ़ता है।
3. भय का परिवेश आशंका को जन्म देता है।
4. अनावश्यक दया से हीनता आती है।
5. सहिष्णु परिवेश धैर्य बढ़ाता है।
6. ईर्ष्यात्मक परिवेश अपराध बोध की भावना बढ़ाता है।
7. निंदा किये जाने से व्यक्ति लज्जालु हो जाता है।
8. पारिवारिक प्रोत्साहन से आत्मविश्वास बढ़ता है।
9. प्रशंसा प्राप्त होने पर स्वस्थ व्यक्तित्व विकसित होता है।
10. पारिवारिक स्वीकृति प्राप्त होने पर स्नेह विकसित होता है।
11. पारिवारिक मान्यता मिलते रहने से लक्ष्य चयन सरल हो जाता है।
12. ईमानदारी का परिवेश सत्य के प्रति निष्ठा विकसित करता है।
13. सुरक्षा का परिवेश होने पर स्वयं में तथा अन्य लोगों में भी उसकी आस्था बढ़ती है।
14. पारिवारिक अनुमोदन से स्वयं के प्रति अच्छी धारणा बनती है।

नोट

6. **समूह का प्रभाव** (Influence of group) – व्यक्ति के विकास पर समूहों का विशेष रूप में प्रभाव पड़ता है। सामाजिक व्यवस्था में समूहों का विशेष स्थान होता है। प्रत्येक बालक या व्यक्ति एक या एक से अधिक समूहों का सदस्य होता है। सामाजिक समूहों से तात्पर्य मनुष्यों के ऐसे निश्चित संग्रह से है जिसमें व्यक्ति परस्पर अन्तर-संबंधी कार्य करते हैं, तथा जो अपने द्वारा या दूसरे द्वारा परस्पर अन्तर्क्रिया की इकाई के रूप में मान्य होते हैं। इस प्रकार कह सकते है कि समूह में व्यक्तियों का होना आवश्यक है और इनमें आपस में अन्तर्क्रिया भी होनी चाहिए। इससे स्पष्ट हो रहा है कि समूह के सदस्यों का व्यवहार एक-दूसरे से प्रभावित होता रहता है एवं वे एक निश्चित विचारधारा को मानते हैं। प्रत्येक समूह की एक निश्चित विचारधारा होती है और उसका सदस्यों के व्यवहार पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। समूह प्राथमिक एवं गौण प्रकार के होते हैं। परिवार एक प्राथमिक समूह है। स्कूल या अन्य संगठन गौण समूह है। इन दोनों का ही व्यक्ति के विकास पर प्रभाव पड़ता है।

7. **विद्यालय का प्रभाव** (Influence of the school) – सामाजिक व्यवस्था में विद्यालयों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। जिन विद्यालयों के बच्चे प्रारम्भिक शिक्षा पाते हैं, उनके आदर्शों तथा क्रियाकलापों का बालकों के व्यवहार तथा व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है। विद्यालय में पठन-पाठन की व्यवस्था, सामान्य वातावरण, मनोरंजन के साधन एवं शिक्षकों की क्षमता तथा व्यक्तित्व के गुणों का प्रत्यक्ष संचारण बालकों में होता है।

   विद्यालय औपचारिक शिक्षा के केन्द्र हैं। इसके अतिरिक्त विद्यालयों में बालकों को सामाजिक अधिगम का दीर्घकालिक अवसर भी प्राप्त होता है। बालकों में उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक एवं अन्य सामाजिक गुणों के विकास का अवसर विद्यालयों में काफी अधिक मिलता है। सोलोमन ने इस प्रसंग में लिखा है कि "बालक के व्यक्तित्व के विकास पर परिवार के बाद सबसे अधिक प्रभाव शिक्षकों का ही पड़ता है।

   "Next the parents, teachers have influence on the development of a child's personality than any other groups of people. The teacher-child relationship has its neatest impact on the child's early school years."

   विद्यालय जीवन से संबंधित निम्नांकित पक्षों का बालकों के स्व तथा उसके व्यक्तित्व पर विशेष प्रभाव पड़ता है –

   i. **कक्षा का संवेगात्मक परिवेश** (Emotional climate of class room) – बालकों में सहयोग, प्रसन्नता, कार्य के प्रति अभिप्रेरणा एवं नियमों के प्रति अनुरूपता विकसित करने के लिए विद्यालय का परिवेश स्वस्थ एवं तनावरहित होना चाहिए अन्यथा बालकों में नकारात्मक प्रवृत्तियाँ विकसित हो सकती हैं। यहाँ शिक्षकों का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। उनका आचरण, दृष्टिकोण, अनुशासन के नियम, बालकों के प्रति स्नेह तथा कार्य में रुचि आदि बालकों के व्यक्ति पर गहरा प्रभाव डालते है।

   ii. **शिक्षक** (Teachers) – शिक्षक कार्य तथा बालकों में रुचि जितनी अधिक लेंगे, बालकों में अनुकूल गुणों का विकास भी उतना ही अधिक होगा।

   iii. **अनुशासन** (Discipline) – विद्यालय में अनुशासन हेतु प्रयोग में लायी जाने वाली अनुशासनात्मक विधियाँ भी बालकों के स्व तथा व्यक्ति को प्रभावित करती है। यथा - निरंकुश अनुशासन से

उनमें तनाव, प्रतिरोध एवं विरोधी व्यवहार विकसित होता है जबकि स्वच्छन्द अनुशासन की विधि से उनमें उत्तरदायित्व की भावना का अभाव, आत्मकेन्द्रिता तथा अधिकारयों के प्रति सम्मान की कमी की भावना बढ़ती है। परन्तु लोकतान्त्रिक अनुशासन की विधि प्रयोग में लेने से उनमें आत्मसार्थकता, प्रसन्नता, सहयोग, विश्वसनीयता तथा ईमानदारी के गुण विकसित होते है।

iv. **सांस्कृतिक मूल्य का प्रसार** – विद्यालय द्वारा सांस्कृतिक मूल्य के बालकों में प्रसार होता है। सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करने हेतु ऐसा करना आवश्यक भी है। इस कार्य में परिवार की अपेक्षा विद्यालयों की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

v. **पक्षपात** – शिक्षकों को पक्षपात से बचना चाहिए। क्योंकि जो बालक उनके प्रियपात्र बन जाते हैं उनमें अहंकार तथा जो ऐसा नहीं बन पाते उनके प्रतिक्रियात्मक एवं विरोधी प्रवृतियाँ बढ़ने लगती है। इससे परिवेश दूषित होता है।

vi. **शैक्षिक उपलब्धि** – विद्यालय में होने वाली शैक्षिक उपलब्धियाँ भी उनके स्व तथा व्यक्ति को प्रभावित करती हैं। सफल बालकों में प्रसन्नता एवं गर्व तो असफल बालकों में निराशा, एवं हीनता विकसित होने लगती है। असफल बालकों पर अलग से ध्यान दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार उच्च कक्ष में प्रोन्नति से सफलता तथा प्रोन्नति न होने से असफलता का बोध होता है।

vii. **सामाजिक उपलब्धि** – पठन पाठन के अतिरिक्त अन्य क्रिया-कलाप जैसे - खेलकूद में उपलब्धि, सामाजिक स्वीकृति एवं नेतृत्व में सफलता आदि भी बालकों के स्व तथा व्यक्ति को प्रभावित करती है। विद्यालय इन कार्यों को जितना अधिक महत्त्व देगा, उसी के अनुसार बालकों का स्व भी इनसे प्रभावित होगा।

इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि बालकों के स्व तथा व्यक्ति पर विद्यालयों का व्यापक तथा गहरा प्रभाव पड़ता है। योग्य तथा सुसमायोजित शिक्षक बालकों में अच्छे गुणों का विकास करते हैं। परन्तु अक्षम तथा कुसमायोजित शिक्षकों के होने पर बालकों में अवांछित व्यवहारों के विकास की संभावना बढ़ती है।

8. **संवेग** (Emotions) – ऐसा निष्कर्ष है कि यदि किसी बालक में प्राय: प्रबल और अनुचित संवेगात्मक प्रदर्शन होता है, तो लोग उसे अस्थिर और अपरिपक्व मानने लगते है। प्राय: यौवनारम्भ से पहले बच्चों में संवेगात्मक तीव्रता, अस्थिरता, घबराहट, नाखून काटना एवं तनाव आदि की आवृत्ति बढ़ जाती है। लड़कियों के साथ ऐसा प्राय: होता है। यदि वे अपने संवेगों पर उचित नियंत्रण स्थापित कर लें, तो उनके बारे में अनुकूल धारता बनती है अन्यथा प्रतिकूल धारणा तो बनती ही है। इससे उनका आत्म प्रभावित होगा। संवेगात्मक विघ्नों के कारण समायोजन भी बाधित होता है। इससे स्पष्ट है कि संवेग व्यक्ति को अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष दोनों ही रूप में प्रभावित करता है।

9. **नाम** (Names) – माता-पिता द्वारा बच्चों का जो नाम रखा जाता है वह पुकारने बाल मन में सुखकर, तटस्थ या विकर्षणात्मक भाव उत्पन्न कर सकता है। सुखकर भाव उत्पन्न करने वाले नामों से बच्चों के बारे में अनुकूल धारणा बनने की सम्भावना रहती है। इससे उनका स्व प्रभावित होगा। बच्चे अपने नाम की सार्थकता तीसरे वर्ष के आसपास, जब वे अन्य बच्चों के साथ खेलना प्रारम्भ करते है, जान पाते है। नामों का प्रभाव साथियों के साथ संबंध स्थापना को प्रभावित कर सकता है। मुख्य नाम के अतिरिक्त उपनामों से भी उत्पन्न भाव बच्चों के स्व के प्रति बनने वाली धारणा को प्रभावित करते है। नाम ऐसा होना चाहिए जो लोगों के मन में सुखद भाव तथा साहचर्य उत्पन्न कर

सके। प्राय: खराब या असुखद नामों के उच्चारण के समय लोग बच्चों पर हँस पड़ते है। इससे उनमें स्वयं के प्रति प्रतिकूल भावना बन सकती है।

नोट

10. **सफलता तथा असफलता** – बच्चे स्वयं को अपने जीवन में सफल मानते है या असफल, इसका उनके आत्म पर प्रभाव पड़ेगा तथा उनका व्यक्तिगत और सामाजिक समायोजन प्रभावित होगा। सफलता की दशा में आत्म (Self) के बारे में अनुकूल धारणा बनती है जबकि असफलता के कारण जैसे व्यवहार उत्पन्न हो सकते हैं जो समायोजन को विघ्नित कर देते है। सफलता का मूल्यांकन बालक की अपनी दृष्टि से कैसा है, इसी पर उसकी स्वयं की प्रति धारणा निर्भर करेंगी। ऐसी सफलता जिसे लोग महत्त्व दे रहे है, परन्तु बालक स्वयं उसे अपनी आकांक्षा से कम मान रहा है, उसका उसके स्व पर बहुत अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा। सफलता एवं असफलता की दशा में प्राय: निम्नांकित प्रतिक्रियाएँ प्रदर्शित होती है।

व्यक्ति पर सफलता के प्रभाव

1. बालक गर्व एवं सन्तुष्टि अनुभव करता है।
2. यदि सफलता सहजता से बार-बार प्राप्त होती है, तो घमण्डी एवं अहंकारी हो जाते है, और प्रेरणा में कमी आ जाती है।
3. उपलब्धियों के साथ सन्तुष्टि तथा भविष्य के लिए प्रेरणा।
4. नवीन चुनौतियों का सामना करने हेतु तत्परता तथा डींग मारना।
5. अनाश्रितता एवं आत्मविश्वास की भावना में वृद्धि।
6. प्रसन्नता में वृद्धि।,

व्यक्ति पर असफलता के प्रभाव

1. आकांक्षा स्तर का गिरना तथा अपनी क्षमता के बारे में अनिश्चितता।
2. असफलता की पुनरावृद्धि से अनुपयुक्तता एवं हीनता की भावना और असफलता ग्रन्थि का प्रादुर्भाव।
3. स्व-चेतना तथा व्याकुलता में वृद्धि
4. दूसरों से सहायता की इच्छा में वृद्धि और भविष्य की चुनौतियों से विमुखता।
5. अभिप्रेरणा में कमी तथा दूसरे पर असफलता के लिए दोषारोपण।
6. क्रोध का दर्शन, तोड़फोड़ करना, उदास एवं अप्रसन्न रहना।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि बालकों को प्रारम्भिक वर्ष में असफलता से यथासम्भव बचाना चाहिए। यदि असफलता मिलती ही है, तो उसके तुरन्त बाद सफलता की अनुभूति के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए। इसे अतिरिक्त गम्भीर असफलता से अवश्य ही बचाया जाये और यदि ऐसा न हो सके, तो उन्हें हतोत्साह से बचाने के लिए समझाना चाहिए। अन्यथा वे कुण्ठा, ग्लानि एवं हीनता से प्रभावित हो जायेंगे और समायोजन बाधित हो जायेगा।

व्यक्ति पर संस्कृति का प्रभाव

व्यक्तित्व के विभिन्न निर्धारकों में संस्कृति की बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रत्येक समाज की अपनी सांकृतिक मान्यताएं, विश्वास, मानक तथा रीति-रिवाज होते है। इनकी व्यक्ति पर अमिट छाप पड़ती है। संस्कृति के प्रभावों की निम्नवत् समीक्षा की जा सकती है –

1. **सामाजिक मानक एवं व्यक्ति** (Social Norms and Personality) – प्रत्येक समाज में व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को नियन्त्रित तथा निर्देशित करने वाले कुछ मानक प्रचलित में होते है। प्रत्येक सभ्य व्यक्ति से ऐसे प्रचलित मानकों के अनुसार ही व्यवहार की प्रत्याशा की जाती है। इनका उल्लंघन करने पर व्यक्ति को सामाजिक परिहास, निन्दा या दण्ड का भागी बनना पड़ता है। मानकों का आशय व्यवहार संबंधी सामाजिक नियमों से है। ये व्यवहार का नियमन करते है।
2. **सामाजिक भूमिकाएँ एवं व्यक्ति** (Social Roles and Personality) – प्रत्येक समाज में व्यक्ति की भूमिकाएँ भी लगभग निश्चित होती है। उसे अपनी भूमिका के अनुसार व्यवहार या कार्य करना पड़ता है। ऐसा न करने पर उसे सामाजिक अवमानना का पात्र बनना पड़ सकता है। व्यक्ति जिस तरह की भूमिका का निर्वाह करता है या उससे जिस तरह की भूमिका निर्वाह की प्रत्याशा की जाती है, उससे उस भूमिका से संबंधित विशेषताओं के विकास की प्रत्याशा की जाती है। व्यक्ति द्वारा निर्वाह की जाने वाली भूमिकाओं का उसके आचार-विचार, व्यवहार तथा व्यक्ति पर भी प्रभाव पड़ता है। यथा किसी धार्मिक संगठन के नेता में अन्य धर्मों के प्रति उतना समादर नहीं होगा जितना कि किसी लोकतान्त्रिक नेता में होगा।
3. **पालन-पोषण की विधियाँ तथा व्यक्ति** (Child Rearing method and personality) – व्यक्ति के व्यक्तित्व पर उसके पालन-पोषण में युक्त विधि का भी प्रभाव पड़ता है। बच्चों को कठोर अनुशासन में रखने तथा स्नेह का अभाव होने से उनमें समायोजन के गुणों का समुचित विकास नहीं हो पाता है। इसी प्रकार अधिक रूढ़िवादी तथा धर्म भी परिवार के बच्चों में अन्धविश्वास, चिन्ता, भय एवं असुरक्षा की भावना जैसी कुप्रवृतियाँ भी विकसित हो जाती है। इन बातों का व्यक्ति विकास पर घातक प्रभाव पड़ता है। कुछ अध्ययन से यह भी निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि गतिशील परिवारों के बच्चों में उपलब्धि की आवश्यकता (Need of achievement) अधिक पायी जाती है। वे परिश्रमी तथा लक्ष्य-अभविन्यासी (Goal oriented) होते हैं। एक अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि रूसी परिवारों के बच्चों में संबंध की आवश्यकता (Need of affiliation) अधिक पायी जाती है। अनेक अध्ययन से यह भी निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि यदि बच्चों का अपने माता-पिता से सम्पर्क कम रहता है, तो उनमें आत्म-नियंत्रण की कमी आ जाती है। इन निष्कर्ष से यह स्पष्ट हो रहा है कि बचपन में पालन-पोषण की विधियाँ तथा पारिवारिक परिवेश ही व्यक्ति के शीलगुणों की आधारशिला रखते है। इसीलिए कहा जाता है कि जिस प्रकार जीव का शुभारम्भ माता के गर्भाशय से होता है उसी प्रकार व्यक्ति का विकास पारिवारिक संबंधों के गर्भाशय (Worm of family relationships) से ही प्रारम्भ होता है।
4. **स्वालम्बन बनाम परातिता** (Independence Vs Dependence) – व्यक्ति के सामाजिक एवं सांकृतिक परिवेश का उसमें विकसित होने वाले स्वावलम्बन एवं निर्भरता की भावना पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, विघटित परिवारों में पले बच्चों में असुरक्षा की भावना अधिक पायी जाती है। इससे उनमें परातिता एवं हीनता की ग्रन्थि विकसित होने की संभावना बढ़ जाती है। इसी प्रकार कठोर अनुशासन में पले बच्चों में स्वावलम्बन की प्रवृति कम विकसित होती है और वे सामान्य कार्यों के लिए निर्देश या सुझाव की आवश्यकता अनुभव करते है।
5. **धार्मिक पृष्ठभूमि तथा व्यक्तित्व** (Cultural Background and Personality) – कुछ अध्ययनकर्ताओं का निष्कर्ष है कि बालक में या व्यक्ति का धार्मिक परिवेश उसमें विशेषताओं के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सिंह (1992) के अनुसार मुस्लिम किशोर, हिन्दू किशोरों

नोट

की तुलना में कम बहिर्मुखी होते है जबकि मुस्लिम छात्रों में मनोविकृति (Psychoticism) मनस्ताप (Neuroticism) एवं मिथ्यावादिता की प्रवृतियाँ हिन्दू किशोरों की तुलना में अधिक या साम्प्रदायिक संस्थाओं एवं गैर साम्प्रदायिक संस्थाओं में पढ़ने वाले बच्चों एवं छात्रों के व्यक्ति में असमानता होती है। ऐसी संस्थाओं के छात्रों में रूढ़िवादिता, पूर्वाग्रह एवं असुरक्षा की भावना अधिक पाई जाती है। इन निष्कर्ष से व्यक्ति पर धार्मिक पृष्ठभूमि का प्रभाव स्पष्ट हो रहा है।

1.13 व्यक्ति का संप्रत्यय

व्यक्ति के अध्ययन में मनोवैज्ञानिकों की अत्यधिक रुचि के परिणामस्वरूप विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति को अपने-अपने दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया। इसी के फलस्वरूप व्यक्ति की अनेक परिभाषाएं दी गई। व्यक्ति का अंग्रेजी अनुवाद 'पर्सनालिटी' है जो लेटिन शब्द परसोना से बना है जिसका अर्थ होता है नकाब या मास्क। शब्दिक अर्थ के आधार पर तो व्यक्ति को बाहरी रूप में व्यक्ति कैसा दिखता है के आधार पर समझा गया। लेकिन व्यक्ति यह व्यक्ति का एक छोटा सा अंश मात्र है। अधिक महत्त्वपूर्ण तो उसके आन्तरिक गुण है जो व्यक्ति को एक स्थायी विशेषता प्रदान करते है। व्यक्ति की कुछ परिभाषाएं निम्न है –

व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करता है।

आईजेन्क के अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, चित्तप्रकृति, ज्ञानशक्ति तथा शरीर गठन का करीब करीब एक स्थायी एवं टिकाउ संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है।

बेरोन के अनुसार व्यक्ति किसी व्यक्ति के अनूठे तथा सापक्षे रूप से स्थिर व्यवहार, चिन्तन एवं संवेगों के पेटन के रूप में परिभाषित किया गया है।

1.14 फ्रायड का व्यक्तित्व सिद्धान्त

व्यक्ति की संरचना

फ्रायड ने व्यक्ति की संरचना को समझने के लिये दो मॉडल का निर्माण किया है। पहला - संरचनात्मक मॉडल एवं दूसरा - गत्यात्मक या संरचनात्मक मॉडल

संरचनात्मक मॉडल

फ्रायड ने इसे तीन स्तरो में बांटा है।

- **चेतन** – यह मन का वह भाग है जिसमें वर्तमान से संबंधित सभी अनुभूतियां, संवेदना, तात्कालिक अनुभव आदि होते है। किसी क्षण विशेष में व्यक्ति के मन मेंआ रही अनुभूतियों का संबंध उसके चेतन से होता है।
- **अर्द्धचेतन** – इसमें ऐसी इच्छाएं, विचार, भाव होते है जो वर्तमान चेतन में नहीं होते है परन्तु प्रयास करने पर वे हमारे चेतन मन में आ जाते है। अर्द्धचेतन को अवचेतन भी कहा जाता है।
- **अचेतन** – अचेतन अर्थात् चेतना से परे। अचेतन में रहने वाले विचार एवं इच्छाओं का स्वरूप मुख्यतः कामुक, असामाजिक, अनैतिक होता है। जिन इच्छाओं एवं विचारों की पूर्ति व्यक्ति नहीं कर पाता है, उन्हें चेतन से हटाकर अचेतन में दबा दिया जाता है। इसे दमन कहते है। फ्रायड के अनुसार अचेतन चेतन एवं अर्द्धचेतन की तुलना में अधिक बड़े आकार का होता है।

गत्यात्मक मॉडल

इस मॉडल के अनुसार व्यक्ति के तीन भाग है।

- **इदम्** – इदम् व्यक्ति का वह भाग है जो आनन्द सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें वे प्रवृतियां होती है जो असंगिठत, कामुक, आक्रामकतापूर्ण तथा नियम को नहीं मानने वाली होती है। यह मुख्यतः आनन्द देने वाली प्रेरणाओं की संतुष्टि करता है। इदम् उचित-अनुचित, विवेक-अविवेक, समय, स्थान आदि पर ध्यान नहीं देता। इदम् पूर्णतः अचेतन ही होता है।
- **अहम्** – सामाजिक नियमों एवं नैतिक मूल्य के कारण इदम् की इच्छाओं की पूर्ति संभव नहीं हो पाती। यह वास्तविकता सिद्धान्त द्वारा नियन्त्रित होता है। अर्थात् इन सामाजिक नियमों को ध्यान में रखते हुए परिस्थतियों के अनुसार क्या किया जाना चाहिये। अहं व्यक्तित्व का कार्यपालक माना जाता है। यह अंशतः चेतन अंशतः अचेतन होता है।
- **पराहं** – यह आदर्शवादी या नैतिकता सिद्धान्त पर आधारित है। जो व्यक्ति को यह बताता है कि कौन-सा कार्य अनैतिक है एवं नहीं किया जाना चाहिये। यह इदम् की प्रवृतियों पर रोक लगाता है तथा अहं को वास्तविक लक्ष्यों से नैतिक लक्ष्यों की और ले जाता है।

व्यक्ति में इदं, अहं पराहं तीनों होते हैं, लेकिन व्यक्तियों में इसकी मात्रा में अन्तर होता है। उदाहरण के लिये इदं व्यक्ति को सिगरेट पीने की प्रवृत करती है। क्योंकि इससे मिलने वाला आनन्द इसके लिये महत्त्वपूर्ण है। अहं वास्तविक परिस्थतियों को ध्यान में रखकर निर्णय लेगी अर्थात् किस स्थान पर किसके सामने सिगरेट पी जाए। पराहं नैतिक मूल्य अर्थात् क्या गलत है क्या सही है इस आधार पर निर्णय लेगी।

मूलप्रवृति के प्रकार

मूलप्रवृति वे जन्मजात शारीरिक उत्तेजना है जिसके द्वारा व्यक्ति के सभी तरह के व्यवहार निर्धारित किये जाते है। फ्रायड ने मूलप्रवृतियों के दो प्रकार बताए –

- **जीवन मूलप्रवृति** – इन्हें इरोस भी कहा जाता है। यह रचनात्मक कार्यों से संबंधित है।
- मृत्यु मूलप्रवृति – इन्हें थेनेटोज कहा जाता है। यह ध्वंसात्मक कार्यों या आक्रामककारी व्यवहार से संबंधित है।

फ्रायड ने अपने सिद्धान्त में यौन मूलप्रवृति को जीवन मूलप्रवृति से अलग करते हुए इस पर बल डाला है। यौन मूलप्रवृति के ऊर्जा बल को लिबिडो कहा जाता है।

अहं रक्षात्मक युक्तियाँ

फ्रायड के अनुसार चिन्ता एक भावामक एवं दुःखद अवस्था होती है जिसमें दूर करने के लिये व्यक्ति रक्षात्मक युक्तियाँ अपनाता है। ये रक्षात्मक युक्तियाँ निम्न प्रकार की होती है। अचेतन स्तर पर ही कार्य करती है। प्रमुख रक्षात्मक युक्तियाँ निम्न है –

- **दमन** – दमन के द्वारा चिन्ता, तनाव, मानसिक संघर्ष उत्पन्न करने वाली असामाजिक एवं अनैतिक इच्छाओं को चेतना से हटाकर व्यक्ति अचेतन में कर देता है। इसे चयनात्मक विस्मरण भी कहा जाता है।
- **यौक्तिकीकरण** – इसमें व्यक्ति अपने अयुक्तिसंगत विचारों व्यवहारों को एक युक्तिसंगत एवं तर्कसंगत व्यवहार के रूप में परिणत कर स्वयं एवं दूसरों को संतुष्ट कर अपना मानसिक संघर्ष दूर करने की

नोट

कोशिश करता है। कोई व्यक्ति अपनी आर्थिक तंगी से उत्पन्न चिन्ता को दूर करने के लिये यदि यह सोचता है कि अपने घर की सूखी रोटी भी दूसरे के घर के हलवे से अधिक स्वादिष्ट होती है तो यह यौक्तिकीकरण का उदाहरण होगा।

नोट

- **प्रतिक्रिया निर्माण** – यह रक्षात्मक युक्ति प्रसिद्ध कहावत मुख में राम बगल में छुरी व सौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली से मेल खाती है। इसमें व्यक्ति अपने अहं को किसी कष्टकर या किसी अप्रिय इच्छा तथा प्रेरणा से ठीक विपरीत इच्छा विकसित कर बचाता है। उदाहरण के लिये भ्रस्ट नेता द्वारा भ्रस्टाचार के विरोध में भाषण देना तथा प्रेम में असफल हो जाने पर अपनी प्रेमिका या प्रेमी से घृणा करना इसके उदाहरण है।
- **प्रतिगमन** – प्रतिगमन का शब्दिक अर्थ पीछे की और जाना होता है। इसमें तनाव या चिन्ता से बचने हेतु व्यक्ति में बाल्यावस्था के व्यवहारों की और पलटने की प्रवृति होती है।
- **प्रक्षेपण** – अन्य व्यक्तियों या वातावरण के प्रति अपनी अमान्य प्रस्तुतियों, मनोवृत्तियों एवं व्यवहारों को अचेतन रूप से आरोपित करने की प्रक्रिया को प्रक्षेपण कहा जाता है। परीक्षा में फेल हो जाने पर छात्र इसका दोष शिक्षक द्वारा कुछ न पढ़ाये जाने को या माता-पिता द्वारा घरेलू कार्यों में व्यस्त रखे जाने को देता है तो यह प्रक्षेपण का उदाहरण होगा।
- **विस्थापन** – इसमें व्यक्ति अपने संवेग या प्रेरणा को किसी वस्तु विशेष या व्यक्ति से अचेतन रूप से हटाकर दूसरे व्यक्ति या वस्तु से संबंधित कर लेता है। जैसे व्यक्ति ऑफिस में किसी कारण से गुस्सा होकर घर लौटने पर पत्नी या बच्चों पर गुस्सा दिखलाना।

मनोलैंगिक विकास अवस्थाएँ

फ्रायड के अनुसार जन्म के समय बच्चों में लैंगिक ऊर्जा मौजदू होती है जो निम्न 5 मनोलैंगिक अवस्थाओं से होकर विकसित होती है।

- **मुखावस्था** – यह मनोलैंगिक विकास की पहली अवस्था है जो जन्म से लेकर 1 वर्ष की उम्र तक होती है। इस अवस्था में महु कामुकता क्षेत्र के रूप में होता है। फलस्वरूप बच्चा मुंह द्वारा की जाने वाली सभी क्रियाओं जैसे चूसना, निगलना, जबड़ा से कोई चीज दबाना आदि द्वारा सुख प्राप्त करता है।
- गदुावस्था – यह अवस्था 1 से 3 वर्ष तक रहती है। इस अवस्था में कामुकता क्षेत्र मुंह से हटकर शरीर के गुदा क्षेत्र में आ जाता है। फलस्वरूप बच्चे मल मूत्र त्यागने से संबंधित क्रियाओं से आनन्द उठाते है।
- **फेलिक अवस्था** – यह अवस्था 4 से 5 वर्ष तक रहती है। इस अवस्था में कामुकता क्षेत्र जननेन्द्रिय होते है। फ्रायड का कहना था कि इस अवस्था में प्रत्येक लड़के में मातृ मनो ग्रन्थि या इडीपस काम्प्लेक्स तथा प्रत्येक लड़की में पितृ मनो ग्रन्थि या इलेक्ट्रा काम्प्लेक्स विकसित होती है। इडीपस काम्प्लेक्स में लड़का अचेतन रूप से माता की और आकर्षित होता है एवं लैंगिक प्रेम की इच्छा रखता है। साथ ही वह पिता से घृणा करता है। लड़का यह सोचता है कि पिता उसके लिंग को ही कटवा देंगे। इसे बंधियाकरण चिन्ता कहा जाता है। इसके ठीक विपरीत पितृ मनोग्रन्थि में लड़की अपने पिता की और लैंगिक रूप से आकर्षित होती है एवं माता से घृणा करती है।
- **अव्यक्तावस्था लेटेन्सी अवस्था** – यह अवस्था 6 से 7 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर 12 वर्ष तक रहती है। इव अवस्था में बच्चों में कोई नया कामुकता क्षेत्र विकसित नहीं होता तथा लैंगिक इच्छाएं

भी सुषुप्त हो जाती है। इस अवस्था में लैंगिक क्रियाएं कुछ अलैंगिक क्रियाओं के रूप में जैसे चित्रकारी, खेल-कूद आदि के रूप में व्यक्त होती है।

- **जननेन्द्रियावस्था** – यह मनोलैंगिक विकास की अन्तिम अवस्था है जो 13 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर निरन्तर चलती रहती है। इस अवस्था में किशोरावस्था या प्रौढ़ावस्था दोनों ही सम्मिलित होते है। किशोरावस्था के वर्ष में व्यक्तियों में अपने ही लिंग के व्यक्तियों के साथ रहने, बातचीत करने की प्रवृति अधिक होती है। परन्तु धीरे-धीरे वयस्कावस्था में प्रवेश करने पर व्यक्ति में विपरीत लिंग से संबंध स्थापित कर एक संतोषजनक जीवन की और अग्रसर होता है।

नोट

फ्रायड के सिद्धान्त का मूल्यांकन

फ्रायड का यह सिद्धान्त काफी विस्तृत है। यह समझ योग्य भाषा में व्यक्तित्व की व्याख्या करता है। फ्रायड का सिद्धान्त व्यक्ति के अग्रणी सिद्धान्तों के रूप में जाना जाता है जिसके विचारों से प्रेरित, असहमत होकर अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने व्यक्तित्व सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। फ्रायड के कुछ संप्रत्यय ऐसे है जिनकी आनुभाविक जांच नहीं की जा सकती अर्थात् जिनके अस्तित्व को न साबित किया जा सकता है, नहीं खंडित किया जा सकता है। यह सिद्धान्त फ्रायड के व्यक्तिगत अनुभवों या उसके उपचार गृह में आये मानसिक रोगियों पर किये गये प्रक्षेपण पर आधारित है। इसीलिये यह भी कहा जाता है कि सीमित अनुभूतियों के आधार पर सामान्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना युक्तिसंगत नहीं है। इस सिद्धान्त में लैंगिक ऊर्जा पर अत्यधिक बल दिया गया है जो आधुनिक मनोवैज्ञानिकों को मान्य नहीं है। फ्रायड के कुछ संप्रत्यय जरूरत से ज्यादा काल्पनिक हैं। **लुंडिन** के अनुसार यह कहना कि एक अपरिपक्व बालक अपने अचेतन में अपने माता या पिता से यौन संबंध चाहता है, बिल्कुल ही बेतुकी बात लगती है। इन आलोचनाओं के बाद भी यह सिद्धान्त आधुनिक व्यक्ति मनोवैज्ञानिकों के लिये प्रेरणा का स्रोत रहा है।

1.15 इरिक इरिक्सनः व्यक्ति का मनोसामाजिक सिद्धान्त

इरिक इरिक्सन ने फ्रायड द्वारा प्रस्तावित जीवन की विकासात्मक अवस्थाओं को स्वीकार करते हुए इसे पूरे जीवनकाल तक विस्तृत किया। एक तरफ जहां फ्रायड ने लैंगिक कारकों, जैविक कारकों पर अत्यधिक बल दिया, वहीं इरिक्सन ने सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारकों का भी व्यक्ति पर प्रभाव का अध्ययन किया। इसीलिये इस सिद्धान्त को व्यक्ति का मनोसामाजिक सिद्धान्त भी कहा जाता है।

इरिक्सन के अनुसार मानव के व्यक्ति का विकास कई पूर्व निश्चित अवस्थाओं से गुजर कर होता है, ये अवस्थाएं सार्वभौमिक होती है। जिस प्रक्रिया द्वारा ये अवस्थाएं विकसित होती है, वह एक विशेष नियम द्वारा संचालित होती है, जिसे पश्चजात नियम या एपिजेनेटिक नियम कहा जाता है। इरिक्सन ने मनोसामाजिक विकास की 8 अवस्थाएं बताई। पश्चजात नियम के अनुसार प्रत्येक अवस्था के होने का एक आदर्श समय होता है। ये अवस्थाएं एक निश्चित क्रम में आती है। इन अवस्थाओं में व्यक्तित्व का विकास जैविक एवं सामाजिक कारकों की अर्न्तक्रिया से होता है।

मनोसामाजिक विकास की अवस्थाएँ

इरिक्सन द्वारा प्रतिपादित मनोसामाजिक विकास की आठ अवस्थाएं एवं उनमें होने वाले विकास का वर्णन निम्न है -

- **प्रथम अवस्था : शैशवावस्थाः विश्वास बनाम अविश्वास** – यह अवस्था जन्म से लेकर 1 वर्ष तक होती है। यह फ्रायड के मनोलैंगिक विकास की मुखावस्था के समान है। इस अवस्था में बच्चे

नोट

में विश्वास की भावना का विकास होता है। यदि बच्चों को उत्तम मातृक देखभाल मिले तो उसमें विश्वास या आस्था की भावना विकसित होती है जिससे एक स्वस्थ व्यक्ति का निर्माण का प्रारम्भ होता है। यदि माताएं किसी कारण से अपने बच्चों की उचित सार संभाल नहीं कर पाए तो बच्चों में अविश्वास उत्पन्न होता है, उनमें आशंकाएं, संदेह जैसी भावनाएं विकसित हो जाती है। इससे अगली अवस्थाओं में एक अस्वस्थ व्यक्ति का जन्म होता है। हालांकि इरिक्सन के अनुसार बच्चों में विश्वास एवं अविश्वास की भावना दोनों का होना आवश्यक है। क्योंकि वातावरण के साथ प्रभावकारी समायोजन के लिये विश्वास न करना सीखना भी उतना ही जरूरी है जितना कि विश्वास करना सीखना। यदि बच्चा विश्वास बनाम अविश्वास के इस संघर्ष का समाधान कर लेता है तो इसे एक ऐसी मनोसामाजिक शक्ति विकसित होती है, जिसे आशा की संज्ञा दी जाती है। आशा से तात्पर्य एक ऐसी मनोसामाजिक शक्ति है जिसके द्वारा शिशु अपने सांस्कृतिक वातावरण तथा अपने अस्तित्व को अर्थपूर्ण ढंग से समझने लगता है।

- **द्वितीय अवस्था : स्वतंत्रता बनाम लज्जाशीलता** – यह अवस्था 2 वर्ष से लगभग 3 वर्ष की आयु तक होती है। यह फ्रायड के द्वारा दी गई गुदा अवस्था के समान है। इस अवस्था में स्वतंत्रता एवं आत्म नियंत्रण जैसे गुणों का विकास होता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि बच्चे को काम करने के लिये अप्रतिबंधित स्वतंत्रता दी जाए, इसका अर्थ यह है कि माता-पिता अपना नियंत्रण रखते हुए बच्चे को स्वयं कार्यों को करने दे। यदि माता-पिता बच्चे को छोटा समझ कर कार्य नहीं करने देते या ऐसी कोई अपेक्षा रखते है जो बच्चे की क्षमता से बाहर है तो बच्चों में लज्जाशीलता की भावना विकसित होती है। जब बच्चा स्वतंत्रता बनाम लज्जाशीलता को एक अनुकूल अनुपात में सीख लेता है तो उसमें 'इच्छा शक्ति' या विल पावर का विकास होता है। इच्छा शक्ति में बच्चा स्वतंत्रता के साथ कार्य करने के अलावा स्वयं पर नियंत्रण करना भी सीख लेता है।
- **तृतीय अवस्थाः खेल अवस्था - पहल शक्ति बनाम दोषिता** – यह अवस्था लगभग 4 साल की आयु तक होती है एवं फ्रायड द्वारा दी गई फेलिक अवस्था के समान है। इस अवस्था में बच्चों में भाषा एवं पेशीय कौशलों का विकास हो जाता है। वे घर के बाहर निकलकर खेलकूद एवं अन्य सामाजिक गतिविधियों में भाग लेना पसंद करते है। उन्हें दूसरे के कार्य करने से आनन्द मिलता है। इस प्रकार इनमें किसी कार्य को करने हेतु पहल करने की योग्यता का विकास होता है। लेकिन यदि माता-पिता इन बच्चों को यह सब करने से रोकते है या उन्हें दण्ड दिया जाता है तो उनमें दोषिता की भावना विकसित हो जाती है। ऐसे बच्चे स्वयं को खुलकर व्यक्त नहीं कर पाते। यह बच्चा पहल बनाम दोषिता के इस संघर्ष का समाधान कर लेता है तो उसमें 'उद्देश्य' का विकास होता है। इसका अभिप्राय किसी लक्ष्य का निर्धारण करने की क्षमता एवं विश्वास के साथ बिना किसी भय के उसे प्राप्त करने की क्षमता विकसित होना है।
- **चतुर्थ अवस्था - स्कूल अवस्थाः परिश्रम बनाम हीनता** – यह अवस्था 6 साल की आयु से 11-12 साल की आयु तक होती है। यह फ्रायड की लेटेन्सी अवस्था के समान है। जब बच्चे स्कूल में अपनी संस्कृति के प्रारम्भिक कौशलों को सीखते है तो उनमें परिश्रम का भाव विकसित होता है। इसके लिये स्कूल में शिक्षकों से, परिवार, पास पड़ौस के सदस्यों से प्रोत्साहन मिलता है। लेकिन यदि किसी कारण से बच्चा अपने कौशलों को अर्जित करने में असफल हो जाता है तो बच्चों में हीनता या असामर्थयता की भावना विकसित हो जाती है। लेकिन यदि बच्चा इस परिश्रम बनात हीनता के

संघर्ष का समाधान कर लेता है, तो उसमें 'सामर्थयता' विकसित हो जाती है। सामर्थयता से तात्पर्य किसी कार्य को करने की शारीरिक एवं मानसिक, बौद्धिक क्षमताओं से होता है।

- **पंचम अवस्था - किशोरावस्थाः अहं पहचान बनाम भूमिका भ्रान्ति** – यह अवस्था 12 साल से 19-20 साल की उम्र तक होती है। इस अवस्था में किशोरों में स्वयं की योग्यताओं की सही पहचान होने पर उनमें अहं पहचान या इगो आइडेटिटी विकसित हो जाती है। यदि स्वयं की सही पहचान नहीं हो तो उनमें उनकी भूमिका को लेकर भ्रान्ति विकसित हो जाती है अर्थात् वे स्वयं की योग्यताओं की पहचान ना कर सकने के कारण पहचान संक्रान्ति या आइडेटिटी क्रइसिस से परेशान रहते है। ऐसे किशोर अपनी जीविका का निर्वहन ठीक तरीके से नहीं कर पाते, अपनी शिक्षा को जारी रखने में स्वयं को असमर्थ पाते है। कुछ किशोर इस अवस्था में इस तरह के भ्रान्ति की स्थिति को बने रहने देना चाहते है, जिससे उन्हें किसी कार्य के लिये वचनबद्ध नहीं होना पड़े, या कुछ समय के लिये वचस्क वचनबद्धता स्थगित हो जाए। इसे इरिक्सन ने मनोसामाजिक विलंबन कहा है। जब किशोर अहं पहचान बनाम भूमिका भ्रान्ति के इस संघर्ष का समाधान कर लेते है तो उनमें 'कर्तव्यनिष्ठा' का विकास होता है। इसका अभिप्राय किशोरों में समाज की विचारधाराओं, मानकों आदि के आधार पर व्यवहार करने की क्षमता से होता है।
- **छठी अवस्था -तरूण वयस्कावस्थाः घनिष्ठता बनाम विलगन** – यह अवस्था 20 वर्ष की आयु से 30 वर्ष तक रहती है। इस अवस्था में व्यक्ति पारिवारिक जीवन में प्रवेश करता है। किसी-न-किसी व्यवसाय, नौकरी द्वारा अपना जीविकोपार्जन प्रारम्भ करता है। यह समय है जब व्यक्ति सामाजिक एवं लैंगिक घनिष्ठता बनाता है। व्यक्ति अपने परिवार, मित्र, सहकर्मियों, रिश्तेदारों से सामाजिक रूप से घनिष्ठता प्राप्त करता है। अपनी जीवनसाथी के साथ घनिष्ठ लैंगिक संबंधों को बनाता है। इस घनिष्ठता के परिणामस्वरूप एक स्वस्थ व्यक्ति का विकास होता है। लेकिन यदि किन्हीं कारणों से व्यक्ति सामाजिक एवं लैंगिक घनिष्ठता प्राप्त नहीं कर पाता एवं अपने आप में ही खोया रहता है तो उसमें विलगन या आइसोलेशन का भाव विकसित होता है। ऐसे व्यक्ति के सामाजिक संबंध सतही होते है, अपने कार्य के प्रति नीरस होते है। विलगन अधिक होने पर गैर-सामाजिक व्यवहार या मनोविकारी व्यवहार भी दर्शाते हैं। जब व्यक्ति घनिष्ठता बनाम विलगन के इस संघर्ष का समाधान कर लेता है तो उसमें 'स्नेह' की उत्पत्ति होती है। इसका अभिप्राय संबंधों को कायम रखने में पारम्परिक समर्पणकी क्षमता से है।
- **सातवी अवस्था - जननात्मकता बनाम जड़ता** – यह अवस्था 30 से 45 वर्ष तक चलती है। इस अवस्था में व्यक्ति अगली पीढ़ी के लोगों के लिये सोचना प्रारम्भ करता है। इन व्यक्तियों के कल्याण के लिये सोचता है, चिन्ता करता है। लेकिन कुछ व्यक्ति इस अवस्था में अपने आप में ही मस्त हो जाते है, उनके लिये स्वयं की आवश्यकताएं, सुख सुविधाएं सर्वोपरि होती है। यह जड़ता की स्थिति है। जननात्मकता बनाम जड़ता के इस संघर्ष का समाधान होने पर व्यक्ति में 'देखभाल' की उत्पत्ति होती है। इसका अभिप्राय दूसरों के कल्याण की चिन्ता से है।
- **आठवीं अवस्था - परिपक्वताः अहं सम्पूर्णता बनाम निराशा** – यह मनोसामाजिक विकास की अन्तिम अवस्था है। यह 65 वर्ष से अधिक की आयु से मृत्यु तक रहती है। इस अवस्था में व्यक्ति का ध्यान भविष्य से हटकर अपने बीते दिनों पर, जीवन की सफलताओं, असफलताओं की और अधिक होता है। इनके मूल्यांकन के धनात्मक होने पर उसमें अहं सम्पूर्णता एवं अपूरित इच्छाओं,

नोट

आवश्यकताओं के होने पर उसमें निराशा उत्पन्न होती है। इस अवस्था की प्रमुख मनोसामाजिक शक्ति 'परिपक्वता' है। इस अवस्था में व्यक्ति में सही अर्थ में परिपक्वता आती है, उसे बुद्धिमता का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है।

नोट

इस प्रकार इन आठ अवस्थाओं के अध्ययन के पश्चात यह कहा जा सकता है कि इरिक्सन ने प्रत्येक अवस्था में संभाविक कमजोरयों एवं सामर्थ्य दोनों का वर्णन किया है। व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक की मनोसामाजिक घटनाओं के विकास की व्याख्या इस सिद्धान्त की बहुत बड़ी खूबी है। हालांकि कुछ आलोचक यह कहते है कि इरिक्सन ने फ्रायड के सिद्धान्त को सरल बनाने के अलावा कुछ नहीं किया है। इरिक्सन ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में इदम एवं अचेतन को हटाकर सारा ध्यान अहं एवं चेतन मन पर ही दिया है। इन आलोचनाओं के बाद भी यह सिद्धान्त शोध के दृष्टिकोण से बहुत उपयोगी है। इस सिद्धान्त में मनोसामाजिक मूलप्रवृति दोनों कारकों पर बल दिया गया है।

1.16 केरेन हार्नी का व्यक्तित्व सिद्धान्त

हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त में फ्रायड के सिद्धान्तों में संशोधन कर उसे उन्नत बनाने की कोशिश की है। हार्नी फ्रायड की इस बात से सहमत थी कि वयस्क व्यक्तित्व के निर्धारण में बाल्यावस्था के आरंभिक वर्ष का अधिक महत्त्व होता है। परन्तु हार्नी का मत है कि बाल्यावस्था के सामाजिक कारकों न कि जैविक कारक द्वारा व्यक्ति का विकास होता है। व्यक्ति का विकास सामाजिक संबंध द्वारा प्रभावित होता है।

मूल चिन्ता का संप्रत्यय

हार्नी के अनुसार बाल्यावस्था की दो प्रमुख आवश्यकताएं होती है:

- **संतुष्टि आवश्यकता**: इसमें भोजन, पानी, लैंगिक क्रियाएं, नींद आदि आवश्यकताएं शामिल होती है।
- **सुरक्षा आवश्यकता**: इन आवश्यकताओं में डर से स्वतंत्रता, स्वयं की सुरक्षा आदि शामिल होती है।

इन दोनों आवश्यकताओं में से हार्नी ने सुरक्षा की आवश्यकता को व्यक्तित्व विकास के लिये महत्त्वपूर्ण बताया। बच्चे को माता-पिता से स्नेह मिलना, बच्चे को समझा जाना आदि से उसमें सुरक्षा की भावना विकसित होती है। इसके अभाव में उसमें विद्वेष उत्पन्न होता है। जब बच्चा डर के कारण इस विद्वेष का दमन कर देता है तो उससे चिन्ता उत्पन्न होती है जिसे मूल चिंता या बेसिक एंग्जाइटी कहा जाता है। मूल चिन्ता से तात्पर्य बच्चों में निसहायता तथा अकेलेपन की भावना से है।

न्यूरोटिक/स्नायुविकृत आवश्यकताएँ

जब व्यक्ति जीवन की समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता, कई बार असफलताओं का सामना करता है तो उसमें कुछ विशेष आवश्यकताएं उत्पन्न हो जाती है, जिन्हें हार्नी ने न्यूरोटिक या स्नायुविकृत आवश्यकताएं कहा। इन आवश्यकताओं के कारण व्यक्ति स्वयं को मूल चिन्ता से बचने का प्रयास करता है। इनमें स्नेह प्राप्त करना, लोगों का अनुमोदन करना, उनकी हाँ में हाँ मिलाना, स्वयं के सम्मान की आवश्यकता, व्यक्तिगत प्रशंसा की इच्छा, लोगों का शोषण करने की प्रवृत्ति रखना, स्वतंत्रता की इच्छा रखना, अनाक्रमण आदि शामिल है। इन सभी न्यूरोटिक आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप व्यक्ति में एक विशेष प्रकार के व्यवहार करने की प्रवृति बन जाती है जिसे न्यूरोटिक प्रवृति कहा जाता है। यह निम्न प्रवृत्ति तीन प्रकार से व्यक्त होती है।

नोट

- **व्यक्तियों की और जाने की प्रवृतिः** इस प्रकार की प्रवृति में व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के करीब जाकर, उनकी और जाकर अपनी आवश्यकताओं को व्यक्त करता है। इसमें दूसरे का स्नेह, स्वीकृति, अनुमोदन, एक मजबूत जीवन साथी प्राप्त करने की प्रवृति शामिल होती है।
- **व्यक्तियों के विरुद्ध जाने की प्रवृत्तिः** इस प्रकार की प्रवृत्ति में व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध जाता है। इसमें दूसरे के प्रति आक्रामकता दिखाना, उन्हें नियन्त्रण में रखना, उनके प्रति विद्वेष दिखाना, उनका शोषण करना, सत्ता प्राप्त करना आदि शामिल है।
- **व्यक्तियों से दूर हटने की प्रवृतिः** इस प्रकार की प्रवृति में व्यक्ति अन्य व्यक्तियों, परिस्थिति से, समस्याओं से स्वयं को बिल्कुल अलग कर लेता है। वह अलग थलग रहने का प्रयास करता है। वह कार्यों से बच निकलने का प्रयास करता है।

व्यक्ति के प्रकार

इन तीनों प्रकार की प्रवृतियों से तीन अलग-अलग प्रकार के व्यक्ति का निर्माण होता है जो निम्न है।

- **फरियादी प्रकारः** यह व्यक्तियों की और जाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। ऐसे व्यक्ति दूसरों पर अत्यधिक निर्भर करते है। इनका व्यवहार मैत्रीपूर्ण होता है।
- **आक्रामक प्रकारः** यह व्यक्तियों अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध जाने से बनता है। ऐसे व्यक्ति आक्रामक, शक्की तथा अत्यधिक गुस्से वाले होते है। ऐसे व्यक्ति दूसरे पर आधिपत्य दिखाने, उन्हें नियन्त्रित करने का प्रयास करते है।
- **विलगित प्रकारः** यह व्यक्तियों से दूर हटने के परिणामस्वरूप बनता है। ऐसे व्यक्ति असामाजिक होते है, एकान्त में रहना पसंद करते है। अन्य लोगों से दूरी बनाए रखते है।

हार्नी ने अपनी सिद्धान्त में मूल चिन्ता को कम करने की प्रवृतियों का उल्लेख करते हुए कहा कि मूल चिन्ता को कम करने के लिये व्यक्ति या तो स्वयं के बारे में एक आदर्शवादी छवि बना लेता है जो कि वास्तविक छवि से बहुत अलग होती है। इसमें व्यक्ति स्वयं के बारे में बढ़ा चढ़ा कर सोचता है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में घमण्ड का विकास होता है।

हालांकि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने हार्नी के सिद्धान्त का शोधपरक मूल्य कम बताया है। इनके संप्रत्ययों पर अधिक शोध नहीं किये गये है तथा इनकी लोकप्रियता उतनी नहीं है जितनी कि फ्रायड, एडलर एवं युंग के सिद्धान्तों की है। हार्नी के सिद्धान्त में जैविक मूलप्रवृतियों की पूर्णरूपेण उपेक्षा की गई है। आलोचक यह भी कहते है कि इस सिद्धान्त में सामाजिक सिद्धान्तों पर जरूरत से ज्यादा बल दिया गया है। व्यक्ति विकास में लैंगिकता, आक्रामकता तथा अचेतन की उपेक्षा हार्नी की एक बड़ी भूल कुछ आलोचकों द्वारा मानी गई है। इन आलोचनाओं के बाद भी हार्नी के सिद्धान्त का काफी महत्त्व है।

इस प्रकार हार्नी के सिद्धान्त से यह स्पष्ट है कि उन्होंने एडलर एवं फ्रोम के समान ही सामाजिक सांकृतिक कारकों पर अत्यधिक बल डाला है। हार्नी द्वारा सुझाए गए संप्रत्ययों से व्यक्ति को बेहतर तरीके से समझने में सफलता मिली है।

1.17 सुल्लीवान का व्यक्तित्व सिद्धान्त

सुल्लीवान के अनुसार व्यक्ति जन्म से ही वातावरण की विभिन्न वस्तुओं एवं व्यक्तियों के साथ अर्न्तक्रिया करता है जिसके परिणामस्वरूप उसका व्यक्ति विकसित होता है। इसीलिये इस सिद्धान्त को व्यक्ति का अन्तवैयक्तिक

सिद्धान्त भी कहा जाता है। सुल्लीवान ने सिगमण्ड फ्रायड के बहुत सारे संप्रत्ययों को जैसे लिबिडो, सुपर इगो, इगो, इदं यौन सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया। लेकिन सुल्लीवान ने फ्रायड के समान ही व्यक्ति विकास को विभिन्न अवस्थाओं में होने को स्वीकार किया एवं स्वयं भी विकासात्मक अवस्थाएं सुझाई।

नोट

सुल्लीवान के अनुसार मानव एक ऐसा ऊर्जा तंत्र है जो आवश्यकताओं द्वारा उत्पन्न तनावों को हमेशा कम करने की कोशिश करता है। उन्होंने तनाव को दो भागों में बांटा है - आवश्यकताओं द्वारा उत्पन्न तनाव एवं चिन्ता द्वारा उत्पन्न तनाव।

गत्यात्मकता

सुल्लीवान ने गत्यात्मकता को शीलगुण के तुल्य माना है, जिसका अभिप्राय एक ऐसे संगत पेटर्न से होता है जो व्यक्ति की पूरे जीवन में दिखाई देता है। गत्यात्मकता के दो प्रकार बताए। पहला शरीर के विशेष क्षेत्र से संबंधित गत्यात्मकता जैसे भूख, प्यास आदि। दूसरे तरह की गत्यात्मकता में तीन प्रकार शामिल किये। इनमें वियोजक गत्यात्मकता (व्यवहार का ध्वंसात्मक पेटर्न), अलगावी गत्यात्मकता (कामुकता एवं यौन अंगों से उत्पन्न तनाव) एवं संयोजक गत्यात्मकता (घनिष्ठतापूर्ण व्यवहार) शामिल है।

मानवीकरण

मानवीकरण से अभिप्राय अपने या दूसरे के बारे में मन में बनी एक प्रतिमा या छवि से होता है। यह प्रतिमा आवश्यकता की पूर्ति से या चिंता की अनुभूतियों से बनती है। जब व्यक्ति में संतोषजनक अन्तर वैयक्तिक संबंध विकसित होते है तो धनात्मक छवि बनती है, अन्यथा ऋणात्मक छवि बनती है। सुल्लीवान ने बाल्यावस्था में पांच प्रकार के मानवीकरण प्रतिमाओं के बारे में बताया। उत्तम मां (गड्ड मदर), बुरी मां (बेड मदर), बुरा-स्वयं (बेड मी), उत्तम स्वयं (गड्ड मी), स्वयं नहीं (नाटॅ मी)। बच्चे की मां के साथ अर्न्तक्रिया में संतुष्टि होने पर उत्तम मां, असंतुष्टि होने पर बुरी मां का संप्रत्यय विकसित होता है। स्वयं की अर्न्तक्रियाओं से संतुष्टि होने पर उत्तम स्वयं, असंतुष्टि होने पर बुरा-स्वयं का विकास होता है। यदि बच्चों में काफी तीव्र चिन्ता एवं दर्दपूर्ण अनुभूति होती है तो उनमें 'स्वयं नहीं' का विकास होता है।

विकासात्मक अवस्थाएँ

सुल्लीवान ने व्यक्ति विकास की सात अवस्थाओंका वर्णन किया है। शैशवावस्था: जन्म से 24 महीने तक हो ती है। जन्म के समय शिशु एक पशु के समान होता है, मां से जैसे उसे स्नेह मिलता है, उसका मानवीयकरण होता जाता है। यदि उत्तम मां एव बुरी मां के संप्रत्यय विकसित होते है।

- **बाल्यावस्थाः** यह अवस्था सुस्पट भाषा बोलने से लेकर संगी साथी की आवश्यकता उत्पन्न होने तक होती है। यह अवस्था 2 से 5 वर्ष तक होती है। इसमें बच्चे नाटकीकरण सीखते है, अर्थात् परिवार के अन्य सदस्यों की नकल उतारना सीखते है।
- **तरूणावस्थाः** यह अवस्था 5-6 साल से 8-9 साल तक होती है। इसमें प्रतिस्पर्धा, समझौता तथा सहयोग की भावना विकसित होती है। इसी अवस्था में बच्चों में रूढ़िवादिता, अवज्ञा भी विकसित होती है।
- **प्राक्किशोरावस्थाः** यह अवस्था यौवनावस्था तक चलती है। बच्चा समान लिंग के व्यक्ति से घनिष्ठ दोस्ती कर लेता है। सुल्लीवान ने इस घनिष्ठ संबंध को 'चम' कहा। बिना सखा के इस अवस्था में अलगाव एवं एकान्तवासी होने का भाव विकसित होता है।

- **आरंभिक किशोरावस्थाः** यह अवस्था यौवनारंभ से विपरीत लिंग के प्रति प्यार करने की भावना विकसित होने तक होती है। जननांगी अभिरुचि विकसित होती है।
- **उत्तर किशोरावस्थाः** यह वयस्कावस्था में स्थायी प्रेम संबंध होने तक चलती है। इस अवस्था के अन्त में आत्म सम्मान विकसित होता है।
- **परिपक्वताः** सुल्लीवान ने कहा कि सच्चे अर्थ में परिपक्वता विकसित होने की कोई स्पष्ट अवस्था या उम्र नहीं होती। परिपक्व व्यक्ति वह है जो अपनी सीमाओं की पहचान कर सके, अपनी रुचियों को समझ सके। सुल्लीवान के सिद्धान्त को कुछ मनोवैज्ञानिकों ने काल्पनिक बताया, नैदानिक प्रक्षेपण पर आधारित बताया। फिर भी सुल्लीवान के इस सिद्धान्त का अपना महत्त्व है।

नोट

1.18 एडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त

एडलर द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त को वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धान्त कहा जाता है। एडलर ने फ्रायड के विचारों से भिन्नता रखते हुए व्यक्ति को मुख्य रूप से सामाजिक प्राणी माना, न कि जैविक। एडलर के अनुसार व्यक्ति का निर्धारण जैविक आवश्यकताओं द्वारा नहीं होता अपितु व्यक्ति के सामाजिक वातावरण में हो रही अर्न्तक्रियाओं द्वारा होता है।

एडलर ने चेतन एवं अचेतन को व्यक्ति के अलग तत्व न मानकर इन्हें एक ही तंत्र के दो भाग माना है। एडलर ने कहा कि मन तथा शरीर, चेतन एवं अचतेन में स्पष्ट अन्तर करना सम्भव नहीं है। चेतन का तात्पर्य वह चिन्तर या विचार है जिसे व्यक्ति सफलता या श्रेष्ठता के प्रयास में सहायक मानता है, समझता है। अचेतन अन्तिम लक्ष्य का अस्पष्ट हिसा है जिसकी समझ व्यक्ति को नहीं होती।

व्यक्ति के कारक

एडलर का मत था कि व्यक्ति का व्यवहार व्यक्तिगत अनुभूतियों द्वारा नहीं बल्कि कल्पना या भविष्य की अपेक्षाओं द्वारा प्रेरित होता है। इस तरह से व्यक्ति निर्धारण में आत्मनिष्ठ कारकों को अधिक महत्त्वपूर्ण बताया। एडलर ने व्यक्ति की व्याख्या निम्न आत्मनिष्ठ कारकों के आधार पर की है जो निम्न है –

कल्पित लक्ष्य

एडलर के अनुसार व्यक्ति के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य एक कल्पित लक्ष्य होता है जिसकी सत्यता की जांच नहीं हो सकती। उनका व्यवहार इसी लक्ष्य द्वारा निर्देशित होता है। यह कल्पित लक्ष्य प्रत्येक व्यक्ति के लिये अनूठे होते है। जैसे यदि व्यक्ति यह सोचता है कि ईमानदारी से जीवन व्यतीत करने पर भगवान उसे पुरस्कृत करेगा, एक कल्पित लक्ष्य है।

आंगिक हीनता

जिन व्यक्तियों में किसी प्रकार की आंगिक हीनता जैसे दृष्टि, सुनने या बोलने आदि का दोष हो तो वे अन्य क्षेत्रों में श्रेष्ठता स्थापित करने इसी आंगिक हीनता को पूर्ण करने का प्रयास करते है। उदाहरण के लिये सूरदास जो नेत्रहीन थे फिर भी उन्होंने स्वयं की श्रेष्ठ कवि के रूप में पहचान बनाई। एडलर के अनुसार यदि कोई बच्चा अपनी हीनता के भाव की क्षतिपूर्ति करने में असफल रहता है तो हीनता मनोग्रन्थि या इन्फीरियरिटी कॉम्प्लेक्स उत्पन्न हो जाता है। बाल्यावस्था में हीनता का भाव आंगिक हीनता के अलावा अधिक लाड़ प्यार अथवा तिरस्कार से भी उत्पन्न होता है।

नोट

जन्म क्रम

एडलर ने चार प्रकार के जन्म क्रम का व्यक्ति विकास पर प्रभाव का अध्ययन किया है। प्रथम जन्म क्रम, द्वितीय जन्म क्रम, तृतीय जन्म क्रम एवं अकेला जन्म। प्रथम जन्म क्रम का अभिप्राय किसी माता-पिता की पहली सन्तान से है, द्वितीय एवं तृतीय जन्म क्रम का मतलब क्रमशः दूसरे एवं तीसरे नंबर की संतान से है। यदि किसी माता-पिता के केवल एक संतान हो तो यह अकेला जन्म क्रम कहलाएगा। प्रथम जन्म क्रम वाले बच्चे अपने माता-पिता का सम्पूर्ण ध्यान एवं स्नेह प्राप्त करते है। प्रारम्भ में इसे बाटं ने वाला कोई नहीं होता। परन्तु दूसरे बच्चे के जन्म होने पर माता-पिता का ध्यान उस बच्चे पर चला जाता है जिससे प्रथम बच्चे का दूसरे भाई या बहन के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो जाता है। एडलर ने अपने प्रेक्षण में यह भी पाया कि अधिक अपराधी, पथभ्रस्ट प्रथम जन्म क्रम वाले बच्चे ही होते है।

द्वितीय जन्म क्रम वाले बच्चे प्रथम की तुलना में बहेतर जीवन व्यतीत करते हैं। इनमें उपलब्धि प्राप्त करने की प्रवृति होती है। सामाजिक रूप से अभिरुचि रखते हैं। जबकि अन्तिम जन्म क्रम वाले बच्चों में हीनता की भावना, अपने भाई बहन से आगे बढ़ने की प्रवृत्ति अधिक होती है। अत्यधिक लाड़ प्यार के कारण आत्म निर्भरता की कमी होती है। माता-पिता की अकेली संतान स्वयं को दूसरे से श्रेष्ठ मानती है। कोई भाई बहन नहीं होने के कारण इनके साथ प्रतियोगिता करने वाला कोई नहीं होता। इसीलिये ये अपने माता-पिता के साथ ही प्रतियोगिता प्रारम्भ कर देते है। सामाजिक अभिरुचि जैसे लोगों से मिलने जुलने, बातचीत करने एवं सहयोग की भावना भी कम होती है।

सामाजिक अभिरुचि

जिन व्यक्तियों की सामाजिक अभिरुचि जितनी विस्तृत, परिपक्व एवं अधिक होती है, वे मानसिक रूप से अधिक स्वस्थ होते है। इसीलिए एडलर ने सामाजिक अभिरुचि को मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का बेरोमीटर कहा है।

जीवन शैली

जीवन शैली व्यक्ति की विशेषताओं, गुणों, आदतों तथा व्यवहार करने की पद्धति है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने जीवन लक्ष्यों को प्राप्त करता है। एडलर ने जीवन शैली को फ्रायड द्वारा प्रतिपादित संप्रत्ययं अहं या इगो के तुल्य माना है। एडलर ने अपने सिद्धान्त में चार प्रकार की जीवन शैली का वर्णन किया है। लिंग टाईप दूसरे पर अधिकार दिखाने वाले व्यक्ति होते है। इनका व्यवहार आक्रामक होता है। सामाजिक अभिरुचि की कमी दिखाई देती है। ऐसे व्यक्ति अपने जीवन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये असामाजिक,अनियन्त्रित तरीके से व्यवहार भी करते है।

गेटिंग टाईप

ऐसे व्यक्तियों में भी सामाजिक अभिरुचि की कमी होती है। दूसरे पर अत्यधिक निर्भर रहते है। ऐसे व्यक्ति केवल स्वयं पर केन्द्रित रहते है। इनमें स्वयं के लिये अधिक से अधिक प्राप्त करने की इच्छा होती है।

अवोइडिंग टाईप

ऐसे व्यक्ति परिस्थतियों का सामना नहीं कर सकते एवं जीवन की समस्याओं का समाधान करने की बजाय वहां से भाग खड़े होते हैं। समस्याओं की संभावित असफलताओं को बढ़ा चढ़ा कर समझते हैं। इसी कारण समस्या समाधान के लिये प्रयास करने की बजाय पीछे हट जाते है। इनमें भी सामाजिक अभिरुचि की कमी होती है।

सोशियली युजफुल

ऐसे व्यक्ति सामाजिक रूप से सक्रिय रहते है। ऐसे व्यक्ति स्वयं के साथ-साथ दूसरे की समस्याओं का समाधान करने में भी उनकी मदद करते है। ये मदद करते भी है और इन्हें मदद प्राप्त भी होती है। इनकी सामाजिक अभिरुचि विस्तृत, परिपक्व होती है।

नोट

एडलर द्वारा प्रतिपादित इन संप्रत्ययों के अध्ययन के पश्चात यह कहा जा सकता है उन्होंने अपने सिद्धान्त में चेतन एवं तार्किक प्रक्रियाओं पर अधिक बल दिया न कि अचेतन पर। यहां पर यह फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त से भिन्नता रखते थे। एडलर द्वारा जन्म क्रम, जीवन शैली आदि कई संप्रत्ययों के आधार पर व्यक्ति को समझने में मदद मिली। इसी कारण एडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त काफी उपयोगी सिद्ध हुआ।

1.19 इरिक फ्रोम का व्यक्तित्व सिद्धान्त

इरिक फ्रोम भी एडलर के समान व्यक्ति निर्धारण में जैविक कारकों को अधिक महत्त्व नहीं देते थे। उन्होंने भी व्यक्ति निर्धारण में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों की भूमिका को स्वीकार किया। फ्रोम के अनुसार व्यक्ति आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि कारक द्वारा भी प्रभावित होता है। उन्होंने भी व्यक्ति निर्धारण में सिर्फ जैविक कारकों की भूमिका को नकार दिया।

फ्रोम ने मनुष्य को एक सामाजिक पशु का दजा दिया एवं बताया कि आधुनिक युग में मनुष्य के विकास के साथ स्वतंत्रता की भावना अधिक होती गई। पहले जब स्वतंत्रता की भावना कम थी तो लोगों में आपस में जुड़ाव अधिक था, परन्तु अब अकेलापन, दूसरे से असबद्ध होने की प्रवृति बढ़ गई। एक तरफ व्यक्ति स्वतंत्र होना चाहता, वहीं दूसरी और इसके परिणामस्वरूप अकेलापन, विमुखता महसूस होती है। जैसे एक बच्चा यदि अपने माता-पिता के नियन्त्रण से स्वतंत्र होना चाहता है, वहीं दूसरी और माता-पिता के बिना स्वयं को अकेला, लाचार भी महसूस करता है। इस तरह की दुविधा में फ्रोम ने अस्तित्ववादी दुविधा कहा है।

मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ

फ्रोम के अनुसार व्यक्ति में दैहिक आवश्यकताएं जैसे भोजन, पानी यौन आदि के अतिरिक्त कुछ मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं भी होती है। ये छह मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं निम्न है –

- **सम्बद्धता की आवश्यकता** – इसका संबंध दूसरे के साथ उत्तम संबंध विकसित करने की कोशिश करता है। जब इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती है तो व्यक्ति में आत्म मोह जिसे नारिसिसम भी कहते है, उत्पन्न हो जाता है। इसमें व्यक्ति स्वयं को अत्यधिक स्नेह करता है।
- **श्रेष्ठता की आवश्यकता** – इसमें व्यक्ति सृजनात्मक एवं उपादक बनने की कोशिश करता है।
- **गहरापन की आवश्यकता** – इसमें अन्य व्यक्तियों के साथ गहरे एवं मजबूत संबंध स्थापित करना, स्वयं को सक्रिय एवं अर्थपूर्ण रखना आदि शामिल है।
- **उन्मुखता प्रारूप की आवश्यकता** – व्यक्ति दो प्रकार की उन्मुखता रखता है, यौक्तिक (वस्तुनिष्ठ) एवं अयौक्तिक (आत्मनिष्ठ)।
- **पहचान की आवश्यकता** – इसमें व्यक्ति अपनी अलग पहचान बनाए रखने का प्रयास करता है।
- **उत्तेजन आवश्यकता** – इसका संबंध बाह्य वातावरण को ऐसा बनाए रखना है जिससे कि यह व्यक्ति को सक्रिय बनाए रख सके। बाह्य उद्दीपक व्यक्ति को कार्य करने के लिये प्रेरित करते हैं।

व्यक्ति के प्रकार

फ्रोम के अनुसार व्यक्ति विभिन्न प्रकार के शीलगुणों का एक मिश्रण है। ये शीलगुण दो प्रकार के होते है।

नोट

- **उपादक शील गुण** : इन शीलगुणों को व्यक्ति विकास के लिये उपर्युक्त एवं आदर्श माना जाता है।
- **अनुत्पादक शीलगुण** : इन शीलगुणों को अवांछित माना जाता है अर्थात् जिनकी व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास में कोई आवश्यकता नहीं होती। इन गुणों के आधार पर फ्रोम ने व्यक्ति को चार प्रकारों में बांटा है जो निम्न है-

  ग्रहणशील प्रकार (रिसेप्टिव): ये व्यक्ति दूसरे से मदद की उम्मीद रखते है, पर जब किसी की मदद करने की बारी आती है तो मुकर जाते हैं।

  जमाखोर प्रकार (होर्डिंग) ऐसे लोग स्वार्थी होते है। इनकी प्रवृति कुछ न कुछ जमा करने की होती है। ये व्यवस्थित तरीके से कार्य करते है।

  शोषक प्रकार (एक्सप्लोइटेटिव) ऐसे व्यक्ति आक्रामक प्रवृति के होते है। अपने बल एवं छल से वस्तुओं को हासिल करना चाहते है।

  बाजारू प्रकार (मार्केटिंग) स्वयं को एक वस्तु या कमोडिटी की तरह समझते है। स्वयं से, अपनी सेवाओं से अधिक से अधिक बेचते हुए लाभ कमाना चाहते है।

इन प्रकारों के अलावा बाद में दो अन्य व्यक्ति के प्रकारों का भी फ्रोम ने वर्णन किया। पहला शवकामुक प्रकार एवं दूसरा जीव कामुक प्रकार। शवकामुक प्रकार के व्यक्ति में बर्बादी, मृत्यु, पतन आदि से विशेष लगाव होता है तथा इन कार्यों से ऐसे लोगों में आनन्द आता है। ऐसे लोग एकान्तप्रिय, लोगों से दूरी रखने वाले और भाव शून्य होते है। ठीक इसके विपरीत जीव कामुक प्रकार के व्यक्ति जीवन से प्यार करते है, ऐसे व्यक्ति सृजन, निर्माण, वृद्धि की और उन्मुख होते है। ऐसे लोग दूसरे को बल दिखाकर या डरा धमका कर प्रभावित नहीं करते अपितु उन्हें स्नेह से प्रभावित करते है। ऐसे लोग स्वयं व अन्य के विकास एवं वृद्धि पर अधिक बल देते है।

फ्रोम के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को बाल्यावस्था में इस प्रकार शिक्षित करना चाहिये कि वह समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यवहार कर सके। उन्होंने यह भी कहा कि जो समाज व्यक्ति की जरूरत की पूर्ति नहीं करता, वह बीमार समाज होता है और तुरंत ही उसे प्रतिस्थापित कर देना चाहिये। ऐसा समाज जिसमें व्यक्ति की आवश्यकता पूर्ण हो, उसमें उपादकता बढ़े, ऐसा समाज मानवतावादी सामदुायिक समाज कहा जाता है।

स्पष्ट है कि फ्रोम ने व्यक्ति के विकास पर समाज एवं संस्कृति के पड़ने वाले प्रभावों को महत्त्वपूर्ण माना है। कुछ आलोचकों ने कहा कि इस सिद्धान्त में तथ्यों के समर्थन में कोई ठोस वैज्ञानिक एवं आनुभाविक समर्थन नहीं है। कुछ इस सिद्धान्त में नवीनता की कमी मानते है। इसके संप्रत्ययों की वैज्ञानिकता की जांच नहीं हो सकती। कुछ इसे आदर्शवादी अधिक व्यावहारिक कम मानते है। इन आलोचनाओं के बाद भी फ्रोम के सिद्धान्तों का विशिष्ट महत्त्व है।

1.20 केरेन हार्नी का व्यक्तित्व सिद्धान्त

हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त में फ्रायड के सिद्धान्तों में संशोधन कर उसे उन्नत बनाने की कोशिश की है। हार्नी फ्रायड की इस बात से सहमत थी कि वयस्क व्यक्तित्व के निर्धारण में बाल्यावस्था के आरंभिक वर्षों का अधिक महत्त्व होता है। परन्तु हार्नी का मत है कि बाल्यावस्था के सामाजिक कारकों न कि जैविक कारक द्वारा व्यक्तित्व का विकास होता है। व्यक्ति का विकास सामाजिक संबंध द्वारा प्रभावित होता है।

मूल चिन्ता का संप्रत्यय

हार्नी के अनुसार बाल्यावस्था की दो प्रमुख आवश्यकताएं होती है:

- **संतुष्टि आवश्यकता**: इसमें भोजन, पानी, लैंगिक क्रियाएं, नींद आदि आवश्यकताएं शामिल होती है।
- **सुरक्षा आवश्यकता**: इन आवश्यकताओं में डर से स्वतंत्रता, स्वयं की सुरक्षा आदि शामिल होती है। इन दोनों आवश्यकताओं में से हार्नी ने सुरक्षा की आवश्यकता को व्यक्तित्व विकास के लिये महत्त्वपूर्ण बताया। बच्चे को माता-पिता से स्नेह मिलना, बच्चे को समझा जाना आदि से उसमें सुरक्षा की भावना विकसित होती है। इसके अभाव में उसमें विद्वेष उत्पन्न होता है। जब बच्चा डर के कारण इस विद्वेष का दमन कर देता है तो उस चिन्ता उत्पन्न होती है जिसे मूल चिंता या बेसिक एंग्जाइटी कहा जाता है। मूल चिन्ता से तात्पर्य बच्चों में निसहायता तथा अकेलेपन की भावना से है।

नोट

मूल चिन्ता से बचने के उपाय

इस मूल चिन्ता में बच्चा निम्न तरह से बचने का प्रयास करता है:

- **स्नेह प्राप्त करना**: इसमें बच्चे दूसरों से स्नेह की अत्यधिक अपेक्षा रखते हुए उनसे स्नेह प्राप्त करने का प्रयास करते है।
- **आज्ञाकारिता/विनम्रता दिखाना**: इसमें बच्चा दूसरों के विचारों को स्वीकार कर लेता है। लोगों के सामने स्वयं को निम्न रखता हुआ विनम्रता दिखाता है। इसी कारण वह अन्य व्यक्तियों के क्रोध से बचने का प्रयास करता है।
- दूसरों पर नियंत्रण पाना: इसमें बच्चों अत्यधिक आक्रामक होते हुए दूसरों पर धाक जमाने, उन्हें अपने नियन्त्रण में रखकर अपनी चिन्ता में कमी करने का प्रयास करता है।
- **विलगन व्यवहार द्वारा**: इस प्रकार के व्यवहार में व्यक्ति अन्य व्यक्तियों, परिस्थिति से, समस्याओं से स्वयं को बिल्कुल अलग कर लेता है। वह किसी भी कार्य में भागीदारी नहीं करता हुआ अलग थलग रहने का प्रयास करता है। वह कार्यों से बच निकलने का प्रयास करता है।

न्यूरोटिक/स्नायुविकृत आवश्यकताएँ

जब व्यक्ति जीवन की समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता, कई बार असफलताओं का सामना करता है तो उसमें कुछ विशेष आवश्यकताएं उत्पन्न हो जाती है, जिन्हें हार्नी ने न्यूरोटिक या स्नायुविकृत आवश्यकताएं कहा। इन आवश्यकताओं के कारण व्यक्ति स्वयं को मूल चिन्ता से बचने का प्रयास करता है। इनमें स्नेह प्राप्त करना, लोगों का अनुमोदन करना, उनकी हां में हां मिलाना, स्वयं के सम्मान की आवश्यकता, व्यक्तिगत प्रशंसा की इच्छा, लोगों का शोषण करने की प्रवृत्ति रखना, स्वतंत्रता की इच्छा रखना, अनाक्रमण आदि शामिल है। इन सभी न्यूरोटिक आवश्यकताओंके परिणामस्वरूप व्यक्ति में एक विशेष प्रकार के व्यवहार करने की प्रवृति बन जाती है जिसे न्यूरोटिक प्रवृति कहा जाता है। यह निम्न प्रवृत्ति तीन प्रकार से व्यक्त होती है।

- **व्यक्तियों की और जाने की प्रवृति**: इस प्रकार की प्रवृति में व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के करीब जाकर, उनकी और जाकर अपनी आवश्यकताओं को व्यक्त करता है। इसमें दूसरों का स्नेह, स्वीकृति, अनुमोदन, एक मजबूत जीवन साथी प्राप्त करने की प्रवृति शामिल होती है।

- **व्यक्तियों के विरुद्ध जाने की प्रवृत्तिः** इस प्रकार की प्रवृत्ति में व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध जाता है। इसमें दूसरों के प्रति आक्रामकता दिखाना, उन्हें नियन्त्रण में रखना, उनके प्रति विद्वेष दिखाना, उनका शोषण करना, सत्ता प्राप्त करना आदि शामिल है।

नोट

- **व्यक्तियों से दूर हटने की प्रवृतिः** इस प्रकार की प्रवृति में व्यक्ति अन्य व्यक्तियों, परिस्थिति से, समस्याओं से स्वयं को बिल्कुल अलग कर लेता है। वह अलग थलग रहने का प्रयास करता है। वह कार्यों से बच निकलने का प्रयास करता है।

व्यक्तित्व के प्रकार

इन तीनों प्रकार की प्रवृतियों से तीन अलग-अलग प्रकार के व्यक्ति का निर्माण होता है जो निम्न है।

फरियादी प्रकार

यह व्यक्तियों की और जाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। ऐसे व्यक्ति दूसरे पर अत्यधिक निर्भर करते है। इनका व्यवहार मैत्रीपूर्ण होता है।

आक्रामक प्रकार

यह व्यक्तियों अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध जाने से बनता है। ऐसे व्यक्ति आक्रामक, शक्की तथा अत्यधिक गुस्से वाले होते है। ऐसे व्यक्ति दूसरे पर आधिपत्य दिखाने, उन्हें नियन्त्रित करने का प्रयास करते है।

विलगित प्रकार

यह व्यक्तियों से दूर हटने के परिणामस्वरूप बनता है। ऐसे व्यक्ति असामाजिक होते है, एकान्त में रहना पसंद करते है। अन्य लोगों से दूरी बनाए रखते है।

हार्नी ने अपनी सिद्धान्त में मूल चिन्ता को कम करने की प्रवृतियों का उल्लेख करते हुए कहा कि मूल चिन्ता को कम करने के लिये व्यक्ति या तो स्वयं के बारे में एक आदर्शवादी छवि बना लेता है जो कि वास्तविक छवि से बहुत अलग होती है। इसमें व्यक्ति स्वयं के बारे में बढ़ा चढ़ा कर सोचता है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में घमण्ड का विकास होता है।

रक्षा युक्तियाँ

मूल चिन्ता को कम करने के लिये हार्नी ने कुछ रक्षा युक्तियाँ भी बताई जिनका व्यक्ति उपयोग करता है। यह रक्षा युक्तियाँ मुख्यतः दो श्रेणियों में होती है। पहला युक्तिकीकरण जिसमें व्यक्ति या तो स्वयं की इच्छाओं, असफलताओं हेतु कोई तार्किक कारण बनाता है, उसे स्पष्ट करने हेतु उसकी तर्कपूर्ण व्याख्या करने का प्रयास करता है। दूसरा बाहरीकरण जिसमें व्यक्ति असफलता के लिये बाहरी कारकों को जिम्मेदार मानते हुए स्वयं को बचाने का प्रयास करता है। रक्षा युक्तियों के विभिन्न प्रकारों के बारे में आप पूर्व में पढ़ चुके है।

हालांकि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने हार्नी के सिद्धान्त का शोधपरक मूल्य कम बताया है। इनके संप्रत्ययों पर अधिक शोध नहीं किये गये है तथा इनकी लोकप्रियता उतनी नहीं है जितनी कि फ्रायड, एडलर एवं युंग के सिद्धान्तों की है। हार्नी के सिद्धान्त में जैविक मूलप्रवृतियों की पूर्णरूपेण उपेक्षा की गई है। आलोचक यह भी कहते है कि इस सिद्धान्त में सामाजिक सिद्धान्तों पर जरूरत से ज्यादा बल दिया गया है। व्यक्ति विकास में

लैंगिकता, आक्रामकता तथा अचेतन की उपेक्षा हार्नी की एक बड़ी भूल कुछ आलोचकों द्वारा मानी गई है। इन आलोचनाओं के बाद भी हार्नी के सिद्धान्त का काफी महत्त्व है।

इस प्रकार हार्नी के सिद्धान्त से यह स्पष्ट है कि उन्होंने एडलर एवं फ्रोम के समान ही सामाजिक सांस्कृतिक कारकों पर अत्यधिक बल डाला है। हार्नी द्वारा सुझाए गए संप्रत्ययों से व्यक्ति को बेहतर तरीके से समझने में सफलता मिली है।

नोट

1.21 बेन्डुरा का व्यक्तित्व सिद्धान्त

यह सिद्धान्त व्यक्ति के व्यवहारवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। जिसमें स्पष्ट रूप से दिखने वाले बाह्य व्यवहारों के आधार पर व्यक्ति को समझने का प्रयास किया गया है। यह सिद्धान्त स्किनर, पावलोव आदि के समान विचारधारा का है। परन्तु इस सिद्धान्त में उद्दीपक तथा अनुक्रिया के बीच में आने वाले आन्तरिक संज्ञानात्मक चरों जैसे आवश्यकता, प्रणोद, इच्छा, संवेग आदि को भी महत्त्व दिया गया है। इसीलिये इस सिद्धान्त को सामाजिक अधिगम सिद्धान्त के साथ सामाजिक-संज्ञानात्मक सिद्धान्त भी कहा जाता है।

बेन्डुरा का सिद्धान्त यह मानता है कि अधिकतर मानव व्यवहार व्यक्ति अपने जीवनकाल में सीखता है। वे यह भी मानते है कि मानव व्यवहार संज्ञानात्मक, व्यवहारात्मक एवं पर्यावरणीय निर्धारकों के बीच अन्योय अन्तःक्रिया का परिणाम है। इस तरह की अन्योय अन्तःक्रिया को बेन्डुरा ने अन्योय निर्धायता नाम दिया। इस संप्रत्यय के अनुसार मानव क्रिया में तीन कारकों का प्रभाव हमेशा पड़ता है। ये तीन कारक है - बाह्य वातावरण, संज्ञानात्मक एवं आन्तरिक घटनाएं, व्यवहार।

आत्म तंत्र

अन्योय निर्धार्यता के स्रपत्यय से स्पष्ट है कि प्रत्येक चीज परस्पर ढंग से अन्तःक्रियात्मक होती है। इन सभी का केन्द्र बिन्दु आत्म तंत्र होता है। बेन्डुरा ने यह बताया कि आत्म तंत्र कोई मानसिक एजेन्ट नहीं है जिससे व्यवहारों का नियंत्रण होता है। बल्कि यह प्रत्यक्षण, मूल्यांकन एवं व्यवहारों के संचालन के लिये रास्ता प्रशस्त करता है। आत्म तंत्र से व्यक्तित्व में संगतता एवं एकात्मकता उत्पन्न होती है। आत्म तंत्र का संबंध चिन्तन तथा प्रत्यक्षण से विशेष रूप से होता है। आत्म तंत्र का एक महत्त्वपूर्ण कार्य आत्म नियमन है। आत्म नियमन से तात्पर्य चिन्तन द्वारा अपने वातावरण में जोड़ तोड़ करने तथा अपने कार्यों के परिणाम को स्पष्ट करने की क्षमता से होता है।

मॉडलिंग : प्रक्षेपण द्वारा सीखना

बेन्डुरा के अनुसार व्यक्ति दूसरों व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण करके तथा उसे दोहरा कर वैसा ही व्यवहार करना सीख लेता है। इसे ही मॉडलिंग कहते है एवं जिस व्यक्ति के व्यवहार को देखकर कोई व्यवहार सीखा जा रहा है, उसे मॉडल कहते है। इसके लिये बेन्डुरा ने रास तथा रॉस के साथ मिलकर एक प्रयोग किया। इसमें स्कूल के बच्चों के दो समूह बनाये गए। एक समूह के बच्चों को एक वीडियो दिखाया गया, जिसमें बच्चों को तीन से चार फीट की एक गुडिया जिसे बोब डॉल कहा गया, को उछालते हुए, मारते हुए एवं उसके प्रति आक्रामक व्यवहार करते हुए दिखाया गया। दूसरे समूह के बच्चों को ऐसे वीडियो दिखाया गया जिसमें किसी प्रकार का आक्रामक व्यवहार या हिंसा नहीं थी। जब दोनों समूह के बच्चों को ऐसी ही गुडिया के साथ अकेला छोड़ दिया गया, तो जिस समूह को आक्रामकता वाला वीडियो दिखाया गया था, उस समूह के बच्चों ने भी उस गुडिया के साथ आक्रामक व्यवहार जैसे: उछालना, मारना पीटना आदि ही दर्शाए जबकि दूसरे समूह के बच्चों में ऐसा आक्रामक व्यवहार प्रथम समूह की तुलना में काफी कम था। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि जिस प्रकार

के व्यवहार का हम प्रेक्षण करते है, वैसा ही व्यवहार हम प्रदर्शित करते है। इसे बेन्डुरा ने प्रक्षेपणात्मक अधिगम या आब्जर्वेशनल लर्निंग कहा जाता है। इसे सामाजिक अधिगम भी कहा जाता है।

नोट

सामाजिक अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

बेन्डुरा द्वारा किये गये प्रयोग के आधार पर सामाजिक अधिगम को प्रभावित करने वाले निम्न कारकों की पहचान हुई।

मॉडल की विशेषताएँ - मॉडल (जिसके व्यवहार को देखा जा रहा है) तथा प्रयोज्य (जो व्यक्ति व्यवहार को घटित होते देख रहा है) में समानता जितनी अधिक होगी, अधिगम उतना ही अधिक होगा। यदि मॉडल एवं प्रयोज्य दोनों की उम्र, लिंग आदि समान है तो प्रेक्षणात्मक अधिगम अधिक होगा। इसी प्रकार यदि मॉडल का स्तर एवं प्रतिज्ञा अधिक है तो भी अधिगम अधिक होगा। विज्ञापनों में अक्सर किसी अभिनेता, खिलाड़ी को प्रचार के लिये लिया जाता है क्योंकि ऐसे व्यक्तियों को मॉडल के रूप में मानकर अन्य व्यक्ति उसी तरह का व्यवहार करने के लिये प्रेरित होते है। इसी प्रकार जिस प्रकार के व्यवहार का अधिगम होना है, यदि वह सरल हुआ तो अधिगम अधिक होगा। यदि व्यवहार जटिल है तो उसका प्रेक्षणात्मक अधिगम कम होगा।

प्रेक्षक की विशेषताएं - प्रेक्षक या प्रयोज्य की भी कुछ विशेषताएं होती है जिससे मॉडलिंग प्रभावित होती है। जिस प्रेक्षक या दर्शक में आत्म विश्वास एवं आत्म सम्मान की कमी होती है, वे मॉडल का अनुसरण अधिक करते है। इसी तरह से जिन व्यक्तियों को बीते दिनों में किसी व्यवहार का प्रक्षेपण करने के लिये पुरस्कार दिया गया होता है, वे मॉडल के व्यवहारों का अनुकरण उन व्यक्तियों की तुलना में तेजी से करते है, जिन्हें पुरस्कार नहीं दिया गया हो।

व्यवहार का परिणाम – बेन्डुरा के अनुसार व्यक्ति निश्चित रूप से एक प्रतिष्ठित मॉडल के व्यवहारों का अनुकरण करता है, परन्तु यदि इस व्यवहार के लिये उसे कोई पुरस्कार या सकारात्मक परिणाम नहीं मिलता है तो मॉडल के प्रतिष्ठित होने पर भी मॉडलिंग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इस प्रकार ऐसे कई कारक है जो यह निर्धारित करते है कि प्रेक्षणात्मक अधिगम किस हद तक बढ़ेगा या घटेगा। कारकों के पश्चात अगले भाग में प्रेक्षणात्मक अधिगम की प्रक्रिया को समझेंगे।

प्रेक्षणात्मक अधिगम की प्रक्रिया

यह प्रक्रिया चार अतसंबंधित प्रक्रियाओं द्वारा नियन्त्रित होता है—

अ. अवधान

ब. धारण

स. पुनरूत्पादन

द. प्रेरणा

अवधान

मॉडलिंग के लिये सबसे पहला एवं आवश्यक पद है कि प्रयोज्य मॉडल के व्यवहारों पर ठीक से ध्यान दे। मॉडल को सिर्फ देख लेने से ही वह अधिगम सीख नहीं सकेगा। इसके लिये मॉडल के संकेत, व्यवहारों को बारीकी से देखना, संगत व्यवहारों को चयन करना आवश्यक है। इसके लिये मॉडल के व्यक्तिगत गुणों की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है जिससे कि वह प्रयोज्यों का ध्यान अपनी और खींच सके।

धारण

यह प्रेक्षणात्मक अधिगम का दूसरा पद है। इस अधिगम के लिये यह आवश्यक है कि मॉडल के सभी सार्थक व्यवहारों को याद रखा जाए। इसे धारण कहते है। बेन्डुरा का मत है कि व्यक्ति जब मॉडल को ध्यान से देखता है तो उसके महत्त्वपूर्ण पहलुओं के आधार पर एक प्रतिमा मन में बना लेता है जो मॉडल से संबंधित व्यवहार को याद रखने, धारण करने में मदद करता है। प्रतिमा के अलावा कई बार व्यक्ति शब्दिक कोडिंग द्वारा भी मॉडल के बारे में याद रखता है।

नोट

पुनरूत्पादन

धारण के द्वारा जिस व्यवहार को याद रखा गया है, उसे वास्तविक व्यवहार में बदलना आवश्यक है। यदि सीखा जाने वाला व्यवहार अधिक जटिल हो तो यह कार्य अधिक मुश्किल होता है। मॉडल के व्यवहार का सांकेतिक चित्रण करने, उसे शब्दों में याद रखने, उसका मन ही मन पूर्वाभ्यास करना ही पर्याप्त नहीं है, उसे वास्तविक व्यवहार में बदलना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे कार चलाना सीखने के लिये कार कैसे चलाई जाती है केवल इसकी जानकारी से कार नहीं सीखी जा सकती। इसके लिये कार चलाने के लिये वास्तविक व्यवहार का अभ्यास कर सीखना होगा।

प्रेरणा

यह प्रेक्षणात्मक अधिगम का चौथा पद है। चाहे व्यक्ति मॉडल के व्यवहार को कितना ही ध्यानपूर्वक देख ले, उसे याद रखे, उस व्यवहार को करने की क्षमता कितनी ही अधिक हो, वह व्यवहार तब तक प्रदर्शित नहीं होगा, यदि व्यक्ति स्वयं उस व्यवहार को करने हेतु प्रेरित न हो, उसे उस व्यवहार के दर्शन के लिये प्रोत्साहन (इनसेंटिव) का पुर्नबलन न मिले। प्रोत्साहन या पुनर्बबलन उस व्यवहार को प्रदर्शित करने पर प्रयोज्य को होने वाला लार्भ है। यह पुनर्बलन दो प्रकार का होता है। पहला विकेरियस या स्थानापन पुनर्बलन, इसमें व्यक्ति घटित व्यवहार को देखकर ही उसे करने के लिये प्रोत्साहित होता है। दूसरा आत्म पुनर्बलन जिसमें व्यक्ति को किसी कार्य को करने से आत्म संतुष्टि एवं गर्व महसूस होता है।

इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बेन्डुरा का सामाजिक अधिगम या सामाजिक संज्ञानात्मक सीखना एक वस्तुनिष्ठ सिद्धान्त है जो प्रयोगशाला विधि के लिये काफी उपर्युक्त है। लेकिन कुछ आलोचक यह कहते है कि इस सिद्धान्त में स्पष्ट व्यवहार पर ही बल डाला गया है। व्यक्ति के अन्य महत्त्वपूर्ण पहलुओं जैसे चेतन, अचेतन बल की उपेक्षा की गई है। कुछ व्यवहारवादी जैसे स्किनर भी कहते है कि जिन संज्ञानात्मक चरों की व्यक्ति में भूमिका की बात की गई है वह उतनी वस्तुनिष्ठ नहीं है, जितना कि बाहरी रूप से दिखने वाले स्पष्ट व्यवहार में होती है। कुछ आलोचक यह भी मानते है बेन्डुरा ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संज्ञानात्मक चरों द्वारा किस प्रकार व्यवहार प्रभावित होता है।

इन आलोचनों के बावजूद भी बेन्डुरा का सिद्धान्त व्यक्ति के अध्ययन के लिये नये द्वार खोलता है जिसे मनोवैज्ञानिक एक महत्त्वपूर्ण योगदान मानते है।

1.22 पावलोव का क्लासिकी अनुबन्धन सिद्धान्त

अनुबन्धन का प्रयोग

पावलोव के सिद्धान्त का आधार अनुबन्धन है। **लेफ्रेन्कोइस** के अनुसार अनुबन्धन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा उद्दीपक एवं अनुक्रिया के बीच एक साहचर्य स्थापित होता है। इस सिद्धान्त को क्लासिकी अनुबन्धन या प्रतिवादी अनुबन्धन या टाइप-एस सिद्धान्त कहा जाता है।

नोट

पावलोव के अनुसार जब किसी स्वाभाविक उद्दीपक को व्यक्ति के सामने प्रस्तुत किया जाता है तो व्यक्ति उसके प्रति स्वाभाविक अनुक्रिया करता है। जैसे भूखे व्यक्ति के भोजन देखने पर लार स्रवण होना। यदि इस स्वाभाविक उद्दीपक के साथ किसी उदासीन उद्दीपक को कुछ प्रयासोंमें साथ-साथ प्रस्तुत किया जाए तो व्यक्ति सिर्फ उदासीन उद्दीपक के प्रति भी स्वाभाविक अनुक्रिया करना सीख जाएगा। पावलोव ने अपने प्रयोग में एक कुत्ते को भोजन प्रस्तुत किया। भोजन स्वाभाविक उद्दीपक था, जिसकी स्वाभाविक अनुक्रिया लार स्रवण के रूप में हुई। फिर कुछ समय के लिये भोजन प्रस्तुत करते समय घण्टी की आवाज भी की गई। इसके पश्चात सिर्फ घण्टी की आवाज किये जाने पर ही लार का स्रवण हो गया। इसका अभिप्राय यह है कि भोजन एवं घण्टी के साथ दिये जाने पर दोनों में साहचर्य स्थापित हो गया, जिससे कि उदासीन उद्दीपक के प्रति ही स्वाभाविक अनुक्रिया हो गई। क्लासिकी अनुबन्धन में उद्दीपक एवं अनुक्रियाएँ निम्न प्रकार की होती है –

1. स्वाभाविक उद्दीपक (यू. सी.एस.) - भोजन
2. स्वाभाविक अनुक्रिया (यू. सी.आर.) - लार का स्रवण
3. उदासीन या अनुबन्धित उद्दीपक (सी.एस.) - घण्टी
4. अनुबन्धित अनुक्रिया (सी.आर.) - लार का स्रवण

क्लासिकी अनुबन्धन को निम्न तरह से समझा जा सकता है -

भोजन - लार

भोजन व घण्टी - लार

घण्टी – लार

अनुबन्धन के प्रकार

जब स्वाभाविक एवं अनुबन्धित उद्दीपक को साथ-साथ प्रस्तुत किया जाता है तो इस प्रस्तुतिकरण के आधार पर अनुबन्धन चार प्रकार का हो सकता है जो निम्न है –

- समणिक/साइमटेनियस अनुबन्धन: दोनों उद्दीपक भोजन व घण्टी साथ-साथ प्रस्तुत किये जाते है।
- विलम्बित/डिलेड: इसमें घण्टी पहले बजा दी जाती है एवं तब तक बजती रहती है जब तक भोजन न दिया जाए।
- ट्रेस: घण्टी को पहले बजाया जाता है, इसके बन्द होने पर भोजन प्रस्तुत किया जाता है।
- गामी/अनुबन्धन: इसमें भोजन पहले दे दिया जाता है, घण्टी बाद में बजाई जाती है।

अनुबन्धन के अन्य संप्रत्यय

उद्दीपक सामान्यीकरण: इसमें प्राणी वास्तविक अनुबन्धित उद्दीपक जैसे घण्टी के प्रति जो अनुक्रिया करता है, वैसी ही अनुक्रिया घण्टी के समान कोई अन्य आवाज बजाने पर भी कर देता है। अर्थात् प्राणी ने उद्दीपक का सामान्यीकरण कर दिया है।

- **विलोपन**: यदि प्राणी को अनुबन्धन स्थापित होने पर, यानी जब कुत्ता सिर्फ घण्टी की आवाज के प्रति ही लार की अनुक्रिया प्रारम्भ कर दें, इसके बाद कुछ समय के लिये सिर्फ घण्टी की आवाज सुनाई जाए और भोजन इसके साथ प्रस्तुत न किया जाए तो कुत्ते द्वारा सीखा गया व्यवहार पुन: बन्द हो जाता है अर्थात् विलोपित हो जाता है। इसे विलोपन कहा जाता है।

नोट

- **स्वतः पुर्नलाभः** यदि सीखी गई अनुक्रिया का विलोपन हो गया हो, इसके कुछ समय बाद पुन: प्रयोग किया जाए तो कुत्ता पुन: सिर्फ घण्टी की आवाज पर ही लार का स्रवण करता है अर्थात् अनुबन्धित व्यवहार दर्शाता है। अर्थात् अनुबन्धन के विलोपन होने के कुछ समय बाद कुत्ता पुन: अपने आप ही अनुबन्धित व्यवहार दर्शाता है। इसे स्वतः पुर्नलाभ कहते हैं।

पावलोव के सिद्धान्त में यह बताया गया कि सीखने के लिये पुनर्बलन का होना अनिवार्य है। व्यक्ति का विकास भी तभी होता है जब व्यक्ति को समय-समय पर पुनर्बलन मिलता है। साथ ही किसी नकारात्मक घटना के साथ साहचर्य हो जाने पर यह व्यक्ति को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार पावलोव का सिद्धान्त मनोविज्ञान के क्षेत्र में, अधिगम के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त साबित हुआ है जिसका अनुप्रयोग हम दैनिक जीवन में कई रूपों में देखते है।

1.23 स्किनर का क्रियाप्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त

बी.एफ. स्किनर एक व्यवहारवादी थे जिन्होंने व्यवहार की व्याख्या प्रयोगशालाओं में किए गए अध्ययन के आधार पर की। स्किनर के शब्दों में व्यक्ति उद्दीपकों के प्रति सीखी गई अनुक्रियाओं का एक संग्रहण तथा स्पष्ट बाहरी व्यवहारों या आदत तंत्रों का एक समुच्चय है। इसमें स्किनर ने उह व्यवहारों को शामिल किया जिन्हें वस्तुनिष्ठ रूप से प्रक्षेपण किया जा सके।

स्किनर ने अन्य कुछ सिद्धान्तों जैसे मनोविश्लेषक सिद्धान्त, संज्ञानात्मक सिद्धान्त एवं मानवतावादी सिद्धान्तों का विरोध किया। क्योंकि इन सभी सिद्धान्तों में व्यक्ति की व्याख्या आन्तरिक कारकों के आधार पर की गई। जबकि स्किनर ने व्यक्ति की व्याख्या करने में आन्तरिक प्रक्रियाओं जैसे प्रणोद, अभिप्रेरक, अचेतन को अस्वीकार कर दिया क्योंकि इनका तो प्रक्षेपण ही नहीं किया जा सकता जबकि व्यवहारवादी विचारधारा तो उसी व्यवहार को मानती जो स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो, दिखता हो। स्किनर ने मानव जीव को एक एम्प्टी आर्गेनिज्म या रिक्त जीव नाम दिया। स्किनर ने अपने अध्ययन व्यक्तियों पर न करके चूहों एवं कबूतरों पर किये थे।

क्रियाप्रसूत एवं प्रतिवादी व्यवहार

स्किनर ने व्यवहार के दो प्रकार बताए - क्रियाप्रसूत एवं प्रतिवादी व्यवहार।

क्रियाप्रसूत व्यवहार से तात्पर्य ऐसे व्यवहार से होता है जो वातावरण के किसी ज्ञात उद्दीपक से उत्पन्न नहीं होता। ऐसे व्यवहारों को व्यक्ति अपनी इच्छा से करता है। इसके लिये किसी उद्दीपक की आवश्यकता नहीं होती। जैसे स्किनर के प्रयोग में चूहों को एक लीवर दबाने की अनुक्रिया सिखाई गई। चूंकि चूहा लीवर अपनी इच्छा से दबाता है, इसीलिये इसे क्रियाप्रसूत व्यवहार कहा जाता है। यदि इस तरह के व्यवहार को करने के बाद व्यक्ति को पुरस्कार दिया जाए तो यह व्यवहार दर्शाने की प्रवृति बढ़ जाएगी। लेकिन यदि यह व्यवहार दर्शाने पर दण्ड दिया जाए तो यह व्यवहार कम हो जाएगा। इस क्रियाप्रसूत व्यवहार की कण्डीशनिंग या अनुबन्धन को आपरेंट कण्डीशनिंग कहा जाता है। जन्म के बाद व्यक्ति कई प्रकार के व्यवहार करता है उनमें से जिन व्यवहारों के लिये पुरस्कार मिलता है, प्रोत्साहन मिलता है, वे व्यवहार व्यक्ति दोहराता है, एवं व्यवहारों को दोहराने पर आदत का निर्माण होता है एवं आदतों के समूह या समूच्चय से व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

प्रतिवादी व्यवहार – प्रतिवादी व्यवहार व्यक्ति अपनी इच्छा से नहीं करता है, यह अनैच्छिक एवं स्वतः होता है। जैसे अधिक रोशनी देखने पर आंखों की पुतली का सिकुड़ना, भोजन देखने पर मुंह में लार स्रवण होना, अत्यधिक ठण्ड होने पर कांपना आदि।

पुनर्बलन अनुसूची

इसका अभिप्राय क्रियाप्रसूत व्यवहार को किस पेटर्न में प्रोत्साहन या पुरस्कार दिया जाएगा इससे है। प्रारम्भिक अवस्था में स्किनर ने प्रत्येक अपेक्षित व्यवहार को प्रोत्साहन दिया इससे सतत पुनर्बलन अनुसूची कहते है।

नोट

यदि प्रत्येक अपेक्षित व्यवहार दर्शाने पर पुरस्कार न दिया जाकर किसी विशेष पेटन के आधार पर कुछ ही व्यवहारों को पुरस्कार दिया जाए तो इसे आंशिक पुनर्बलन अनुसूची या आंतरायिक पुनर्बलन अनुसूची कहते है। इसके चार प्रकार होते है।

निश्चित अनुपात एवं परिवत्र्य अनुपात अनुसूची - निश्चित अनुपात अनुसूची में प्राणी को एक पूर्व निर्धारित संख्या में अनुक्रिया करने पर पुरस्कार या पुनर्बलन दिया जाता है। जैसे प्रत्येक पांच अनुक्रिया के बाद या प्रत्येक दस अनुक्रिया के बाद। लेकिन कितनी अनुक्रिया के बाद पुनर्बलन देना है यह संख्या निश्चित रहती है। यदि यह संख्या बदलती रहे जैसे कभी तीन अनुक्रिया के बाद पुनर्बलन दिया, फिर 5 या 7 अनुक्रिया के बाद, फिर 10 अनुक्रिया के बाद आदि। इस प्रकार की अनुसूची को परिवत्र्य अनुपात अनुसूची कहते हैं। इसमें पुनर्बलन देने के लिये अनुक्रियाओं की कोई पूर्व निर्धारित संख्या नहीं होती।

निश्चित अन्तराल एवं परिवत्र्य अन्तराल अनुसूची - निश्चित अन्तराल अनुसूची में प्राणी को एक निश्चित पूर्व निर्धारित समय अन्तराल के बाद पुनर्बलन दिया जाता है जैसे प्रत्येक पांच मिनट या दस मिनट के बाद। जबकि परिवत्र्य अन्तराल अनुसूची में यह समय निश्चित नहीं होकर बदला जाता है। जैसे उदाहरण के लिये पहले पांच मिनट के बाद, फिर तीन मिनट के बाद, फिर 6 मिनट के बाद अनुक्रियाओं को पुरस्कृत किया जाता है।

शेपिंग की प्रक्रिया

शेपिंग एक ऐसी प्रविधि है जिसमें वांछित व्यवहार तक पहुँचने तक में उस दिशा में शामिल छोटी-छोटी अनुक्रियाओं को भी पुरस्कृत किया जाता है जिससे धीरे-धीरे व्यक्ति उस वांछित व्यवहार तक पहुँच सके। जैसे स्किनर ने चूहे को लीवर दबाना सिखाने के लिये उसके लीवर के आस पास जाने, लीवर को छूने आदि पर ही पुरस्कार के रूप में भोजन दे दिया। इस प्रकार चूहा लीवर के आस-पास रहने, उसे छूने, दबाने की और अग्रसर हुआ। अन्ततः चूहा लीवर को पर्याप्त दम से दबाना सीख गया जो कि वांछित अनुक्रिया थी। इसे क्रमिक सन्निकटन भी कहते है। अर्थात् इसमें धीरे-धीरे व्यवहारों को शपे किया जाता है, इसीलिये इसे शेपिंग कहा जाता है। इसमें व्यवहारों की शृंखला या चेन बनाई जाती है अर्थात् इसमें चेनिंग या शृंखलाकरण भी शामिल है।

व्यवहारों का आत्म नियन्त्रण

प्राणी अपने व्यवहार में परिवर्तन के लिये आत्म नियंत्रण की प्रविधियों का उपयोग करता है जिसके द्वारा प्राणी उन चरों पर नियंत्रण रखता है, जिससे उसका व्यवहार प्रभावित होता है। ऐसी कुछ प्रविधियां निम्न है –

- **संतुष्टि प्रविधिः** इस प्रविधि में यदि व्यक्ति स्वयं को किसी बुरी आदत से छुटकारा दिलाना चाहता है तो उस आदत को तब तक दोहराता रहता है जब तक उसे पूर्णतः संतुष्टि हो जाए या दूसरे शब्दों में वह इस आदत से उब न जाए। जैसे लगातार सिगरेट या शराब पीते रहने से उसमें सिगरेट या शराब से घृणा और विरुचि हो जाएगी।
- **असुखद उद्दीपकों का उपयोगः** इसके लिये व्यक्ति वातावरण को कुछ ऐसा बनाता है कि उसे जिस आदत में परिवर्तन करना है, वह उसे दोहरा नहीं सके। जैसे कोई व्यक्ति अपनी सिगरेट की आदत छोड़ने के लिये दोस्तों, रिश्तेदारों के समूह के सामने घोषणा कर दे कि वह कभी सिगरेट नहीं पीएगा तो उसे सिगरेट पीने पर दोस्तों, रिश्तेदारों की आलोचना का शिकार होना पड़ेगा। इस कारण वह सिगरेट नहीं पीएगा।

क्रियाप्रसूत अनुबंधन के उपयोग

स्किनर के अनुसार वातावरण में परिवर्तन द्वारा व्यक्ति के असामान्य व्यवहार के स्थान पर सामान्य व्यवहार सिखाया जा सकता है। इस प्रक्रिया को व्यवहार परिमार्जन या बीहेवियर मोडिफिकेशन कहा जाता है। इनमें निम्न तनीकें शामिल है –

नोट

विभेदी पुनर्बलन

इस प्रविधि में धनात्मक या अपेक्षित या समायोजित व्यवहार को तो पुरस्कार दिया जाता है एवं ऋणात्मक या अनपेक्षित या वह व्यवहार जिसका परिमार्जन करना है, बदलना है उसके दर्शाए जाने पर कोई पुरस्कार या पुनर्बलन नहीं दिया जाता है। इस प्रक्रिया को विभेदी पुनर्बलन कहते है।

टोकन इकोनामी

इस प्रविधि में व्यक्ति के अपेक्षित या समायोजित व्यवहार दर्शाए जाने पर उसे कुछ संकेत या टोकन दिये जाते है। बाद में व्यक्ति इन टोकन के बदले कुछ धनात्मक पुनर्बलन प्राप्त करता है। इसके विपरीत असमायोजित, अवांछित व्यवहार दर्शाए जाने पर कोई टोकन प्राप्त नहीं होते। इस प्रकार व्यक्ति टोकन प्राप्त करने के लिये अपेक्षित व्यवहार दर्शाता है। जैसे बच्चे को दो घटे पढ़ने के बाद टेलीविजन पर उसकी पसंद का कार्यक्रम देखने हेतु टोकन दिया जाए तो ये टोकन इकोनामी का उदाहरण है।

इस प्रकार स्किनर के सिद्धान्त के वास्तविक परिस्थितियों में कई अनुप्रयोग किये जाते है। इसीलिये स्किनर का सिद्धान्त एक उपयोगी सिद्धान्त साबित हुआ है। हालांकि कुछ आलोचकों ने स्किनर के कुछ संप्रत्ययों की आलोचना की है जैसे प्राणी को एक रिक्त जीव कहना जबकि प्राणी अपनी कई आन्तरिक इच्छाओं, प्रेरणाओं, संवेगों द्वारा नियन्त्रित होता है।

1.24 मैस्लो का आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त

अब्राहम मेलो मनोविज्ञान की मानवतावादी विचारधारा के आध्यात्मिक जनक माने गए है। इस विचारधारा में मनोविश्लेषणवाद एवं व्यवहारवाद दोनों ही विचारधाराओं की आलोचना की गई है।

पदानुक्रम मॉडल

मैस्लो के व्यक्तित्व सिद्धान्त का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू उनका अभिप्रेरण सिद्धान्त है। मैस्लो मानते थे कि अधिकांश मानव व्यवहार किसी-न-किसी लक्ष्य पर पहुँचने की दृष्टि से निर्देशित होते है। उन्होंने मानव अभिप्रेरकों को जन्मजात बताया एवं कहा कि इन्हें प्राथमिकता या शक्ति के आधार पर एक क्रम में व्यवस्थित किया जा सकता है।

- शारीरिक या दैहिक आवश्यकता
- सुरक्षा की आवश्यकता
- सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता
- सम्मान की आवश्यकता
- आत्म सिद्धि की आवश्यकता

इस क्रम के आधार पर यह स्पष्ट है कि व्यक्ति सबसे पहले शारीरिक या दैहिक आवश्यकता पूर्ण करता है एवं आत्मसिद्धि की आवश्यकता को सबसे अन्त में।

नोट

इनमें से प्रथम दो आवश्यकताओं को निचले स्तर की आवश्यकता कहा जाता है एवं अन्तिम तीन को उच्च स्तरीय आवश्यकता कहा जाता है। इस मॉडल की प्रमुख बात ये है कि मॉडल के किसी भी स्तर की आवश्यकता को उत्पन्न होने के लिये आवश्यक है कि उससे नीचे वाले स्तर की आवश्यकता की संतुष्टि पूर्णतः नहीं तो अंशतः अवश्य हो जाये।

- **दैहिक या शारीरिक आवश्यकता**ः इसमें भोजन, पानी, नींद, यौन आदि आवश्यकताएं शामिल हैं। जब व्यक्ति इन जैविक आवश्यकताओं की संतुष्टि नहीं कर पाता है तो वह अन्य उच्च स्तरीय आवश्यकताओं की संतुष्टि की बात तो सोचता ही नहीं है। जैसे यदि व्यक्ति भूख प्यास से तड़प रहा हो तो वह सुरक्षा, आत्म सम्मान के बारे में नहीं सोचता है।
- **सुरक्षा की आवश्यकता**ः इसमें शारीरिक सुरक्षा, स्थिरता, निर्भरता, बचाव, डर चिन्ता आदि से मुक्ति आदि शामिल है। नियम काननू बनाये रखना, विशेष क्रम बनाए रखना भी इसी में शामिल है।
- **संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता**ः जब व्यक्ति की जैविक आवश्यकता एवं सुरक्षा आवश्यकता की पूर्ति बहुत हद तक हो जाती है तो उसमें सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता उत्पन्न होती है। सम्बद्धता का तात्पर्य अपने परिवार तथा समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान पाने की इच्छा से तथा किसी समूह की सदस्यता प्राप्त करने, अन्य व्यक्तियों से अच्छे संबंध बनाए रखने की इच्छा से होता है। स्नेह की आवश्यकता का तात्पर्य दूसरे से स्नेह प्राप्त करने और उन्हें स्नेह देने से होता है।
- **सम्मान की आवश्यकता**ः इसमें मैस्लो ने दो प्रकार की आवश्यकताओं को सम्मिलित किया है। पहली आत्म सम्मान की आवश्यकता एवं दूसरी अन्य व्यक्तियों से सम्मान प्राप्त करने की आवश्यकता। आत्म सम्मान की आवश्यकता में व्यक्तिगत वृद्धि , आत्म विश्वास, उपलब्धि, स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छा शामिल है। दूसरे से सम्मान पाने की इच्छा में अन्य व्यक्तियों से सम्मान के साथ-साथ स्वयं की पहचान बनाने, प्रशंसा प्राप्त करने, लोगों का ध्यान खींचने एवं उनसे स्वीकृति प्राप्त करना आदि शामिल होता है।
- **आत्म सिद्धि की आवश्यकता**ः जब पदानुक्रम में नीचे की चारों आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है तो आत्म सिद्धि की आवश्यकता की और व्यक्ति प्रयास करता है। आत्म सिद्धि एक ऐसी अवस्था है जिसमें व्यक्ति स्वयं की योग्यताओं, क्षमताओं से पूर्णतः परिचित होता है एवं उसके अनुरूप स्वयं को विकसित करना चाहता है। अर्थात् अपनी क्षमताओं के अनुसार स्व विकास करना ही आत्म सिद्धि है। आत्म सिद्धि की आवश्यकता पांच आवश्यकताओं में से सबसे कम प्रबल है। इसीलिये यह अन्य आवश्यकताओं से दब जाती है।

अन्य आवश्यकताएँ

पदानुक्रम मॉडल की इन पांच आवश्यकताओं के अतिरिक्त भी मैस्लो ने कुछ आवश्यकताएं बताई जो निम्न है –

- **संज्ञानात्मक आवश्यकता**ः यह आवश्यकताएं सूचनात्मक होती है जैसे कि जानने की आवश्यकता तथा समझने की आवश्यकता। संज्ञानात्मक आवश्यकता का महत्त्व इसलिए भी है कि इन आवश्यकताओं के बाधित होने से पदानुक्रम मॉडल की पांच आवश्यकताओं की संतुष्टि नहीं हो पाती। जैसे जैविक आवश्यकताओं में भोजन की आवश्यकता की संतुष्टि के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति यह जाने की भोजन कहां मिल सकता है?

नोट

- **स्नायुविकृत आवश्यकताएं/न्यूरोटिक आवश्यकताएं:** जब व्यक्ति की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती तो व्यक्ति में विकृति, निष्क्रियता आदि बनी रहती है। इन्हें स्नायुविकृत आवश्यकताएं कहा जाता है। जैसे यदि व्यक्ति की सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो तो व्यक्ति आक्रामक व्यवहार प्रदर्शित करता है, यह न्यूरोटिक आवश्यकता का ही उदाहरण है।
- न्यूनता अभिप्रेरक: इन्हें डी-आवश्यकताएं भी कहा जाता है क्योंकि इसमें शरीर में किसी चीज की कमी/डेफिशिएंसी/डेफिसिट हो जाती है। यह आवश्यकताएं पदानुक्रम मॉडल की निम्न स्तरीय आवश्यकताओं यानी पहली दो आवश्यकताएं शारीरिक या दैहिक आवश्यकताएं एवं सुरक्षा की आवश्यकताओं के समान है।
- वर्धन अभिप्रेरक: इन्हें बी-आवश्यकताएं भी कहा जाता है। यहां बी का अर्थ बीग होता है क्योंकि इसमें व्यक्ति कुछ बनना चाहता है, स्वयं का विकास करना चाहता है। यह एक उच्च स्तरीय आवश्यकता है। इन्हें मेटा आवश्यकताएं या सत्व अभिप्रेरक भी कहा जाता है। बी अभिप्रेरक की उत्पत्ति व्यक्ति में तब होती है जब डी-आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाए। इस तरह की आवश्यकताएं आत्म सिद्धि व्यक्तियों को प्रेरित करती है। मैस्लोने 18 प्रकार की मेटा आवश्यकताएँ बताई जो इस प्रकार है - सच्चाई, अच्छाई, अनोखापन, पूर्णता, अनिवार्यता, संपूर्णता, न्याय, क्रम, सरलता, विस्तृतता, प्रयासशीलता, विनोदशीलता, आत्म पर्याप्तता एवं अर्थपूर्णता। मैस्लो ने यह भी बताया कि इन सभी मेटा आवश्यकताओं का कोई पदानुक्रम नहीं होता और इन्हें एक-दूसरे से प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

आत्म सिद्ध व्यक्ति की विशेषताएँ

मैस्लो के सिद्धान्त की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह सिद्धान्त मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों पर किये गये अध्ययन पर आधारित है। मैस्लो ने आत्म सिद्ध व्यक्तियों का अध्ययन करके उनकी निम्न विशेषताएं बताई है।

ऐसे लोग समस्या केन्द्रित होते है न कि आत्म केन्द्रित। ऐसे लोगों में सरलता, स्वाभाविकता तथा सहजता के गुण होते है। ये स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता को पसंद करते हैं। इनमें अनासक्ति या डिटेचमेंट का भाव होता है, ये गोपनीयता को पसंद करते है। घटनाओं को देखने का नवीनतम दृष्टिकोण होता है। इन लोगों में कुछ विशेष अलौकिक शक्ति एवं अनुभूतियां होती हैं जिनसे व्यक्ति स्वयं को काफी साहसी, आश्वस्त एवं निर्णायक समझता है। ऐसे अनुभवों को मैस्लो ने शीर्ष अनुभव या पीक एक्सपीरियंस नाम दिया। इनमें सामाजिक अभिरुचि की प्रधानता होती है। ऐसे लोगों अनेक लोगों के साथ सतही संबंध बनाए रखने के स्थान पर कुछ लोगों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाए रखते है। साधन एवं साध्य में स्पष्ट अन्तर करते है। सृजनशील होते है, संस्कृति के प्रति अनुरूपता नहीं दिखाते है अर्थात् सामाजिक मानकों को हुबहु नहीं मानते है। इनका प्रत्यक्षण वास्तविक होता है अर्थात् पूर्वाही नहीं होते हवाई किले नहीं बनाते।

निष्कर्षतः मैस्लो के सिद्धान्त के बारे में कहा जा सकता है कि उन्होंने प्रथम बार व्यक्ति के व्यवहारों को आशावादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण से समझते हए वर्णन किया। हालांकि कुछ आलोचकों ने यह भी कहा है कि एक समय में एक स्तर की आवश्यकता व्यक्ति में क्रियाशील न होकर एक से अधिक स्तरों की आवश्यकताएं भी साथ-साथ क्रियाशील हो सकती है। अर्थात् व्यक्ति दो पदानुक्रम में अलग-अलग स्तर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भी एक ही समय पर प्रयास कर सकता है। इन आलोचना के बाद भी यह एक अत्यन्त उपयोगी सिद्धान्त साबित हुआ है। सुल्ज के अनुसार इस सिद्धान्त की उपयोगिता मनोचिकित्सा, शिक्षा, चिकित्सा तथा संगठन एवं प्रबन्धन में काफी अधिक है।

1.25 रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त

नोट

कार्ल रोजर्स मनोविज्ञान के मानवतावादी विचारधारा से संबंध रखते है। अब्राहम मास्लो के साथ-साथ रोजर्स ने भी इस विचारधारा को बलवती करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। रोजर्स द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त को आत्म सिद्धान्त या व्यक्ति-केन्द्रित सिद्धान्त कहा जाता है। रोजर्स का सिद्धान्त उनके द्वारा प्रतिपादित क्लायंट केन्द्रित मनोचिकित्सा पर आधारित है।

मुख्य संप्रत्यय

रोजर्स के सिद्धान्त में व्यक्ति के निम्न दो पहलुओं पर विशेष बल डाला गया है।

प्राणी

रोजर्स के अनुसार प्राणी एक दैहिक जीव है जो शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही तरह से कार्य करता है। इसमें प्रासंगिक क्षेत्र एवं आत्मन दोनों सम्मिलित होते है। रोजर्स के अनुसार सभी तरह की चेतन एवं अचेतन अनुभूतियों के योग से जिस क्षेत्र का निर्माण होता है, उसे प्रासंगिक क्षेत्र कहते है। मानव व्यवहार इसी के कारण होता है। प्रासंगिक क्षेत्र के बारे में स्वयं व्यक्ति ही सही सही जानता है।

आत्मन

रोजर्स के सिद्धान्त का सबसे महत्त्वपूर्ण संप्रत्यय है। अनुभव के आधार पर धीरे-धीरे प्रासंगिक क्षेत्र का एक भाग विशिष्ट हो जाता है। इसे रोजर्स ने आत्मन की संज्ञा दी है। इसका विकास शैशवावस्था में होता है। आत्मन के रोजर्स ने दो उपतंत्र बताए।

आत्म संप्रत्यय

इससे तात्पर्य व्यक्ति के उन सभी पहलुओं एवं अनुभूतियों से होता है जिससे व्यक्ति अवगत होता है। हालांकि यह प्रत्यक्षण हमेशा सही नहीं होता। जो अनुभूतियां व्यक्ति के आत्म संप्रत्यय के साथ असंगत होती है, उसे व्यक्ति स्वीकार नहीं करता है। और यदि स्वीकार करता भी है तो विकृत रूप में।

आदर्श आत्मन

इसका अभिप्राय स्वयं के बारे में विकसित ऐसी छवि से होता है जिसे व्यक्ति आदर्श मानता है। अर्थात् आदर्श आत्मन में प्राय:: वे गुण होते है जो धनात्मक होते हैं। रोजर्स के अनुसार एक सामान्य व्यक्ति में आदर्श आत्मन एवं प्रत्यक्षीकृत आत्मन में अन्तर नहीं होता। परन्तु जब इन दोनों में अन्तर हो जाता है तो अस्वस्थ व्यक्ति का विकास होता है।

व्यक्ति की आवश्यकताएँ

रोजर्स का मत है कि व्यक्ति की दो मुख्य आवश्यकताएं होती है जिनसे उनका व्यवहार लक्ष्य की और निर्देशित होता है।

अनुरक्षण आवश्यकता

इस आवश्यकता के माध्यम से व्यक्ति स्वयं को ठीक ढंग से अनुरक्षण या मेन्टेन करता है। जैसे भोजन, पानी, हवा, सुरक्षा की आवश्यकता।

संवृद्धि आवश्यकता

व्यक्ति में स्वयं को विकसित करने तथा पहले से और भी अधिक उन्नत बनाने की प्रेरणा होती है। इसे संवृद्धि आवश्यकता कहा जाता है। यदि व्यक्ति उन चीज को सीखता है जिससे तुरन्त पुरस्कार नहीं मिलता तो ये संवृद्धि आवश्यकता का उदाहरण है।

नोट

रोजर्स ने वस्तुवादी प्रकृति के व्यक्तियों को समझाते हुए कहा कि इसमें प्राणी स्वयं में सभी तरह की क्षमताओं को विकसित करने का प्रयास करता है। इस प्रकार के व्यक्तियों में दो तरह की आवश्यकताएं प्रमुख होती है।

स्वीकारात्मक सम्मान

इससे तात्पर्य दूसरों द्वारा स्वीकार किये जाने, दूसरे का स्नेह पाने एवं उनके द्वारा पसंद किये जाने की इच्छा से होता है। दूसरे से सम्मान मिलने पर संतुष्टि एवं सम्मान नहीं मिलने पर असंतुष्टि होती है। रोजस के अनुसार स्वीकारात्मक सम्मान दो प्रकार का होता है - शर्तपूर्ण एवं शर्तरहित। शर्तपूर्ण सम्मान में दूसरों का स्नेह प्राप्त करने के लिये किसी निश्चित मानदण्डों के अनुसार व्यवहार करना होता है। बच्चों को इस प्रकार शर्त रखकर सम्मान देना उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है और ऐसे बच्चे फुली फंक्शनिंग या पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति बनने से रह जाते है। शर्तहीन सम्मान में दूसरों का स्नेह, प्यार एवं मान सम्मान बिना किसी शर्त के मिलता है। इस तरह के सम्मान में बच्चे फुली फंक्शनिंग व्यक्ति बनने की और अग्रसर होते है।

आत्म सम्मान

व्यक्ति को स्वयं को सम्मान एवं स्नेह देने की आवश्यकता होती है। जब व्यक्ति को महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से मान सम्मान मिलता है।

पूणरूपेण सफल व्यक्ति/फुली फंक्शनिंग पसन

रोजर्स ने पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति फुली फंक्शनिंग व्यक्ति के निम्न गुण बताए -

- ऐसे व्यक्ति अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति स्पष्ट शब्दों में करते है। वे इन अनुभूतियों का दमन नहीं करते।
- ऐसे व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षण का अर्थपूर्ण ढंग से करते है। इसे रोजर्स ने 'अस्तित्वात्मक रहन सहन' कहा। ऐसे व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षण में एक नया अनुभव प्राप्त करते है। ऐसे व्यक्तियों में आनुभाविक स्वतंत्रता होती है, कोई भी कार्य करने को स्वतंत्र होते है एवं प्रत्येक व्यवहार एवं उसके परिणाम के लिये स्वयं ही जिम्मेदार होते है। सामाजिक मानक द्वारा कम निर्देशित होते है।
- इनमें सृजनात्मकता का गुण होता है। अपना समय रचनात्मक गतिविधियों में व्यतीत करते है।

इस प्रकार रोजर्स के सिद्धान्त में वर्णित विचारों के विवेकपूर्ण एवं स्वीकारात्मक होने के कारण इसे स्वीकार किया गया है।

1.26 मिलर एवं डोलार्ड का व्यक्तित्व सिद्धान्त

सीखने के मूल तत्व

मिलर एवं डोलार्ड का मत है कि अधिकतर मानव व्यवहार अर्जित होते हैं अर्थात् व्यक्ति अपने जीवनकाल में सीखता है। सीखने को अधिगम भी कहा जाता है। प्रत्येक अधिगम में निम्न चार मूल तत्व शामिल होते ही है - प्रणोद, संकेत, अनुक्रिया, पुनर्बलन।

नोट

प्रणोद

प्रणोद से तात्पर्य किसी ऐसी शक्तिशाली उद्दीपन से है जो व्यक्ति को कोई क्रिया करने हेतु प्रेरित करता है। उद्दीपक जितना शक्तिशाली होगा, प्रणोद भी उतना ही शक्तिशाली बनेगा। जितना प्रणोद मजबूत होगा, प्राणी में उतना ही सतत व्यवहार की प्रवृति उत्पन्न होगी। कुछ प्रणोद जन्मजात होते है जैसे भूख, प्यास आदि। लेकिन कुछ प्रणोद व्यक्ति अपने जीवन काल में सीखता है जैसे धन के महत्त्व को व्यक्ति अपने जीवनकाल में ही जानता है। जन्म के समय एवं उसके बाद धन के बारे में उसमें समझ विकसित होने तक उसके लिये धन का कोई मूल्य नहीं होता।

संकेत

इसका तात्पर्य ऐसे उद्दीपक से होता है जो यह बतलाता है कि कब, कहां तथा कैसे व्यक्ति द्वारा अनुक्रियाएँ की जाती है। संकेत तीव्र या कमजोर हो सकता है। इसी प्रकार संकेत श्रव्य या चाक्षुष आदि प्रकार का भी हो सकता है। उदाहरण के लिये किसी लड़की को एक पुस्तक ढूंढने हेतु कहा जाए तो उसको शब्दिक या श्रव्य संकेत मिले जिसके आधार पर उसने किताब ढूंढने की अनुक्रिया की।

अनुक्रिया

यह प्रणोद एवं संकेत के परिणामस्वरूप व्यक्ति द्वारा किया गया व्यवहार है। जैसे निर्देश दिये जाने पर लड़की ने किताब को अलग छाटं कर उठाया | यह अनुक्रिया का उदाहरण है।

पुनर्बलन

यह ऐसी घटना है जो संकेत और अनुक्रिया के मध्य संबंध को मजबूत करता है जिससे इस अनुक्रिया की पुनरावृद्धि होने की संभावनाए बढ़ जाती हैं। मिलर एवं डोलार्ड के अनुसार अधिगम होने के लिये पुनर्बलन का होना आवश्यक है। पुनर्बलन को इस सिद्धान्त में प्रणोद में कमी के आधार पर परिभाषित किया गया। यदि किसी घटना से या किसी वस्तु के दिये जाने से प्राणी के प्रणोद में कमी हो जाती है तो यह पुनर्बलन का कार्य करती है, एवं अनुक्रिया को दोहराये जाने की संभावनाओं को बढ़ाती है।

अधिगम के अन्य संप्रत्यय

मिलर एवं डोलार्ड ने अपने सिद्धान्त में सीखने के कुछ अन्य संप्रत्ययों की भी व्याख्या की है। जब सीखी गई अनुक्रिया के लिये कुछ समय पुनर्बलन या पुरस्कार नहीं दिया जाए, तो सीखा गया व्यवहार या अनुक्रिया को करना बन्द कर दिया जाता है। इसे प्रयोगात्मक विलोपन कहा जाता है। इसके लिये सीखी गई अनुक्रिया या आदत जितनी मजबूत है, विलोपन उतना ही देर से होगा।

इसी प्रकार जब कोई विलोपित अनुक्रिया कुछ समय बाद अचानक बिना किसी पुनर्बलन के पुन: घटित हो जाती है तो इसे स्वतः पुर्नलाभ कहा जाता है। दो उद्दीपक में कुछ समानता होने पर एक उद्दीपक के प्रति किया गया व्यवहार दूसरे उद्दीपक के प्रति भी कर दिया जाता है, इसे सामान्यीकरण कहते है। इसी प्रकार दो उद्दीपकों में कुछ समानता होने पर भी व्यक्ति उनके बीच में असमानताओं का प्रत्यक्षीकरण कर उनमें विभेदन कर लेता है। इसे विभेदन कहते हैं।

मिलर एवं **डोलार्ड** ने अपने सिद्धान्त में संकेत द्वारा उत्पन्न अनुक्रिया का भी उदाहरण दिया है। उन्होंने कहा कि अचानक हमें किसी ग्रोसरी स्टोर को देखकर घर पर कुछ सामान खरीद कर ले जाना है, यह याद आ जाता है। इसे संकेत द्वारा उत्पन्न अनुक्रिया कहते हैं।

नोट

अनुकरण या इमीटेशन

मिलर एवं डोलार्ड ने अपने सिद्धान्त में अनुकरण या इमीटेशन की व्याख्या भी की। अनुकरण या इमीटेशन किसी दूसरे व्यक्ति के व्यवहार को देखकर उससे उस व्यवहार को सीखना एवं उसे स्वयं प्रदर्शित करना शामिल है।

इसके तीन प्रकार बताए गए -

- **समान व्यवहारः** इसमें दूसरे के समान व्यवहार करने की प्रवृति होती है। जैसे बच्चों में स्कूल में घण्टी के बजने पर कक्षा से बच्चों का बाहर निकलना इसका उदाहरण है।
- **नकल उतारने वाला व्यवहारः** इसमें व्यक्ति किसी व्यक्ति का निरीक्षण करता है, उसके व्यवहार को मन ही मन दोहराता हुआ उसके और अपने व्यवहार में किसी भी प्रकार की भिन्नता को दूर करता हुआ हबह करने का प्रयास करता है। यह व्यक्ति किसी उद्देश्य से सचेत रूप से करता है।
- **समेल आधारित व्यवहारः** इस प्रकार में छोटे भाई द्वारा बड़े भाई के व्यवहार को देखकर वैसा व्यवहार दोहराने की प्रवृत्ति शामिल है। अर्थात् दोनों व्यक्तियों में सामाजिक समानता होती है।

अर्न्तद्वन्द्व

मिलर एवं डोलार्ड के अनुसार यदि किसी व्यक्ति किसी एक ही समय में दो एक-दूसरे से अलग-अलग अनुक्रियाएँ एक साथ करना चाहता हो तो उसमें अर्न्तद्वन्द्व या संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस कारण व्यक्ति चिन्तात हो जाता, दुविधा में पड़ जाता है। मिलर एवं डोलार्ड ने अर्न्तद्वन्द्व के निम्न चार प्रकार बताए।

- **एप्रोच-एप्रोच अर्न्तद्वन्द्वः** इस परिस्थिति में व्यक्ति के सामने दो धनात्मक लक्ष्य होते है। व्यक्ति दोनों ही धनात्मक लक्ष्यों को एप्रोच करना या प्राप्त करना चाहता है। जैसे यदि किसी व्यक्ति को अपनी बहन की शादी में भी मौजदू रहना हो, साथ ही उसकी परीक्षा भी उसे उसी दिन देनी हो तो यह एप्रोच एप्रोच अर्न्तद्वन्द्व का उदाहरण होगा।
- **अवोइडेंस-अवोइडेंस अर्न्तद्वन्द्वः** इस परिस्थिति में व्यक्ति के सामने दो ऋणात्मक लक्ष्य होते है एवं व्यक्ति दोनों ही ऋणात्मक लक्ष्यों से बचना चाहता है क्योंकि दोनों ही उसके लिये हानिकारक होते है। इस परिस्थिति को इधर कुआ उधर खाई से समझा जा सकता है। उदाहरण के लिये कोई व्यक्ति आफिस जाने से डरता है क्योंकि उसे बॉस की डांट खानी पड़ेगी, लेकिन अगर नहीं गया तो उसके वेतन के पैसे काट लिये जाएंगे। यह अवोइडेंस अवोइडेंस अर्न्तद्वन्द्व का उदाहरण है।
- **एप्रोच-अवोइडेंस अर्न्तद्वन्द्वः** इस प्रकार के अर्न्तद्वन्द्व में व्यक्ति के सामने दो लक्ष्य नहीं होते, बल्कि एक ही लक्ष्य होता है। व्यक्ति इस तरह के लक्ष्य से बचना भी चाहता है, एवं इस लक्ष्य को प्राप्त भी करना चाहता है। इस प्रकार का अर्न्तद्वन्द्व को दूर करना अत्यन्त कठिन होता है।
- **डबल/मटीपल एप्रोच अवोइडेंस अर्न्तद्वन्द्वः** ऐसा तब होता है जब कभी व्यक्ति को दो या दो से अधिक धनात्मक व ऋणात्मक लक्ष्यों का एक साथ सामना करना पड़े।
- **मनोविश्लेषक पहलूः व्यक्ति की असामान्यताः** इस सिद्धान्त में मिलन एवं डोलार्ड ने कुछ मनोविश्लेषक संप्रत्ययों का भी उपयोग करते हए वर्णन किया है। इनके अनुसार जो प्रणोद, संकेत या अनुक्रियाएँ ऐसी होती है, जिनके बारे में व्यक्ति अवगत नहीं हो पाता है, वे अचेतन में चले जाते है। इसे दमन कहा जाता है। फ्रायड के समान ही मिलर एवं डोलार्ड भी मानते थे व्यक्ति के अचेतन में लैंगिक एवं आक्रामक अनुक्रिया रहती है। दमन की मात्रा साधारण से लेकर इतनी अधिक हो सकती है कि

नोट

व्यक्ति की स्मृति चली जाए। अर्थात् व्यक्ति एम्नेसिया या पूर्ण स्मृति लोप से ग्रसित हो जाए। दमन के परिणामस्वरूप व्यक्ति का चिन्तन एवं भावों की शब्दिक अभिव्यक्ति रूक जाती है, उससे व्यक्ति स्वयं की समस्याओं के बारे में तर्क संगत रूप से नहीं सोच पाता। इस प्रकार के मिलर एवं डोलार्ड ने मूढ़ व्यवहार या स्टुपिड व्यवहार नाम दिया।

मिलर एवं डोलार्ड के अनुसार व्यक्ति में असामान्य व्यवहार पूर्व में वर्णित विभिन्न प्रकार के अर्न्तद्वन्द्व, अचेतन में दमित किये गये विचारों एवं पुनर्बलन नहीं मिलने के परिणामस्वरूप विकसित होता है। इस प्रकार के व्यवहार का एक बड़ा कारण बहुत अधिक भय भी माना गया है। भय की स्थिति में व्यक्ति में उत्पन्न होता है, व्यक्ति अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता, इससे प्रणोद में कमी नहीं होती। प्रणोद के, इच्छाओं के पूर्ण न होने पर व्यक्ति में तनाव एवं चिड़चिड़ापन बना रहता है। इस परिस्थिति को मिलर एवं डोलार्ड ने दुर्दशा नाम दिया। इस परिस्थिति में व्यक्ति को नींद नहीं आती, उसे विभिन्न प्रकार के फोबिया या डर हो जाते है, बैचेनी रहती है, उसमें भावशून्यता आ जाती है। धीरे-धीरे व्यक्ति में विवेक एवं अविवेक में अन्तर करने की क्षमता समाप्त हो जाती है जिसे मूढ़ता या स्टूपिडिटी कहा गया।

मिलर एवं डोलार्ड असामान्य व्यवहार को दूर करने के लिये मनोचिकित्सा के महत्त्व को स्वीकार करते थे। उनके अनुसार मनोचिकित्सा में व्यक्ति को नये तरीके से समायोजन करने की क्षमता को सिखाया जाता है। यदि व्यक्ति समायोजन करना सीख लेता है तो यह असामान्य व्यवहार कम होने लगता है। इसके लिये उन्होंने फ्रायड द्वारा बताई गई विधियों को महत्त्वपूर्ण बताया।

मिलर एवं डोलार्ड के सिद्धान्त का मूल्यांकन

इस सिद्धान्त के अध्ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि इस सिद्धान्त के कुछ गुण है तो कुछ सीमाएं भी। इसके प्रमुख गुण निम्न है–

- यह सिद्धान्त व्यवहारवादी नियमों, मनोविश्लेषण तथा सामाजिक विज्ञान तीनों को समेकित करने वाला सिद्धान्त है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति की विस्तृत व्याख्या इसमें हुई है। अभी तक जितने व्यक्ति के सिद्धान्त पूर्व इकाईयों में पढ़े गए है, उनमें किसी ने बाहरी रूप से दिखने वाले स्पष्ट व्यवहार पर बल दिया है, जबकि किसी ने आन्तरिक कारकों, अचेतन, संज्ञानात्मक कारकों या अस्पष्ट व्यवहारों पर ही बल दिया है। जबकि यह सिद्धान्त ऐसा सिद्धान्त है जिसमें स्पष्ट एवं अस्पष्ट दोनों तरह के व्यवहारों पर बल देते हुए व्यक्ति का विश्लेषण किया है।
- इस सिद्धान्त के संप्रत्ययों को वैज्ञानिक तरीके से परिभाषित किया गया है। इस सिद्धान्त में सामाजिक सांकृतिक कारकों का भी व्यक्ति पर प्रभाव को स्वीकार किया गया है, ऐसे कारकों की उचित व्याख्या भी की गई है। इस सिद्धान्त में वर्णित अर्न्तद्वन्द्व के प्रकार काफी उपयोगी है।
- इस सिद्धान्त की कुछ आलोचनाएं भी की गई है। ऐसा कहा गया है कि यह एक अत्यन्त सरल सिद्धान्त है जिसमें मानव व्यवहार को छोटी छोटी इकाईयों में बांटकर अध्ययन पर बल डाला गया है। जबकि मनोविज्ञान में पूर्णतावाद या गेस्टाल्टवाद का समर्थन करने वालों को यह मान्य नहीं है। ऐसा माना जाता है कि प्राणी को कार्यात्मक रूप से एक समझा जाना चाहिये, न कि अलग-अलग इकाईयों के रूप में। ऐसा नहीं करने पर प्राणी के जटिल व्यवहार को सही समझना, उसके व्यवहार के बारे में पूर्वकथन करना असंभव है। कुछ आलोचकों का कहना है कि इस सिद्धान्त में व्यक्ति की व्याख्या करने में भाषा एवं चिन्तन प्रक्रियाओं के महत्त्व की उपेक्षा की गई है।

- इन सब आलोचनाओं के बाद भी मिलर एवं डोलार्ड का सिद्धान्त व्यक्ति के अर्न्तशास्त्रीय उपागम के रूप में काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

1.27 गॉर्डन आलपोर्ट : व्यक्ति का शीलगुण सिद्धांत

नोट

गॉर्डन आलपोर्ट का व्यक्ति सिद्धांत एक ऐसा सिद्धांत है जिसमें मानवतावादी एवं व्यक्तित्वादी दृष्टिकोणों की परख इस बात से होती है कि इसमें मानव व्यवहार के सभी पहलुओं जिसमें वर्धन की अन्त: शक्तियां अनुभवातीत्व तथा आत्मसिद्धि भी सम्मिलित है, के अध्ययन पर बल डाला गया है। व्यक्तित्वादी (personalistic) के रूप में आलपोर्ट को एक ग्रहणशील मनोवैज्ञानिक (eclectic psychologist) माना गया है क्योंकि वे इस सिद्धांत के प्रतिपादन में विभिन्न क्षेत्रों, जैसे- दर्शनशास्त्र समाजशास्त्र, साहित्य आदि से महत्त्वपूर्ण तथ्यों का चयन करके उसे विशेष ढंग से पिरोया है।

पूर्वकल्पनाएँ - आलपोर्ट के सिद्धांत की कुछ पूर्व कल्पनाएं निम्न है :-

I. मानव व्यवहार जैसे विवेकपूर्णता, अग्रलक्षता तथा विषमस्थिति पर सर्वाधिक बल जाता है।

II. मानव व्यवहार के कुछ पूर्वकल्पनाओं जैसे पूर्णतावाद एवं ज्ञेयता, स्वतंत्रता, आत्मनिष्ठता आदि पर बल डाला गया है।

आलपोर्ट के व्यक्ति सिद्धांत को निम्नांकित प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है–

(अ) व्यक्ति की संरचना (Structure of Personality)

(ब) व्यक्ति की गतिकी (Dynamics of Personality)

(स) व्यक्ति का वर्धन (Growth of Personality)

(द) शोध एवं मापन (Research & Assessment)

(अ) व्यक्तित्व की संरचना (Structure of Personality) – व्यक्तित्व की संरचना की व्याख्या तीन भागों में बांटकर की गयी है। व्यक्ति की परिभाषा, व्यक्ति शीलगुण तथा प्रोपियम। इनका वर्णन निम्न प्रकार से है –

(a) व्यक्तित्व की परिभाषा – " व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातारण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते है। "

(आलपोर्ट, 1937)

1961 में आलपोर्ट ने अपनी परिभाषा में थोड़ा संशोधन किया और अन्तिम पांच शब्द बदलकर इस प्रकार कर दिया- " unique adjustments of high environment" की जगह पर "characteristic behaviour and thought" को सम्मिलित किया गया। इस परिवर्तन का उद्देश्य यह बतलाना था कि व्यक्ति का व्यवहार मात्र अनुकूली (adaptivive) ही नहीं होता है बल्कि कथनीय (experssive) भी होता है। इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्ति वातावरण के साथ सिर्फ समायोजन (adjustment) या अनुकूलन ही नहीं करता है बल्कि उसके साथ इस तरह अंत:क्रिया (interaction) करता है कि उस वातावरण को भी व्यक्ति के साथ अनुकूलन या समायोजन योग्य होना पड़ता है।

ऑलपोर्ट की इस परिभाषा के मुख्य बिन्दुओं की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है–

नोट

(i) **मनोशारीरिक तंत्र** (Psychophysical System) – व्यक्ति एक ऐसा तंत्र (system) है जिसके मानसिक या मनोवैज्ञानिक (Psychological) तथा शारीरिक (physical) दोनों ही पक्ष होते है। यह तंत्र ऐसे तत्वों का एक गठन होता है जो आपस में अंत:क्रिया करते है। इस तंत्र के मुख्य तत्व शीलगुण (trait), संवेग (emotion), चरित्र (character), अभिप्रेरक (motive) आदि है जो सभी मानसिक गुण है परंतु इन सबका आधार शारीरिक (physical) अर्थात् व्यक्ति के ग्रन्थीय प्रक्रियाएं एवं तंत्रिकीय प्रक्रियाएं (neural processe) होती है। इसका स्पष्ट मतलब यह हुआ कि व्यक्ति न तो पूर्णत: मानसिक या मनोवैज्ञानिक क्रियाएँ (Psychological) होता है और न पूर्णत: शारीरिक ही। व्यक्ति इन दोनों तरह के पक्षों का मिश्रण है।

(ii) **गत्यात्मक संगठन** (Dynamic organization) – गत्यात्मक संगठन से तात्पर्य यह होता है कि मनोशारीरिक तंत्र (Psychophysical System) के भिन्न-भिन्न तत्व जैसे शीलगुण (trait), आदत (habit) आदि एक-दूसरे से इस तरह संबंधित होकर संगिठत होते है कि उन्हें एक-दूसरे से पूर्णत: अलग नहीं किया जा सकता है। इस संगठन में परिवर्तन (change) संभव है। यही कारण है कि इसे एक गत्यात्मक संगठन (Dynamic organization) कहा गया है इस तरह के संगठन में विसंगठन (disorganization) भी सम्मिलित होता है जिसके सहारे असामान्य व्यवहार की व्याख्या होती है। दूसरे शब्दों म, यदि किसी व्यक्ति के शीलगुणों के संगठन में इस ढंग का परिवर्तन आ जाता है कि उसका व्यवहार विसंगठित(disorganization) हो जाता है जिसके फलस्वरूप वह असामान्य व्यवहार अधिक करने लग जाता है तो इसे एक गत्यात्मक संगठन की श्रेणी में ही रखा जाता है।

(iii) **निर्धारण** (Determine) – इस परिभाषा में 'निर्धारण' (Determine) का प्रयोग विशेष अर्थ में किया गया है।। इससे ऑलपोर्ट का तात्पर्य यह है कि ''व्यक्ति कुछ है तथा कुछ करता है'' (''Personality is something and does something.'' Allport, 1961, p.29)। इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्ति के सभी पहलू व्यक्ति के व्यवहारों एवं विचारों का उत्तेजित (ctivate) करते है तथा उसे निर्देषित (direct) करते है।

(iv) **विशिष्ट व्यवहार एवं चिंतन** (Characteristic behaviour and thought) – इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक चीज जिसे व्यक्ति करता है या सोचता है, वह उस व्यक्ति की एक विशिष्टता होती है। इस तरह से प्रत्येक व्यक्ति अनूठा (unique) है तथा वह किसी दूसरे से समान (similar) नहीं होता है।

(b) **व्यक्ति शीलगुण -** आलपोर्ट ने शीलगुण को उद्दीपकों के विभिन्न प्रकारों के प्रति समान ढंग से अनुक्रिया करने का झुकाव या पूर्ववर्ती के रूप में परिभाषित किया है। अपने वातावरण के उद्दीपक पहलुओं की और संगत एवं सहनीय ढंग से अनुक्रिया करने के तरीकों को शीलगुण कहा जाता है।आलपोर्ट की इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि शीलगुण से उनका तात्पर्य व्यवहारों में संगठता (consistency) से है। आलपोर्ट (Allport, 1937) ने शीलगुण के कुछि वशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है जिसमें निम्नांकित प्रमुख है।

नोट

(i) व्यक्ति शीलगुण सिर्फ सैद्धान्तिक संप्रत्यय (theoretical construct) नहीं होते है बल्कि वे वास्तविक (real) होते है और व्यक्ति के भीतर पाए जाते है।

(ii) शीलगुण से व्यक्ति का व्यवहार निर्देषित होता है तथा उसके कारण व्यक्ति एक खास तरह का व्यवहार कर सकने में सफल होता है।

(iii) शीलगुण को आनुभाविक रूप से (enpirically) दिखलाया जा सकता है। यह बात अवश्य है कि शीलगुण को देखा तो नहीं जा सकता है परंतु उसके अस्तित्व की जांच की जा सकती है। ऐसा करने के लिए व्यक्ति के व्यवहारों का प्रक्षेपण एक खास समय तक किया जाता है।

(iv) शीलगुण की एक विशेषता यह है कि वे एक-दूसरे से पूर्णत: अलग नहीं होते है बल्कि वे कुछ हद तक परस्पर व्यापी (overlap) होते है जैसे, आक्रामकता (agression) तथा विशिता (hostility) दो अलग-अलग शीलगुण है परंतु वे सभी एक-दूसरे से काफी संबंधित एवं परस्पर-व्यापी है।

(v) शीलगुण परिस्थिति के साथ परिवर्तित (very) होते है। वे एक परिस्थिति में उत्पन्न होते है तो दूसरी परिस्थिति में उत्पन्न नहीं होते है।

आलपोर्ट ने शीलगुणों को दो मुख्य भागों में बांटा है –

(a) सामान्य शीलगुण

(b) वैव्यक्तित्व शीलगुण – कॉर्डिनल शीलगुण, केन्द्रीय शीलगुण, गौण शीलगुण इन सभी की व्याख्या इकाई - 8 में की जा चुकी है। बाद में ऑलपोर्ट ने अपने शब्दावली में परिवर्तन किया और सामान्य शीलगुण (common trait) के लिए सिर्फ शीलगुण (trait) का प्रयोग किया तथा वैयक्तिक शीलगुण (individual trait) के लिए वैयक्तिक पूर्ववृत्ति (personal disposition) का प्रयोग किया। ऑलपोर्ट (Allport) ने वैयक्तिक पूर्ववृति (personal disposition) को निम्नांकित तीनों भागों में बांटा है-

(i) कार्डिनल पूर्ववृत्ति या शीलगुण **(Cardinal predisposition or trait)**

(ii) केन्द्रीय पूर्ववृत्ति या शीलगुण **(Central predisposition or trait)**

(iii) गौण पूर्ववृत्ति या शीलगुण (Secondary predisposition or trait)

इन तीनों का वर्णन निम्नांकित है-

(i) कार्डिनल पूर्ववृत्ति या शीलगुण (Cardinal predisposition or trait) – कार्डिनल पूर्ववृत्ति या शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुण से होता है जो व्यक्ति में इतना अधिक व्यापक (pervasive) होता है कि वह प्रत्येक व्यवहार इसी से प्रभावित होकर करता पाया जाता है। अधिकतर लोगों में कार्डिनल शीलगुण नहीं होते है परंतु जिनमें होते है वे उस शीलगुण के लिए विश्वविख्यात होते है। जैसे, शान्ति एवं अहिंसा का शीलगुण महात्मा गांधी का एक कार्डिनल शीलगुण था। आक्रामकता (Aggresivness) हिटलर एवं नेपोलियन का एक कार्डिनल शीलगुण था जिससे वे विश्वविख्यात थे।

(ii) केन्द्रीय पूर्ववृत्ति या शीलगुण (Central predisposition or trait) – केन्द्रीय शीलगुण वैसे शीलगुणों को कहा जाता है जो व्यापक (pervasive) तो नहीं होते है परंतु महत्त्वपूर्ण

नोट

जरूर होते है जिन पर व्यक्ति अपनी जिंदगी में अधिक प्रकाश डालता है। ऐसे शीलगुण प्रत्येक व्यक्ति में पाया जाता है तथा इसकी संख्या 5 से 10 होती है। ऐसे शीलगुणों की अभिव्यक्ति के बारे में कुछ अनशुंसा (recommendation) करते समय प्राय: किया जाता है। इन शीलगुणों की अभिव्यक्तित्व व्यक्ति प्राय: अपने व्यवहारों में करता है। बहिर्गमन (outgoing), भावुक (sentimental), सचेत (attentive), सामाजिक, आक्रामकता (agression) आदि कुछ ऐसे ही शीलगुणों के उदाहरण है।

(iii) **गौण पूर्ववृत्ति या शीलगुण** (Secondary predisposition or trait) – इस श्रेणी में उन शीलगुणों को रखा जाता है जो कम सुस्पष्ट (less conspicuous), कम संगठित (less prganized), कम संगत (less consistent) होते है और इसीलिए व्यक्ति की संरचना के लिए कम महत्त्वपूर्ण होते है। जैसे, विशेष हेयर-स्टाइल रखना, खास प्रकार के भोजन करना, विशेष मनोवृद्धि (specific attitude) आदि गौण पूर्ववर्ती (Secondary predisposition) के उदाहरण है जिनके आधार पर व्यक्ति की संरचना (structure) के बारे में कोई ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता है।

(c) **प्रोपियम** – प्रोपियम एक लैटिन शब्द 'Proprius' से बना है जिसका अर्थ 'अपना' होता है। आलपोर्ट के अनुसार प्रोपियम से तात्पर्य व्यक्ति के उन सभी पहलुओं से होता है जिससे उसमें आन्तरिक एकता तथा संगतता आती है। प्रोपियम मानव प्रकृति के धनात्मक, सर्जनाक, वर्धन उन्मुखी तथा गतिशीलता के गुणों को दर्शाता है। आलपोर्ट ने प्रोप्रियम के स्वरूप एवं विकास का वर्णन सात अवस्थाओं (stages) के रूप में किया है। ये सात अवस्थाएँ का विकास पूर्ण हो जाता है। प्रथम तीन अवस्था अर्थात् शारीरिक-आत्मन् (bodily self), आत्म-पहचान (Salfidentity) तथा आत्म-विस्तार (salf-esteem) का विकास बच्चों के प्रथम तीन वर्ष की आयु में होता है। बाद की दो अवस्थाओं अर्थात् आत्म-विचार (salf-extension) तथा आत्म-प्रतिमा (salf-image) 4 साल से 6 साल की आयु में विकसित होती है तथा 'युक्तिसंगत समायोजन' (rational coping) की अवस्था का विकास 6 साल से 12 साल की आयु में होती है तथा 'उपयुक्त प्रयास' (propriate striving) की अवस्था किशोरावस्था में विकसित होती है। प्रोप्रियम में ये सभी सात पहलुओं का संगम पाया जाता है। प्रोपियम के स्वरूप तथा विकास की सात अवस्थाएं निम्न है –

(a) **शारीरिक आत्मन** (Bodily Self) – इस अवस्था में बालक अपने अस्तित्व से अवगत होता है और अपने शरीर को वातावरण के अन्य वस्तुओं से भिन्न समझता है।

(b) **आत्म पहचान** (Self Identity) – इस अवस्था में बच्चे यह अनुभवन करने लगते है कि उनके भीतर कई तरह के परिवर्तन के बावजूद उनकी एक अलग पहचान बनी होती है।

(c) **आत्म सम्मान** (Self Esteem) – इस अवस्था में बच्चे अपने उपलब्धियों पर गर्व करने लगते है।

(d) **आत्म विस्तार** (Self Extension) – इस अवस्था में बच्चे उन वस्तुओं व लोगों को पहचानने लगते हैं जो उनके मतलब के होते है।

(e) **आत्म प्रतिमा** (Self Imagc) – यहां बच्चे अपने एवं अपने व्यवहार के बारे में एक वास्तविक एवं आदर्श प्रतिमा विकसित कर लेते है।

(f) **युक्तिसंगत समायोजन के रूप में आत्मन्** (Self a rational coper) – इस अवस्था में बच्चे दिन प्रतिदिन की समस्याओंके समाधान में त एवं विवेक का प्रयोग करना सीख लेते है।

(g) **उपयुक्त प्रयास** – यह अवस्था किशोरावस्था में विकसित होती हैऔर इसमें किशोर दीर्घकालीन योजना तथा लक्ष्य का निर्माण प्रारम्भ कर देते है।

नोट

(ब) **व्यक्ति की गतिकी** (Dynamics of Personality) – व्यक्तित्व की गतिकी की व्याख्या आलपोर्ट ने कार्यात्मक स्वतंत्रता तथा चेतन एवं अचेतन अभिप्रेरण के तहत किया है। इन दोनों संप्रत्ययों की व्याख्या इस प्रकार है –

(i) **कार्यात्मक स्वायत्ता** (Functional Autonomy) – कार्यात्मक स्वायत्ता या सप्रत्यय एक प्रेरणात्मक सप्रत्यय है। कार्यात्मक स्वायत्ता का सप्रत्यय यह बतलाता है कि एक सामान्य व्यक्ति जिन साधन से पहले किसी लक्ष्य की प्राप्ति करता था वह अब स्वयं लक्ष्य हो जाता है। उदाहरण के लिए एक उत्तम वृक्षवर्धन के लिए बीज पर आधारित होता है परंतु जब वह बडा हो जाता है तो उसका बीज से कोई संबंध नहीं रहता वह स्वयं आत्म निर्धारक हो जाता है।

कार्यात्मक स्वायत्ता के दो स्तर है -

(a) **संतनन कार्यात्मक स्वायत्ता** (Perseverative functional autonomy) – यह एक साधारण संप्रत्यय है इसका संबंध कुछ व्यवहार जैसे व्यसन तथा पुनरावृद्धि होने वाली दैहिक क्रियाओं से होता है।

(b) **उपयुक्त कार्यात्मक स्वायत्ता** (Propriate functional autonomy) – इसे आलपोर्ट ने अधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया है। कार्यात्मक स्वायत्ता से तात्पर्य व्यक्ति के अर्जित अभिरुचि, मूल्य, मनोवृद्धि, उद्देश्य आदि से होता है। उपयुक्त कार्यात्मक स्वायत्ता का नियंत्रण तीन नियमों से होता है–

(क) ऊर्जा स्तर को संगिठत करने का नियम

(ख) दक्षता एवं निपुणता का नियम

(ग) उपयुक्त पैटर्निंग का नियम

इन तीनों का वर्णन निम्नांकित है –

(a) **ऊर्जा स्तर को संगिठत करने का नियम** (principle of organizing the energy level) – यद्यपि यह नियम यह नहीं बतलाता है कि एक अभिप्रेरक किस प्रकार से विकसित होता है, फिर भी यह नियम इस बात पर बल डालता है कि व्यक्ति अपने बचे हुए ऊर्जा (energy) शक्ति का प्रयोग नये-नये अच्छे व्यवहारों को करने में करता है। ताकि वह इस बची हुई शक्ति का गलत उपयोग अर्थात् ध्वंसात्मक एवं हानिकारक कार्यों में नहीं कर सके। जैसे, जब व्यक्ति नौकरी से अवकाश प्राप्त करता है तो सामान काम को खम करने के बाद भी उसके पास ऊर्जा (energy) एवं समय काफी बच जाता है जिसका वह उपयोग ने अभिप्रेरकों एवं अभिरुचियों की प्राप्ति में करता है।

(b) **दक्षता एवं निपुणता का नियम** (principle of mastery and competence) – यह नियम बतलाता है कि व्यक्ति अपने अभिप्रेरकों की संतुष्टि उच्च स्तर पर करना चाहता

नोट

है। एक सामान्य वयस्क अपनी उपलब्धियों से ही संतुष्ट नहीं हो जाता है बल्कि वह अपनी दक्षता एवं निपुणता को और आगे बढ़ाने की और प्रेरित करता है।

(c) **उपयुक्त पैटिर्नंग का नियम** (principle of propriate patterning) – यह नियम यह बतलाता है कि जितने भी उपयुक्त अभिप्रेरक (propriate motives) होते है, वे सभी एक-दूसरे से स्वतंत्र नहीं होते है बल्कि वे आत्मन् (salf) की संरचना पर आधारित होते हैं जिससे वे ठीक ढंग से जुड़े होते हैं। व्यक्ति अपना प्रत्यक्षाणात्मक (perceptual) तथा संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं (cognitive processes) को इसी आत्मन् (self) की और संगिठत करता है। अत: संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यह नियम व्यक्ति की संगतता (consistency) तथा संगठन (integration) की प्राप्ति की और किये जाने वाले प्रयासोंपर बल डालता है।

ऑलपोर्ट (Allport) ने यह स्पष्ट किया कि सभी तरह के व्यवहार या अभिप्रेरक (motive) की व्याख्या कार्यात्मक स्वायत्तता (functional autonomy) के सिद्धान्त द्वारा नहीं की जा सकती है। उन्होंने निम्नांकित आठ ऐसे व्यवहारों की सूची प्रदान की है जिनकी व्याख्या कार्यात्मक स्वायत्तता के नियम द्वारा संभव नहीं हो पाता है-

(i) जैविक अर्न्तनोद (biological drives) से उत्पन्न होने वाले व्यवहार, जैसे-भोजन करना, पानी पीना, सोना, सांस लेना आदि।

(ii) सहज क्रिया (reflex action) जैसे-पलक गिराना, पाचन क्रिया, जानुक्षेप (kneejerk) आदि।

(iii) शरीर गठनात्मक तत्व (constitutional element) जैसे- शारीरिक बनावत का खास प्रकार।

(iv) आदत (habits)- कुछ आदतें तो कार्यात्मक रूप से स्वयत्त (autonomous) होती है परन्तु कुछ ऐसे होते है, जिनका कोई प्रेरणात्मक मूल्य (motivational values) नहीं होता है।

(v) किसी पुनर्बलन (reinforcenent) के अभाव में छोड़ दिया गया व्यवहार नहीं किया जाने वाला व्यवहार।

(vi) वैसे व्यवहार जिसे वयस्कावस्था में भी व्यक्ति अपने बाल्यावस्था के द्वंद्व (conflict) को दिखलाने के लिए करता है।

(vii) बाल्यावस्था के दमित इच्छाओं से संबंधित व्यवहार।

(viii) उदीकरण (sublimation) अर्थात् एक अभिप्रेरक जब दूसरे अभिप्रेरक के रूप में अभिव्यक्त होता है।

(ix) **चेतन एवं अचेतन अभिप्रेरण** (Conscious & Unconscious Motivation) – ऑलपोट का मत है कि अधिकतर अभिप्रेरण जिसका संबंध चेतन मस्तिष्क से होता है, वास्तव में अचेतन में छिपी इ छाओंसे प्रभावित होता है। एक असामान्य व्यक्ति भले ही अचेतन द्वारा नियन्त्रित होता है परंतु एक परिपक्व व्यक्ति चेतन द्वारा ही नियन्त्रित होता है।

(स) **व्यक्ति का वर्धन** (Growth of Peresonality) – आलपोर्ट के अनुसार सामान्य विकास के अन्तिम चरण में व्यक्ति एक परिपक्व एवं मानसिक रूप से स्वरूप व्यक्ति विकसित करता है। इन्होंने अपने सिद्धान्त में व्यक्ति विकास की व्याख्या के लिए कोई निश्चित कदम (steps) का वर्णन तो नहीं किया है (प्रोप्रियम के विकास के साथ कदम या चरण को छोड़कर) परन्तु यह स्पष्ट कर दिया है

नोट

कि बाल्यावस्था के व्यक्ति (childhood personality) तथा वयस्कावस्था के व्यक्ति (adulthood personality) में कार्यात्मक निरंतरता (functional continuity) न होकर एक तरह का विभाजन (destructive), स्वार्थपरक, आश्रित आदि बतलाया है। बच्चे हमेशा अपने अर्न्तनोद (drives), तनाव एवं सहजक्रियाओंके अनुरूप इस ढंग से व्यवहार करते है कि उन्हें अधिक-से-अधिक आनन्द प्राप्त हो सके तथा कम-से-कम दुख या तकलीफ हो सके। इस अवस्था की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बच्चा अपनी माँ से पर्याप्त सुरक्षा एवं स्नेह की प्राप्ति करना चाहता है और यदि वह ऐसा करने में सफल हो जाता है, तो उसमें धनात्मक मनोवैज्ञानिक विकास (positive psychological growth) होता है। दूसरी तरफ यदि बच्चों को माँ से पर्याप्त स्नेह एवं सुरक्षा नहीं मिल पाता है, तो उस परिस्थिति में एक-दूसरे तरह का व्यक्ति विकसित हो जाता है और ऐसे बच्चों में असुरक्षा, आक्रमकता, ईर्ष्या, आत्म-केन्द्रिता (salf-centredness) आदि अधिक हो जाते है। इस तरह के व्यक्ति को अपरिपक्व व्यक्ति (immatured personality) कहा जाता है और ऐसे व्यक्ति सचमुच में बाल्यावस्था के व्यक्ति (childhood personality) का मात्र एक कार्यात्मक विस्तार (functional extension) माना जाता है। इन दोनों तरह के व्यक्ति में स्पष्टि विभाजन न होकर एक तरह का कार्यात्मक निरंतरता (functional continuity) बनी रहती है। ऑलपोर्ट ने अपने सिद्धान्त में यह बतलाया है कि सामान्य विकास (normal development) के अन्तिम चरण में व्यक्ति एक परिपक्व एवं मानसिक रूप से स्वस्थ (mentally helthy) व्यक्ति विकसित करता है।

इस तरह के व्यक्ति की 6 कसौटियां है -

i. आत्मन के ज्ञान का विस्तार
ii. दूसरों के साथ सौहार्द्रपूर्ण संबंध
iii. संवेगात्मक सुरक्षा
iv. वास्तविक प्रत्यक्षण, कौशलों का विकास
v. आत्म वस्तुनिष्ठता
vi. जिंदगी की एक संतोषजनक नीति

(द) शोध एवं मापन (Research & Assessment) – आलपोर्ट ने व्यक्ति शोध के लिए नियमान्वेषी दृष्टिकोण की तुलना में भावमूलक दृष्टिकोण को अधिक महत्त्वपूर्ण बताया है। व्यक्ति पर एक महत्त्वपूर्ण शोध अभिव्यक्ति व्यवहार पर किया गया है। व्यक्ति मापन के लिए विषय विश्लेषण, परीक्षण एवं मापनी, गहन, विश्लेषण, रेटिंग्स, व्यक्तिगत लेखन, शारीरिक एवं शरीर गठनात्मक निदान आदि प्रमुख विधियां है।

आलपोर्ट के सिद्धांत का मूल्यांकन – आलपोर्ट का व्यक्ति सिद्धांत उत्तेजनपूर्ण तथा व्याख्यात्मक दोनों ही है। इनका सिद्धांत स्पष्ट चिंतन एवं यथार्थता का एक उत्तम स्रोत है। व्यक्ति के क्षेत्र में आलपोर्ट का सबसे महत्त्वपूर्ण शोध अभिव्यक्त व्यवहार (expressive behaviour) पर किया गया है। यह वह व्यवहार होता है जिससे व्यक्ति की अभिव्यक्ति होती है, ऐसा व्यवहार अधिक स्वाभाविक (spontaneous) होता है, इससे व्यक्ति के मूल पहलुओं की अभिव्यक्ति होती है, यह सामान्यत: परिवर्तित नहीं होता है, इसका कोई विशिष्टउद्देश्य (specific purpose) नहीं होता है और इसे व्यक्ति बिना किसी तरह के अपनी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती है। वर्ग में शिक्षक पढ़ाते

नोट

समय विषय पर सुनियोजित ढंग से व्याख्यान देने के अलावा विशेष हाव-भाव, आनन अभिव्यक्ति (facial expression) तथा गति (movement) आदि करते हैं जो ऑलपोर्ट (Allport) के अनुसार अभिव्यक्त व्यवहार (expressive behaviour) के उदाहरण है और इसका विश्लेषण कर शिक्षक के कुछ व्यक्ति शीलगुणों (personality traits) के बारे में अच्छे ढंग से जाना जाता है। आलपोर्ट तथा कैनट्रील (Allport & Cantril, 1934) तथा ऐस्ट्स (Estes, 1938) ने एक अध्ययन करके प्रयोज्यों के आनन अभिव्यक्ति, बोलने का ढंग तथा हाव-भाव के आधार पर उनके कुछ शीलगुण जैसे- अन्तर्मुखता-वहिमर्तुखता (introversion exetroversion) के अस्तित्व के बारे में अंदाज लगाने में सफल हो पाये है।

जहाँ तक व्यक्ति मापक (personality measurement) का प्रश्न है, आलपोर्ट (Allport) ने इसके लिए कई विधियों का प्रतिपादन किया है। इन विधियों में विषय विश्लेषण (content analysis), परीक्षण (tests) एवं मापनी (scale), गहन विश्लेषण (depth analysis), रेटिंस (ratings), व्यक्तिगत लेखन (personal document), शारीरिक एवं शरीरगठनात्मक निदान (physiological and constitutional diagnosis) आदि प्रमुख हैं। आलपोर्ट ने अन्य दो सहकर्मियों अर्थात् वर्णन एवं लिण्डजे (Vernon & Lindzey) के साथ मिलकर 1960 में व्यक्ति मूल्य (calues) के मापने का भी एक परीक्षण बनाया है जिसका नाम "आलपोर्ट- वर्णन -लिण्डजे टडी ऑफ वैल्यू (Allport-Vernon-lindzey Study of Values) रखा गया है जिसके माध्यम से स्प्रैंगर (Spranger) द्वारा बतलाये गए 6 प्रमुख मानवीय मूल्यों का मापन सफलतापूर्वक होता है। वे 6 मूल्य है– सैद्धान्तिक मूल्य (theoretical value), आर्थिक मूल्य (economic value), सौन्दर्यपरक मूल्य (aesthetic value), सामाजिक मूल्य (social-value), राजनैतिक मूल्य (political value) तथा धार्मिक मूल्य (religious value)।

आलपोर्ट के सिद्धान्त का मूल्यांकन (Evaluation of Allport's theory)

आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त के कुछ गुण (merits) एवं कुछ परसीमाएँ (limitations) भी है। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित है-

1. आलपोर्ट (Allport) ने अपना व्यक्तित्व सिद्धान्त "शैक्षिक परिस्थतियों (academic setting) में न कि मनोविश्लेषणात्मक परिस्थिति (psychoanalytic setting) में विकसित किया था। अत: इस सिद्धान्त को शिक्षण मनोवैज्ञानिकों (academic psychologists) द्वारा तुलनात्मक रूप से अधिक मान्यता दी गई है।
2. आलपोर्ट के सिद्धान्त का एक विशेष गुण यह बतलाया गया है कि इसमें व्यक्ति के वर्तमान एवं भविष्य को उसके भूत (past) की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण समझा गया है। व्यक्ति के प्रेरणा (motivation) एवं व्यवहार को समझने के लिए आलपोर्ट (Allport) ने उसके वर्तमान एवं भविष्य पर जो बल डाला है, वह अपने आप में अद्वितीय है। इससे व्यक्ति की संरचना को वैज्ञानिक ढंग से समझने में काफी मदद मिलती है।
3. आलपोर्ट को व्यक्ति शोध (personality research) के प्रति जो भावमूलक दृष्टिकोण (idiographic approach) है वह काफी सराहनीय है क्योंकि इससे व्यक्ति विशेष के व्यक्ति का विस्तृत विश्लेषण करने तथा उसे समझने में विशेष मदद मिलती है।

नोट

4. आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त में व्यक्ति की संरचना की व्याख्या शीलगुणों के रूप में की गई है। इन्होंने शीलगुणों के विस्तृत प्रकार बतलाकर व्यक्ति की संरचना का जो वर्णन प्रस्तुत किया है, उसे आधुनिक मनोवैज्ञानिक द्वारा एक महत्त्वपूर्ण योगदान माना गया है। इन गुणों के बावजूद आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त की कुछ आलोचनाएँ (criticisms) हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख है–

   (a) फिस्ट (Feist, 1985) का मत है कि आलपोर्ट का व्यक्तित्व सिद्धान्त दर्शनशास्त्रीय अनुमान (philosophical speculation) एवं सामान्य बोध (common sence) पर आधारित है न कि वैज्ञानिक अनुसंधान पर। आलपोर्ट ने अपने सिद्धान्त के आधार पर बनाये गये प्राक्कल्पनाओं (hypotheses) की जाँच करने के लिए कोई महत्त्वपूर्ण शोध नहीं किये है। अत: उनके सिद्धान्त के तथ्यों एवं मान्यताओं की वैधता (calidity) अधिक नहीं बतलायी गयी है।

   (b) मनोविश्लेषकों (psychoanalysts) ने आलपोर्ट के कार्यात्मक स्वायत्तता (functional autonomy) के संप्रत्यय पर आपत्ति जतायी है और कहा है कि इसमें व्यक्ति की गत अनुभूतियों को नजरअंदाज कर वर्तमान एवं भविष्य पर अधिक बल डाला गया है। इस तरह के वर्णन से व्यक्ति के स्वरूप को सही-सही समझना कठिन है।

   (c) कुछ आलोचकों का मत है कि आलपोर्ट के सिद्धान्त द्वारा मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति (psychological healthy person) के कार्यात्मक स्वयत्त अभिप्रेरकों (functionally autonomous motives) का तो वर्णन हो जाता है परन्तु बच्चों, मनोविकृत (psychotic) तथा तंत्रिकातापी (neurotic) व्यक्तियों के अभिप्रेरकों (motives) की व्याख्या आलपोर्ट के सिद्धान्त में नहीं होती है। ऐसे व्यक्ति क्यों कोई व्यवहार करते हैं, इसका उत्तर हमें आलपोर्ट के सिद्धान्त में नहीं मिलता है।

   (d) कार्यात्मक स्वायत्तता (functional autonomy) के बारे में एक आलोचना यह भी की जाती है कि आलपोर्ट ने इसमें यह नहीं बतलाया है कि किस तरह से मौलिक अभिप्रेरक (original motive) एक स्वायत्त अभिप्रेरक (autonomous motive) में बदल जाता है। उदाहरणस्वरूप, किसी प्रक्रिया द्वारा धन कमाने के लिए कड़ी मेहनत करने का अभिप्रेरक बाद में जब व्यक्ति धनी हो भी जाता है, तो वह अपने आप कड़ी मेहनत करने का एक स्वतंत्र अभिप्रेरक के रूप में किस तरह बदल जाता है। चूँकि परिवर्तन के इस क्रम (mechanism) को आलपोर्ट ने नहीं बतलाया है, अत: आलोचकों का मत है कि यह पूर्व कथन (prediction) करना मुश्किल है कि बाल्यावस्था का कौन-सा अभिप्रेरक वयस्कावस्था में एक स्वतंत्र अभिप्रेरक (autonomous motive) के रूप में परिणत हो जाएगा?

   (e) आलपोर्ट ने व्यक्तित्व शोध (personality research) के प्रति जो भावमूलक दृष्टिकोण (idiographic approach) अपनाया है, उसकी भी आलोचना आधुनिक मनोवैज्ञानिक द्वारा की गयी है। इन मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्ति के अध्ययन का सही दृष्टिकोण भावमूलक शोध न होकर नियमान्वेशी शोध (nomothetic research) है जिसमें कई व्यक्तियों को (न कि किसी एक व्यक्ति को) एक साथ अध्ययन करके उसका सांख्यिकीय विलेषण करके सामूहिक रूप से इसकी व्याख्या की जाती है। इस आलोचना के मुख्य समर्थक सूल्ज (Schultz, 1990) है।

नोट

(f) आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि आलपोर्ट ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में सिर्फ स्वस्थ वयस्क (healthy adult) का अध्ययन किया है, तंत्रिकातापी (neurotic) तथा मनोविकृत व्यक्तियों को अध्ययन नहीं किया है। अत: इसकी उपयोगिता काफी सीमित है।

(g) कुछ आलोचकों जैसे फिट्स (Fitts, 1990) तथा फिशर (Fisher, 1989) का मत है कि आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त के कुछ संप्रत्ययों (concepts) का अध्ययन प्रयोगात्मक विधि द्वारा करना संभव नहीं है। जैसे, आलपोर्ट के एक अतिमहत्त्वपूर्ण संप्रत्यय अर्थात् कार्यात्मक स्वायत्तता (functional autonomy) को प्रयोगशाला की परिस्थिति में किस तरह अध्ययन किया जा सकता है? इसे प्रयोगकर्ता प्रयोगशाला में किस तरह जोड़-तोड़ (manipulate) कर सकता है ताकि इसका प्रभाव अन्य चरों पर देखा जा सके? इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर आलपोर्ट के सिद्धान्त में नहीं मिल पाता है।

(h) कुछ आलोचकों जैसे सुल्ज (Schultz, 1990) ने आलपोर्ट के इस दावे को अस्वीकार कर दिया है कि बच्चा तथा वयस्क एवं सामान्य तथा असामान्य के व्यक्ति में अनिरंतरता (discontinuity) होती है। सुल्ज का मत है कि बच्चों पर तथा असामान्य व्यक्तियों पर कई ऐसे शोध किये गए है जिनमें क्रमश: वयस्क एवं सामान्य व्यक्तियों को समझने में काफी मदद मिली है।

(i) आलोचकों का यह भी मत है कि आलपोर्ट सिद्धान्त में व्यक्ति पर सामाजिक कारकों के पड़ने वाले प्रभावों की उपेक्षा की गयी है। इन आलोचनाओं के बावजूद आलपोर्ट का व्यक्तित्व सिद्धान्त उत्तेजनपूर्ण (stimulating) तथा व्याख्यात्मक (illuminating) दोनों ही है। इसका सिद्धान्त स्पष्ट चिन्तन एवं यथार्थता (precision) का एक ऐसा मानक (standard) प्रदान करता है जो भविष्य के मनोवैज्ञानिकों के लिए प्रेरणा उत्तम होते हैं।

1.28 टाइप ए तथा बी व्यक्ति सिद्धांत

(अ) परिभाषा – जेनिकन **(Jenkins, 1971)** ने "प्रकार A "व्यक्ति का वर्णन निम्न प्रकार किया है – " यह एक जीवन शैली या व्यवहार है जिसकी विशेषता अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, उपलब्धि के लिए अधिकतम संघर्ष, गुस्सा अधीरता, अत्यधिक सक्रियता, चेहरे पर तनाव, समय तथा जिम्मेदारियों की चुनौतियों का तनाव होती है। इस प्रकार के व्यक्ति अपने कार्य के लिए इतना गहरा तक समर्पित है कि उनके जीवन के अन्य पक्ष नकारे जाते है।

फ्रिडमैन तथा **रोमसेन (1974)** के अनुसार 'ए प्रकार' व्यवहार प्रतिरूप को क्रिया संवेग जटिल के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो उस व्यक्ति में देखा जा सकता है जो आक्रामक रूप से अधिक-से-अधिक कम समय में उपलब्ध करने के लगातार संघर्ष में लगा हो।

डेविड ग्लास (1977) ने एक अन्य गुण प्रकार व व्यवहार का बताया है। वे प्रकार ए व्यवहार को तनावपूर्ण स्थितियों से समायोजन की शैली के रूप में देखते है। प्रकार ए व्यक्ति स्थितियों पर नियंत्रण खोने से अधिक भयभीत हो सकते है और स्थिति पर नियंत्रण के लिए अधिकाधिक प्रयास करते है नियंत्रण बनाये रखने की आवश्यकता उन्हें कई अनियन्त्रित स्थितियों में असहाय, कुण्ठा एवं अवसाद के अनुभव बारम्बारता से देती है।

(ब) टाइप ए व बी के गुण – Chesney, Frautsche and Rosenman, 1985, Friedman & Rosenman 1974 ने प्रकार व्यवहार F के प्रमुख गुण इस प्रकार बताए है –

नोट

i. **प्रतिस्पर्धात्मक उपलब्धि उन्मुखता** (Competitive Achivement Orientation) – प्रकार ए के व्यक्ति अत्यधिक प्रतिस्पर्धामक, आकांक्षी, स्वाआलोचक तथा पूर्णतावादी होते हैं। वे लक्ष्यो के लिए प्रयासों अथवा उपलब्धि से बिना आनन्द की भावना के साथ कठोर कार्य करते हैं। वे अधिकाधिक उपलब्धि प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित रहते हैं और कभी भी अपने पद/स्थिति या आय से संतुष्ट नहीं होते।

ii. **समय पाबंदी** (Time Urgency) – प्रकार ए के व्यक्ति अत्यधिक समय के पाबंद होते है एवं सदैव कार्यों की अन्तिम सीमा बांध कर उसे पूर्ण करने में संघषरत रहते है। एक ही समय में वे अनेक कार्य करने की कोशिश करते है जैसे बात करते हए टेलीफोन सुनना, दूर दर्शन देखना आदि। वे अपनी बात को शीघ्रता से एवं जोर लगाकर बोलते है।

iii. **गुस्सा** (Anger / Hostitity) – प्रकार A के व्यक्ति वाले व्यक्ति शीघ्र ही चिड़चिड़े हो जाते है एवं गुस्सा करने लगते है, चाहे वे इसे बाह्य रूप से प्रदर्शित न करें। ये शीघ्र ही तर्क करने लगते है, चुनौती देने लगते है। इसके विपरीत प्रकार B प्रतिरूप के व्यक्ति तुलनात्मक रूप से शांत, सरलता से चलने वाले धैर्यवान होते हैं। वे कम प्रतिस्पर्धात्मक होते है जीवन को सरलता से, बिना शीघ्रता किये जीते है। साथ संघर्ष नहीं करते एवं कम गुस्सा व चिड़चिड़ापन प्रदर्शित करते हैं।

(स) व्यवहार प्रतिरूप एवं तनाव (Behaviour Pattern & stress) – प्रकार ए के व्यक्ति तनाव के स्रोत के प्रति अन्य व्यक्तियों की तुलना में भिन्न रूप से प्रतिक्रिया करते हैं और उसकी व्यक्तिगत नियंत्रण के लिए भय के रूप में व्याख्या करते हैं। प्रकार ए के व्यक्ति उनके जीवन में चुनौतीपूर्ण स्थितियों को पसंद करते है। वे शीघ्रता में रहते हैं और देरी पसंद नहीं करते है।

(द) प्रकार ए तथा बी व्यवहार का मूल्यांकन (Assessing Type A & B Behaviour) – प्रकार ए एवं प्रकार बी व्यवहार प्रतिरूपों का मापन संरिचत साक्षात्कार (Structural Interviews) या प्रश्नावली (Questioan-aire) विधि द्वारा किया जा सकता है। इनमें व्यवहार से संबंधित अनेक प्रश्न होते हैं जिनके लिए व्यक्ति प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

उदाहरण के लिए -

i. क्या आप सामान्यतया जल्दी चलते है, और जल्दी खाते है?

ii. यदि आराम के लिए अतिरिक्त समय लेते है तो क्या आप ग्लानि अनुभव करते है।

iii. क्या आप अक्सर एक से अधिक चीज एक साथ करने की कोशिश करते है?

संरिचत साक्षात्कार प्रश्नावली की तुलना में अधिक वैध एवं विश्वसनीय परिणाम देता है।

प्रकार ए व्यवहार एवं स्वास्थ्य

व्यवहार प्रतिरूप तथा स्वास्थ्य में संबंधों का अध्ययन करने के लिए अनेक शोध हए हैं। एक अध्ययन में पाया गया कि प्रकार ए व्यक्ति अधिक श्वसन संबंधी (कफ, अस्थमा) पाचन संबंधी (असर, अपच, जी मिचलाना) आदि परेशानियां अनुभव करते है। प्रकार ए व्यक्ति वाले व्यक्तियों में हृदयनाडी रोग होने की संभावना अधिक होती है। प्रकार बी व्यक्ति में यह संभावना कम होती है।

1.29 व्यक्ति के शीलगुण उपागम

नोट

शीलगुण सिद्धांत प्रकार सिद्धांत (type theory) से भिान्न एवं विषम (contrasting) है। शीलगुण सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति संरचना (structure) भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलगुण से ठीक वैसी बनी होती है जैसे एक मकान क संरचना छोटी-छोटी ईंट से बनी होती है। शीलगुण (trait) से सामान्य अर्थ होता है व्यक्ति के व्यवहारों का वर्णन (description of human behaviour)। जैसे- सतर्क (alert), सक्रिय (active), मंदित (depressed) आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जिनके सहारे मानव व्यवहार का वर्णन होता है। न उठता है कि या सभी शब्द जिनसे मानव व्यवहार का वर्णन होता है, शीलगुण हैं कदापि नहीं। शीलगुण कहलाने के लिए यह आवयक है कि उसमें संगति (consistency) का गुण हो। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई व्यक्ति हर तरह की परिस्थिति में ईमानदारी (honesty) का गुण दिखलाती है तो हम कहते हैं कि उसके व्यवहार में संगति (consistency) है तथा उसमें ईमानदारी का शीलगुण है। परन्तु जब वह कुछ परिस्थिति में ईमानदारी दिखलाता है तथा कुछ में नहीं, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि इस व्यक्ति में ईमानदारी (Honesty) का गुण है। हां, यह थोड़ी देर के लिए कहा जा सकता है कि उसम ईमानदारी दिखलाने की आदत (habit) है जिसे वह कभी दिखलाता है कभी नहीं। इस तरह से हम कह सकते है कि व्यक्ति के व्यवहारों में पूर्णत: संगति (consistency) को शीलगुण तथा कम संगति less consistency) को आदत कहा जाता है। किसी व्यवहार को शीलगुण कहलाने के लिए संगति के अलावा उसमें स्थिरता (stability) का भी गुण होना चाहिए। दूसरे शब्द में, शीलगुण कहलाने के लिए कम-से-कम थोड़े समय के लिए स्थायित्व (relatively permanence) का गुण भी होना चाहिए। अत: शीलगुण एक ऐसी विशेषता होती है जिसके कारण व्यक्ति संगत ढंग सेतथा सापेक्ष रूप सेस्थायी ढंग से (relatively permanent way) एक-दूसरे से भिन्न होता है। एटिकन्सन, एटिकसन तथा हिलगार्ड (Atkinson, Akinson & Higard, 1983) ने भी शीलगुण को इसी तरह परिभाषित किया है। शीलगुण उपागम के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार व्यक्ति के किसी 'प्रकार' द्वारा नियन्त्रित नहीं होता है बल्कि भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलगुणों द्वारा नियन्त्रित होता है जो प्रत्येक व्यक्ति में मौजदू रहता है। इस तरह शीलगुण उपागम व्यक्तित्व के मौलिक इकाई को यानी शीलगुण को अलग करके उसके आधार पर व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या करता है।

1.30 आइजेन्क का व्यक्ति सिद्धांत

व्यक्तित्व का अंग्रेजी अनुवाद 'Personality' है जो लैटिन शब्द परसोना (Persona) से बना है तथा जिसका अर्थ नकाब (Mask) होता है जिसे नायक (actor) नाटय करते समय पहनते है। इसके अनुसार व्यक्ति का अर्थ बाहरी गुणों से लगाया जाता है। जिस व्यक्ति की बाहरी वेशभूषा जितनी अधिक भडकीली होगी उसका व्यक्तित्व उतना ही अधिक अच्छा समझा जाएगा। परंतु वर्तमान में यह एक अवैज्ञानिक तथ्य समझा जाता है। एवं व्यक्ति की वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर कई नई परिभाषाएं दी गई है।

परिभाषाएँ -

- आलपोर्ट (1937) के अनुसार ''व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते है।''
- आइजेन्क (1952) के अनुसार ''व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, चित्तप्रकृति, ज्ञानशक्ति तथा शरीर गठन का करीब-करीब एक स्थायी एवं टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्ण समायोजन का निर्धारण करता है।''

नोट

- बेरोन (1933) के अनुसार ''व्यक्तियों के संवेगों, चिन्तनों तथा व्यवहारों के अनूठे एवं सापेक्ष रूप से स्थित पैटर्न के रूप में व्यक्ति को सामान्यत: परिभाषित किया जाता है।''
- गुथरी (1944) के अनुसार, ''व्यक्ति की परिभाषा सामाजिक महत्त्व की उन आदतों तथा आदत संस्थान के रूप में की जा सकती है जो स्थिर तथा परिवर्तन के अवरोध वाली होती है।''
- मनू (1953) के अनुसार, ''व्यक्ति की परिभाषा उस अति विशेषतापूर्ण संगठन के रूप में की जा सकती है। जिसमें व्यक्ति की संरचना, व्यवहार के ढंग, रुचियां, अभिवृत्तियोंा, क्षमताएं, योजनाएं और अभिक्षमताएं सम्मिलित है।''
- वाटर मिसकेल (Walter Mischel. 1981) के अनुसार, ''प्राय:, व्यक्ति से तात्पर्य व्यवहार के उस विशिष्ट पैटर्न (जिसमें चिंतन एवं संवेग भी सम्मिलित है) से होता है जो प्रत्येक व्यक्ति के जिंदगी की परिस्थितियां साथ होने वाले समायोजन का निर्धारण करता है।''
- चाइड (Child, 1968) के अनुसार, ''व्यक्ति से तात्पर्य कमोवेश स्थायी आन्तरिक कारकों से होता है जो व्यक्ति के व्यवहार को एक समय से दूसरे समय में संगत बनाता है तथा तुल्य परिस्थतियों में अन्य लोगों के व्यवहार से अलग करता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से व्यक्ति का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाता है। इसका संयुक्त विश्लेषण निम्न प्रकार है -

1. व्यक्ति एक मनोशारीरिक तंत्र है अर्थात् एक ऐसा तंत्र है जिसके मानसिक तथा शारीरिक दोनों पक्ष होते हैं।
2. व्यक्ति में गत्यात्मक संगठन पाया जाता है। गत्यात्मक संगठन से तात्पर्य यह होता है कि मनोशारीरिक तंत्र के भिन्न-भिन्न तत्व जैसे शीलगुण, आदत, आदि एक-दूसरे से इस तरह संबंधित होते हैं कि उन्हें एक-दूसरे से पूर्णत: अलग नहीं किया जा सकता है। इस संगठन में परिवर्तन संभव है।
3. व्यक्ति से व्यवहार में संगतता पायी जाती है। अर्थात् व्यक्ति का व्यवहार एक समय से दूसरे समय में संगत होता है।
4. व्यक्तित्व के कारण ही व्यक्ति का वातावरण में अपूर्व समायोजन का निर्धारण होता है। अत: व्यक्ति भिन्न-भिन्न शीलगुणों का ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातारण में अपने ढंग का अर्थात् अपूर्व होता है।

मनोशारीरिक तंत्र

व्यक्ति एक ऐसा तंत्र (system) है जिसके मानसिक (Psychophysical) तथा शारीरिक (Physical) दोनों ही पक्ष होते है; यह तंत्र ऐसे तत्वों (element) का एक गठन होता है जो अपास में अंत:क्रिया (nteeraction) करते हैं। इस तंत्र के मुख्य तत्व शीलगुण (trait), संवेग (emotion), आदत (habit), ज्ञानशक्ति (inellect) चित्तप्रकृति (temperament), चरित्र (haracter), अभिप्रेरक (motive), आदि हैं जो सभी मानसिक गुण है परंतु इन सबका आधार शारीरिक (Physical) अर्थात् व्यक्ति के ग्रन्थीय प्रक्रियाएं एवं तंत्रिकीय प्रक्रियाएं (netural processe) है। इसका स्पष्ट मतलब यह हुआ कि व्यक्ति न तो पूर्णत: मानसिक (Psychological) है और न पूर्णत: शारीरिक ही होता है। व्यक्ति इन दोनों तरह के पक्षों का मिश्रण है।

नोट

गत्यात्मक संगठन

गत्यात्मक संगठन से तात्पर्य यह होता है कि मनोशारीरिक तंत्र (Psychophysical system) के भिन्न-भिन्न तत्व (element) जैसे शीलगुण (trait), आदत (habit) आदि एक-दूसरे से इस तरह संबंधित होकर संगिठत है कि उन्हें एक-दूसरे से पूर्णत: अलग नहीं किया जा सकता है। इस संगठन में परिवर्तन (change) संभव है। यही कारण है कि इसे एक गत्यात्मक संगठन (Dynamic organisation) कहा गया है। इस तरह से गत्यात्मक संगठन से स्पष्ट मतलब यह है कि व्यक्ति के शीलगुण या अन्य तत्व आपस में इस तरह से संगिठत होते हैं कि उनमें परिवर्तन भी होते रहते है। उदाहरणस्वरूप कोई व्यक्ति नौकरी पाने के लिए पहले ईमानदार (honesty), उत्तरदायी (responsible) तथा समयनिष्ठ (punctual) हो सकता है परंतु नौकरी मिलने के कुछ वर्ष बाद उसमें उत्तरदायित्व (responsibility) तथा समनिष्ठता (punctuality) का शीलगुण ज्यों-का-ज्यों हो सकता है परंतु संभव है कि उसमें ईमानदारी का गुण बदलकर बेइमानी का गुण विकसित हो जाए। इस उदाहरण में पहले के तीन गुणों के संगठन (organisation) में नौकरी मिलने के बाद एक परिवर्तन दिखलाया गया है। ऐसा भी संभव है कि इन तीनों शीलगुणों का संगठन नौकरी मिलने के बाद पूर्णत: बदल जाए। (यानी, इसके तीनों शीलगुणों में परिवर्तन हो जाए)। शीलगुणों के संगठन में इस तरह का परिवर्तन गत्यात्मक संगठन (Dynamic organisation) का उदाहरण है। इस तरह से संगठन में विसंगठन (disorganisation) भी सम्मिलित होता है जिसके सहारे असामान्य व्यवहार (bnormalbehaviour) की व्याख्या होती है। दूसरे शब्दों में, यदि किसी व्यक्ति के शीलगुणों (trait) के संगठन में इस ढंग का परिवर्तन आ जाता है कि उसका व्यवहार विसंगठित (disorganised) हो जाता है तथा जिसके फलस्वरूप वह असामान्य व्यवहार अधिक करने लग जाता है तो इसे भी एक गत्यात्मक संगठन की ही श्रेणी में रखेंगे।

संगतता

व्यक्तित्व में व्यक्ति का व्यवहार एक समय से दूसरे समय में संगत होता है। संगतता से मतलब यह होता है कि व्यक्ति का व्यवहार दो भिन्न अवसरों पर भी लगभग एक समान होता है। इस कारक पर चाइड के परिभाषा में प्रत्यक्ष रूप से बल डाला गया है। व्यक्ति के व्यवहार में इसी संगतता के आधार पर उसमें अमुक शीलगुण के होने का अनुमान लगाया जाता है।

वातावरण में अपूर्व समायोजन का निर्धारण

प्रत्येक व्यक्ति में मनोशारीरिक गुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन (Dynamic organisation) पाया जाता है कि उसका व्यवहार वातावरण में अपने-अपने ढंग से अपूर्व (unique) होता है। वातावरण समान होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार (behaviour), विचार (thought), होने वाला संवेग (emotion) आदि अपूर्व होता है जिसके कारण उस वातावरण के साथ समायोजन (adjust) करने का ढंग भी प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग होता है। आइजेंक, आलपोर्ट, चाइड तथा मिसकेल ने इस पक्ष पर समान रूप से अपनी-अपनी परिभाषाओं में बल डाला है। यही कारण है कि 1961 में आलपोर्ट (Allport) ने अपनी 1937 की परिभाषा के अन्तिम पांच शब्द बदलकर इस प्रकार कर दिए ("unique adjustment to his environment) की जगह पर "characteristic behaviour and thought" को सम्मिलित किया गया। इस परिवर्तन का उद्देश्य यह बतलाना था कि व्यक्ति का व्यवहार मात्र अनुकूली (adaptive) ही नहीं होता है बल्कि कथनीय (experessive) भी होता है। इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्ति वातावरण के साथ सिर्फ समायोजन (adjustment) या अनुकूलन (daptation) ही

नहीं करता है बल्कि उस वातावरण के साथ इस तरह अंत:क्रिया (interaction) करता है कि उस वातावरण को भी व्यक्ति के साथ अनुकूलन या अभियोजन योग्य होना पड़ता है।

निष्कर्ष तौर पर यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति में भिन्न-भिन्न शीलगुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन (Dynamic organisation) होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातारण में अपने ढंग का अर्थात् अपूर्व (unique) होता है।

नोट

आइजेन्क ने युगम (1923) के व्यक्ति प्रकारों को मॉडल बनाकर इन प्रकारों को लक्षण सिद्धान्तों से संबंधित कर एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। आइजेन्क ने व्यक्ति के निम्नांकित तीन प्रकार बताये है जो द्विध्रवीय हैं –

1. **अर्न्तमुखता - बर्हिमुखता** (Introversion - Extraversion) – आइजेन्क ने युग के अन्तर्मुखता तथा बहिमुर्खता के सिद्धांत को तो स्वीकार किया परंतु युग के समान उन्होंने इसे व्यक्ति का दो अलग-अलग प्रकार नहीं माना। उनका कहना था कि चूंकि ये दोनों प्रकार एक-दूसरे के विपरीत है अत: इन्हें एक साथ मिलाकर रखा जा सकता है तथा एक ही मापनी बनाकर अध्ययन किया जा सकता है। किसी व्यक्ति में सामाजिकता अधिक है तथा वह लोगों से मिलना जुलना अधिक पसंद करता है तो यह कहा जाता है कि व्यक्ति इस विमा के बर्हिमुखता पक्ष में ऊंचा है। दूसरी तरफ यदि व्यक्ति अकेले रहना पसंद करता है लज्जालुतथा संकोचशील भी है तो ऐसा कहा जाता है कि ऐसा व्यक्ति इस विमा के अन्तर्मुखता पक्ष में अधिक ऊंचा है।
2. **स्नायुविकृति- स्थिरता -** (Neuroticism - Stability) – आइजेन्क के अनुसार व्यक्ति का यह दूसरा प्रमुख प्रकार है। व्यक्ति के इस प्रकार के पहले घोर पर होने पर व्यक्ति में सांवेगिक नियंत्रण कम होता है तथा उनकी इच्छा शक्ति कमजोर होती है। इनके विचारो एवं क्रियाओं में मंदता पायी जाती है। इनमें अन्य व्यक्तियों के सुझाव को चुपचाप स्वीकार कर लेने की प्रवृति अधिक होती है इनमें समाजिकता का अभाव पाया जाता है। ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्राय: अपनी इच्छाओं का दमन किया जाता है। इस प्रकार के दूसरे छोर वाले व्यक्ति में स्थिरता होती है। जिसकी और बढ़ने पर व्यक्ति में स्थिरता की मात्रा बढ़ती जाती है।
3. **मनोविक्षिप्तता परांह की क्रियाएँ** (Psychoticism - Superego functions) – आइजेन्क के अनुसार मनोविक्षिप्तता वाले व्यक्ति के प्रकार में क्षीण, एकाग्तता, क्षीण स्मृति तथा क्रूरता का गुण अधिक होता है। इसके अलावा ऐसे व्यक्ति में असंवेदनशीलता, दूसरे के प्रति सौहार्दपूर्ण संबंध की कमी आदि गुण पाए जाते हैं। इस तरह हम देखते है कि आइजेन्क के तीनों प्रकार द्विध्रवीय हैं।

व्यक्तित्व का वृहद पांच कारकीय सिद्धांत

कोस्टा एवं मैकक्रे, होगान, मैकक्रे, नौलर, ला एवं कैमरे ने व्यक्ति के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण शोध किए है। इन शोधकर्ताओं के बीच व्यक्ति के निम्नांकित पांच महत्त्वपूर्ण एवं हस्ट-पुष्ट विमाएँ है जो सभी द्विध्रुव्रीय है –

1. **बर्हिमुखता** (Extraversion, E) – व्यक्ति की यह एक ऐसी विमा है जिसमें एक परिस्थिति में वह सामाजिक, मजाकिया, स्नेहपूर्ण, बातूनी आदि का शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वह संयमी, गंभीर, रूखापन, शांत, सचेत रहने आदि का शीलगुण भी दिखाता है। इस तरह से बहिमुर्खता को एक द्विध्रवीय विभा माना गया है।

नोट

2. **सहमतिजन्यता** (Agreeableness or A) – इस विभा के भी दो छोर या ध्रुव बतालाए गए है। इस विमा के अनुसार व्यक्ति एक परिस्थिति में सहयोगी और दूसरी पर विश्वास करने वाला उदार, सीधा सादा, उतर प्रकृति आदि से संबंद्ध व्यवहार दिखाता है। दूसरी परिस्थिति में वह असयोगी, शंकालुचिड़चिड़ा, जिद्दी, बेरहम आदि बनकर भी व्यवहार करता पाया गया है।

3. **कर्तव्यनिष्ठता** (Conscientiousness or C) – इस विमा में एक परिस्थिति में व्यक्ति आत्म अनुशासित, उत्तरदायी, सावधान एवं काफी सोच विचार कर व्यवहार से संबं संबंद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थापित में वही व्यक्ति बिना सोचे समझे, असावधानीपूर्वक कमजोर या आधे मन से भी व्यवहार करने से संबंद्धशीलगुण दिखाता है।

4. **स्नायुविकृति** (Neuroticism or N) – इस विमा में व्यक्ति एक और कभी-कभी तो सांवेगिक रूप से काफी शांत, संतुलित, रोगभ्रमी विचारो से अपने आप को मुक्त पाता है तो दूसरी और वह कभी-कभी अपने आप को सांवेगिक रूप से काफी उत्तेजित, असंतुलित तथा रोगभ्रमी विचारों से घिरा हुआ पाता है।

5. **अनुभूतियों का खुलापन या संस्कृति** (Openness to experience or O) – इस विमा में कभी-कभी व्यक्ति एक तरफ काफी संवदेनशील काल्पनिक बौद्धिक भद्र आदि व्यवहार से संबंद्धशीलगुण दिखाता है तो दूसरी और वह काफी असंवेदनशील रूखा, संकीर्ण असभ्य एवं अशिष्ट व्यवहारों से संबंद्धशीलगुण भी दिखाता है।

उपयुक्त पांच शीलगुणों को नॉरमनै (Norman, 1963) जे दी बिग फाइव (The Big five) की संज्ञा दी है जो ऑलपोर्ट, कैटेल द्वारा दिए गए शोध पर आधारित है। उपयुक्त विमाओं के प्रथम अक्षरों का कूट संकेतीकरण 'OCEAN' के रूप में करके हम आसानी से याद रख सकते है। उक्त बिग फाइव की मापने के लिए कोटा एवं मैकके (Costa & MC care, 1992) ने एक विशेष प्रश्नावली भी विकसित की है जिसे नियो-व्यक्तित्व अविष्कारिका - संशोधित (NEO-Personality Inventory Revised) या NEO-PI-R कहा गया है।

1.31 सारांश

यद्यपि व्यक्तित्व का परम्परागत अर्थ बाह्य पहनावे से है, परन्तु आधुनिक समय में इसका अर्थ विस्तुत रूप में लिया हुआ है। विस्तृत अर्थ में व्यक्ति से तात्पर्य व्यक्ति के समस्त शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक गुणों के उस गत्यात्मक संगठन से है जो उसका वातावरण से सामंजस्य बनाता है व्यक्ति की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए।

मन विगहण्ट तथा आलपोर्ट ने अनुसंधान किए है इसी आधार पर व्यक्तित्व उपागमों की बात कही गई है जिसमें प्रकार उपागम तथा शीलगुण उपागम प्रमुख है प्रकार उपागामों में सर्वप्रथम हिपोक्रेट्स ने चार प्रकार बताये इसके पश्चात शारीरिक गुणों के आधार पर क्रेमचर एवं शेल्डन ने चार चार प्रकार बताये। लेकिन जुंग के द्वारा मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर बताये गए प्रकार अर्न्तमुखी एवं बर्हिमुखी ज्यादा प्रसिद्ध हुए। प्रकार उपागम में भी कई दोष रहे इसके पश्चात शीलगुण उपागम के अन्तर्गत आलपोर्ट एवं कैटल ने व्यक्ति के शीलगुण बताये।

भारतीय दृष्टिकोण में व्यक्ति को आत्म ज्ञान, पाप-पुण्य, शरीर आत्मा से संबंधित तत्वों, न्याय दर्शन, आयुर्वेद, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समझाने का प्रयास किया गया है। जबकि पाश्चात्य दृष्टिकोण वंशक्रम तथा वातावरण के प्रभाव को व्यक्ति के विकास में मानता है वह मानवतावाद व्यवहारवाद विकासवाद, प्रकारवाद, गुणवाद से व्यक्ति को समझाने का प्रयास करता है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त विकास के विभिन्न पड़ावों से मिलने वाले वातावरण का व्यक्ति के विकास पर प्रभाव पड़ता है अत: गर्भकालीन अवस्था से वृद्धावस्था तक

व्यक्ति विकास को 9 अवस्थाओं में समझाने का प्रयास किया गया है। इसी तरह व्यक्ति को शारीरिक गान, वृद्धि, यौन, जन्मक्रम, अन्त:स्रावी ग्रंथिया तथा कई सामाजिक और पारिवारिक कारक प्रभाव डालते हैं।

1 प्राची - भारतीय अवधारणा

2 प्रतीची - पाश्चात्य अवधारणा

3 व्यक्ति शब्द लैटिन भाषा के 'परोसना' से बना जिसका अर्थ है मुखौटा।

नोट

इस इकाई में पढ़े गए मनोगत्यात्मक या मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों में फ्रायड ने अचेतन मन की दमित इच्छाओं, स्वप्न विश्लेषण आदि के आधार पर व्यक्ति का वर्णन किया है। वहीं फ्रायड के कुछ संप्रत्ययों को इरिक्सन, हार्नी, सुल्लीवान ने अपने सिद्धान्त में उपयोग किया, वहीं कुछ संप्रत्ययों को नकार दिया। उन्होंने अपने सिद्धान्तों में मनोसामाजिक कारकों, सांकृतिक प्रभावों का वर्णन किया। फिर भी फ्रायड का सिद्धान्त ने व्यक्ति के अन्य सिद्धान्तों के लिये धरातल के रूप में कार्य किया।

अल्फ्रेड एडलर, एरक फ्रोम एवं केरेन हार्नी ने व्यक्ति में जैविक कारकों के स्थान पर व्यक्ति पर पड़ने वाले सामाजिक प्रभावों को भी अपने सिद्धान्तों में शामिल किया। एडलर ने व्यक्तिगत मनोविज्ञान के नाम से मनोविज्ञान में अलग विचारधारा स्थापित की। बेन्डुरा का सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धान्त मुख्यतः व्यक्ति की व्यवहारवादी विचाराधारा पर आधारित है जिसमें अधिगम के सिद्धान्तों को काफी महत्त्व दिया गया है। व्यवहारवादी विचारधारा व्यक्ति के बाहरी पक्षों अर्थात् बाहर से स्पष्ट रूप से देखे जा सकने वाले व्यवहार पर ही ध्यान केन्द्रित करती है। इस विचारधारा में आन्तरिक पक्षों अचेतन आदि के महत्त्व को नकार दिया गया है।

अल्फ्रेड एडलर, एरिक फ्रोम एवं केरेन हार्नी ने व्यक्ति में जैविक कारकों के स्थान पर व्यक्ति पर पड़ने वाले सामाजिक प्रभावों को भी अपने सिद्धान्तों में शामिल किया। एडलर ने व्यक्तिगत मनोविज्ञान के नाम से मनोविज्ञान में अलग विचारधारा स्थापित की। बेन्डुरा का सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धान्त मुख्यतः व्यक्ति की व्यवहारवादी विचाराधारा पर आधारित है जिसमें अधिगम के सिद्धान्तों को काफी महत्व दिया गया है। व्यवहारवादी विचारधारा व्यक्ति के बाहरी पक्षों अर्थात् बाहर से स्पष्ट रूप से देखे जा सकने वाले व्यवहार पर ही ध्यान केन्द्रित करती है। इस विचारधारा में आन्तरिक पक्षों अचेतन आदि के महत्त्व को नकार दिया गया है।

इस सिद्धान्त में व्यक्ति की व्याख्या अधिगम या सीखने के सिद्धान्तों, मनोविश्लेषणवाद के कुछ संप्रत्ययों जैसे अचेतन, भय, चिन्ता आदि के आधार पर की गई। इस प्रकार यह एक अनोखा सिद्धान्त है जिसमें स्पष्ट या बाह्य रूप से परिलक्षित व्यवहार के साथ आन्तरिक, बाहरी रूप से नहीं दिखने वाले, अस्पष्ट व्यवहार की व्याख्या व्यक्ति के संदर्भ में की गई है। व्यक्ति किस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के अर्न्तद्वन्द्वों का सामना करता है, इसकी व्याख्या भी इस सिद्धान्त में की गई है।

आलपोर्ट का व्यक्ति सिद्धांत शीलगुण उपागम पर आधारित है। आलपोर्ट ने व्यक्ति की सरंचना की व्याख्या में सामान्य शीलगुण तथा वैयक्तिक शीलगुण - कार्डिनल शीलगुण, केन्द्रीय शीलगुण तथा गौण शीलगुण बतलाए है। व्यक्ति के टाइप ए एवं बी व्यक्ति की विशेषताएँ भिन्न होती हैं। टाइप ए व्यक्ति में हृदयधमनी विकार होने की संभावना अधिक होती है।

आइजेन्क का व्यक्ति सिद्धांत मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर व्यक्तित्व गुणों को तीन द्विध्रुवीय विमाओं पर बांटा है - अर्न्तमुखता-बहिमुर्खता स्नायुविकृति-स्थिरता, मनोविक्षिप्तता-परांह की क्रियाएँ आइजेन्क ने भी मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर व्यक्ति के तीन प्रकार बतलाये हैं जो निम्नलिखित है:-

1. अन्तर्मुखता - बर्हिमुखता (Introversion - Intraveresion) आइजेन्क ने इस व्यक्ति श्रेणी के एक छोर पर अर्न्तमुखता शीलगुणों से युक्त व्यक्तियों को रखा गया है। जबकि इसी श्रेणी के दूसरे छोर पर बर्हिमुखी शीलगुणों से युक्त व्यक्तियों को रखा गया है। यह स्पष्टत: एक द्विध्रुव्रीय विमा है।

नोट

2. स्नायुविकृति- स्थिरता (Neuroticisne - Stability) - इस विमा में व्यक्ति के पहले स्तर पर होने पर व्यक्ति में सांवेगिक नियंत्रण कम होता है तथा उनकी इच्छा शक्ति कमजोर होती है। इनके विचारों एवं क्रियाओं में मंदता पायी जाती है। दूसरे छोर वाले व्यक्ति में स्थिरता होती है जिसकी और बढ़ने पर उक्त व्यवहारों या लक्षणों की मात्रा घटती जाती है और व्यक्ति में स्थिरता की मात्रा बढ़ती जाती है।

3. मनोविकृति - पराअहं की क्रियाएं (Pshychoticism - supergo functional) - आइजेन्क के अनुसार मनोविकृतता वाले छोर के व्यक्तित्व प्रकार में क्षीण स्मृति, क्षीण एकाग्रता, क्रूरता का गुण अधिक पाया जाता है। इसके अलावा ऐसे व्यक्ति में असंवेदनशीलता दूसरों के प्रति सौहार्दपूर्ण संबंध की कमी किसी प्रकार के खतरे के प्रति सतक्रता आदि के गुण भी पाये जाते है। इसी प्रकार दूसरे छोर पर पराहे की क्रियाएं होती है।

वही दूसरी और पांच कारकीय सिद्धांत व्यक्ति को पांच द्विध्रुव्रीय विमाओ में बांटकर किया है। ये विमाए है - बर्हिमुखता, सहमतिजन्यता, कर्तव्यनिष्ठता, स्नायुविकृति, अनुभूतियो का खुलापन या संस्कृति। इन शोधकताओंने व्यक्ति की निम्नलिखित पांच विमाएँ बतायी है जो सभी द्विध्रुव्रीय हैं–

(a) **बहिमुर्खता** (Extraversion E) – व्यक्ति की यह ऐसी विमा है जिममें एक परिस्थिति में व्यक्ति सामाजिक, मजाकिया स्नेहपूर्ण, बातूनी आदि का शीलगुण दिखाता है। तो दूसरी परिस्थिति में वह संयमी, गंभीर, रूखापन, शान्ति, सचेल रहने आदि का शीलगुण भी दिखता है।

(b) **सहमतिजन्यता** (Aggreeableness or A) – इस विमा के भी दो छोर या ध्रुव बतलाये गये है। इस विमा के अनुसार व्यक्ति एक परिस्थिति में सहयोगी दूसरों पर विश्वास करने वाला, उदार, सीधा सादा उस कृषि आदि से संबंद्ध व्यवहार दिखाता है। दूसरी परिस्थिति में वह असहयोगी, शंकालु, चिड़चिड़ा, जिद्दी आदि बनकर व्यवहार करता है।

(c) **कर्तव्यनिष्ठता** (Conscientiousness or C) – इस विमा में एक परिस्थिति में व्यक्ति आत्म अनुशासित उत्तरदायी, सावधान एवं काफी सोच-विचार कर व्यवहार करने से संबंद्धशीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वही व्यक्ति बिना सोचे समझे, असावधानीपूर्वक कमजोर या आधे मन से भी व्यवहार करने से संबंद्धशीलगुण दिखाता है।

(d) **स्नायुविकृति** (Neuroticesm or N) – इस विमा में व्यक्ति एक और कभी-कभी तो सांवेगिक रूप से काफी शांत, संतुलित रोगभ्रमी विचारों से अपने आप को मुक्त पाता है तो दूसरी और वह कभी-कभी अपने आप को सांवेगिक रूप से काफी उत्तेजित, असंतुलित तथा रोगभ्रमी विचारों से घिरा हुआ पाता है।

(e) **अनुभूतियों का खुलापन या संस्कृति** (Openess ot experiences or culture or O) इस विमा में कभी-कभी व्यक्ति एक तरफ काफी संवेदनशील काल्पनिक, बौद्धिक भद्र आदि व्यवहार से संबंद्धशीलगुण दिखाता है तो दूसरी और वह काफी असंवेदनशील, रूखा, संकीर्ण, असभ्य एवं अविशिष्ट व्यवहारों से संबंद्धशीलगुण भी दिखाता है।

उपर्युक्त पांच शीलगुणों को नॉरमैन ने दी बिग फाइव (The Big five) की संज्ञा दी है। इन सभी को मिलाकर 'OCEAN' के रूप में कहा जाता है।

1.32 अभ्यास प्रश्न

नोट

1. व्यक्ति किस अंग्रेजी शब्द का पर्न्याय है?
2. Personality किस शब्द से बना है?
3. व्यक्ति की परिभाषाओं का विश्लेषण कर किसे मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व की व्यापक परिभाषा दी।
4. क्रेमचर ने व्यक्ति के कितने प्रकार बताए।
5. आलपोर्ट ने शीलगुणों की कितनी प्रवृतियां बताई।
6. शेल्डन के शरीर की रचना सिद्धान्त का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
7. अतमुखी एवं बर्हिमुखी व्यक्ति के गुणों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
8. आलपोर्ट के शीलगुण सिद्धान्त को विस्तार से व्याख्या कीजिए।
9. कैटल के शील गुण सिद्धान्त की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
10. पदसोना का क्या अर्थ लिया गया है?
11. व्यक्ति की प्रमुख प्राची अवधारणा क्या है?
12. व्यक्ति की प्रमुख प्रतीची अवधारणा क्या है?
13. अग्नाशयी ग्रन्थी से कौन-सा प्रमुख स्राव निकलता है?
14. वह कौन-सी ग्रन्थी है जिसकी कमी होने पर रक्त संचार मंद पड़ता है?
15. पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति की अवधारणा का विकास किन सिद्धान्तों पर किया नाम दीजिए।
16. अभिधम्मा व्यक्तित्व सिद्धान्त क्या है? संक्षेप में समझाइये?
17. व्यक्ति विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
18. व्यक्ति विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का वर्णन कीजिए।
19. विभिन्न अन्त: स्रावी ग्रन्थियों का व्यक्ति के विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है। वर्णन कीजिए।
20. फ्रायड के अनुसार व्यक्ति का कौन-सा भाग सुखवादी है?
21. इरिक्सन की विकास अवस्थाएँ किस नियम पर आधारित हैं?
22. मूल चिंता संप्रत्यय किसने प्रतिपादित किया?
23. सुल्लीवान के व्यक्ति विकास की पहली अवस्था कौन-सी है?
24. सुल्लीवान के सिद्धान्त को क्या नाम दिया गया है?
25. सुल्लीवान के अनुसार किसके विकसित होने की स्पष्ट उम्र या अवस्था नहीं होती?
26. फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्त को समझाइये।
27. इदम, अहम एवं परा अहम में अन्तर समझाइये।
28. विभिन्न प्रकार की रक्षा युक्तियों को उदाहरण सहित समझाइये।
29. इरिक्सन की मनोसामाजिक अवस्थाओं का वर्णन करें।
30. सुल्लीवान के व्यक्तित्व सिद्धान्त को समझाइये।
31. हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त का वर्णन करें।
32. किस प्रकार के शील गुण व्यक्ति विकास के लिये आवश्यक हैं?

नोट

33. सामाजिक अधिगम का संप्रत्यय किसने दिया?
34. प्रेक्षणात्मक अधिगम का सबसे पहला पद कौन-सा है?
35. सामाजिक अधिगम को प्रभावित करने वाले दो कारकों को बताईये।
36. एडलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त को समझाइये।
37. जन्म क्रम का व्यक्ति से क्या संबंध है। समझाइये।
38. एरक फ्रोम द्वारा बताये गये व्यक्ति के विभिन्न प्रकारों को समझाइये।
39. बेन्डुरा के सामाजिक अधिगम के संप्रत्यय को समझाइये। इस हेतु किये गये प्रयोग का वर्णन कीजिए।
40. सामाजिक अधिगम की प्रक्रिया का वर्णन करें।
41. हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त का वर्णन करें।
42. अनुरक्षण आवश्यकता का एक उदाहरण दें?
43. कार्ल रोजर्स के सिद्धान्त का क्या नाम है?
44. पावलोव के क्लासिकी अनुबन्धन के प्रयोग को समझाइये।
45. क्रियाप्रसूत एवं प्रतिवादी व्यवहार में उदाहरण सहित अन्तर समझाइये।
46. मैस्लो के पदानुक्रम मॉडल का वर्णन करें।
47. आत्म सिद्ध व्यक्ति की विशेषताएं लिखिए।
48. रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त का वर्णन करें।
49. फुली फंक्शनिंग परसन/पूर्णरूपेण सफल व्यक्तियों के क्या गुण होते है?
50. अर्न्तद्वन्द्व से आप क्या समझते है? इनके प्रकारों को उदाहरण सहित समझाइये।
51. व्यक्ति के उद्दीपक अनुक्रिया सिद्धान्त को समझाइये।
52. मिलर एवं डोलार्ड के सिद्धान्त में मनोविश्लेषक कारकों की क्या भूमिका है?
53. मिलर एवं डोलार्ड के अनुसार सीखने के चार मूल तत्वों को समझाइये।
54. मिलर एवं डोलार्ड के सिद्धान्त की प्रकृति को समझाइये।
55. आलपोर्ट के व्यक्तित्व शीलगुण सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
56. टाइप ए तथा बी व्यक्ति का सिद्धांत बताईये।
57. आइजेन्क का व्यक्ति सिद्धांत बताईये।
58. पांच कारकीय मॉडल की व्याख्या कीजिए।

1.33 संदर्भ पुस्तकें

- डॉ. एस.पी. गुप्ता : शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- डॉ. आर.एन. सिंह : आधुनिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मदिंर आगरा -2
- डॉ. अरूण कुमार सिंह : आधुनिक मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना
- डॉ. पी.डी. पाठक : शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मदिंर आगरा - 2
- सिंह, अरूण कुमार (2002) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पिलकेशंस

अध्याय-2

विशिष्ट बालकों की शिक्षा

नोट

(Structure)

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 विशिष्ट बालक का अर्थ
2.4 विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण
2.5 शारीरिक विकलांग बालक
2.6 श्रवण विकलांगता
2.7 मानसिक रूप से विशिष्ट बालक
2.8 शैक्षिक रूप से विशिष्ट बालक
2.9 सामाजिक रूप से विशिष्ट बालक
2.10 सारांश
2.11 अभ्यास कार्य
2.12 संदर्भ पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विशिष्ट बालकों का अर्थ समझकर परिभाषित कर सकेंगे।
- विशिष्ट बालकों एवं सामान्य बालकों में अन्तर कर सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के विशिष्ट बालकों की व्याख्या कर सकेंगे।
- विशिष्ट शिक्षा के प्रत्यय को समझ सकेंगे।
- विशेष शिक्षा देने में आने वाली कठिनाईयो से अवगत हो सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

इस इकाई में हम विशिष्ट बालक का प्रत्यय तथा विभिन्न प्रकार के विशिष्ट बालकों के बारे में विस्तृत परिचर्चा करेंगे। साथ ही आपको विभिन्न प्रकार के विशिष्ट बालकों की शिक्षा व्यवस्था से भी अवगत करायेंगे। किसी भी राष्ट्र का विकास उसके संसाधनों का सही प्रकार से उपयोग पर ही निर्भर करता है। मानवीय संसाधनों का तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक

रूप से स्वस्थ होने के साथ-साथ व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुये उसे शिक्षण तथा प्रशिक्षण दिया जाए जिससे उनकी समस्त क्षमताओं और योग्यताओं का ठीक प्रकार से प्रयोग कर राष्ट्र के विकास में योगदान लिया जा सके।

नोट

2.3 विशिष्ट बालक का अर्थ

विशिष्ट बालकों को जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि सामान्य बालक किसे कहते है। विद्यालय में हर समाज, हर वर्ग तथा भिन्न-भिन्न परिवारों से बालक आते हैं ये सभी विभिन्न होते हुये भी सामान्य कहलाते हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी होते हैं तो शारीरिक, मानसिक, शैक्षिक एवं सामाजिक गुणों की दृष्टि से अन्य बालकों से भिन्न होते है। सामान्य बालक वे होते हैं जिनका शारीरिक स्वास्थ एवं बनावट इस प्रकार की होती है कि उन्हें सामान्य कार्य करने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं होता है। जिनकी बुद्धिलब्धि औसत (90 से 110) के बीच होती है। ऐसे बालकों की शैक्षिक उपलब्धि कक्षा के अधिकांश बालकों के समान होती है।

क्रूशैंक के अनुसार-'एक विशिष्ट बालक वह है जो शारीरिक, बौद्धिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक रूप, सामान्य बुद्धि एवं विकास की दृष्टि से इतने अधिक विचलित होते हैं कि नियमित कक्षा- कार्यक्रमों से लाभान्वित नहीं हो सकते हैं तथा जिससे विद्यालय में विशेष देखरेख की आवश्यकता होती है।'

2.4 विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण

विशिष्ट बालक सामान्य बालकों से भिन्न होते हैं। विभिन्न प्रकार के विशिष्ट बालक आपस में भी एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। ये भिन्न बौद्धिक योग्यताओं में, शारीरिक योग्यताओं में या शैक्षिक उपलब्धि में हो सकते हैं। मुख्य रूप से सभी प्रकार के विशिष्ट बालकों को चार वर्गों में विभाजित किया है।

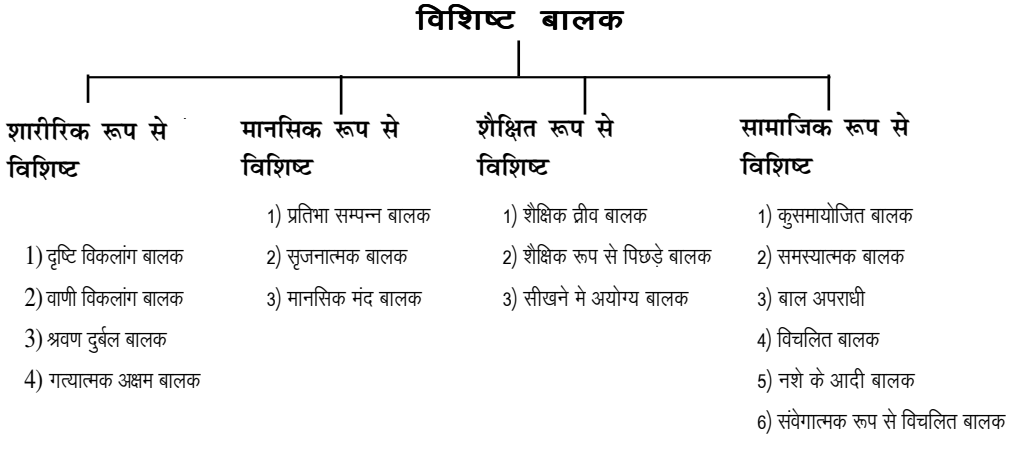

2.5 शारीरिक विकलांग बालक

विकलांगों की शिक्षा हमारी लोकतांत्रिक आवश्यकता है। यद्यपि विकलांगो के लिए विशेष शिक्षा और समन्वित शिक्षा की व्यवस्था की गई है लेकिन विकलांगो की संख्या को देखते हुए यह नगण्य है। विश्व विकलांग जनसंख्या के करीब 80 प्रतिशत विकलांग विकासशील देशों में रहते है। शारीरिक

दृष्टि विकलांगता

नोट

दृष्टि विकलांगता मानव समाज की सबसे दुखद स्थिति है यद्यपि वर्तमान समाज में उपयोगी अनुसंधान के परिणामस्वरूप अनेक विशेष विद्यालयों की स्थापना हुई थी। इस विकलांगता के प्रमुख कारण संक्रामक रोग, दुर्घटना या चोट, वंशानुपात प्रभाव, परिवेश का प्रभाव तथा विषैले पदार्थो का प्रयोग आता है। 60 से 70 प्रतिशत बच्चे संक्रामक रोग के कारण दृष्टिहीन होते हैं। दृष्टिहीन बालकों को छह वर्गो का विभाजन शिक्षा की दृष्टि से उपयुक्त माना गया है।

1. जन्मजात अथवा पूर्णांध वर्ग- इस वर्ग में पांच वर्ष के पूर्णांध आते है।
2. इसमें वे पूर्णांध आते है जो 5 वर्ष के बाद दृष्टि खो बैठते हैं।
3. आंशिक जन्मांध वर्ग में दृष्टि कमजोर होती है। ऐसे बालक थोड़ा बहुत देख सकते है।
4. आंशिक अंधता वर्ग में आंशिक दृष्टिहीन बालक आते हैं जिनकी दृष्टि किसी विकार, रोग के कारण किसी भी आयु में कमजोर हो जाते है।
5. आंशिक जन्मजात दृष्टि वर्ग के बालक केवल नाममात्र ही देख पाते हैं।
6. आंशिक दृष्टि वर्ग के बालक किसी कारण से सामान्य दृष्टि खो देते है।

2.6 श्रवण विकलांगता

शारीरिक विकलांगता के अन्तर्गत दूसरा महत्वपूर्ण वर्ग मूक - बधिर विकंलागों का है। इसके अन्तर्गत वे बालक आते हैं जो किसी कारण से पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से सुनने में असमर्थ होते हैं। ये वंशानुक्रम या वातावरण किसी भी कारण से हो सकता है।

श्रवण दोष के कारण

जन्म से पूर्व के कारण	जन्म के बाद के कारण	जन्म के समय के कारण
1.माँ को संक्रामक रोग होना	1.दुर्घटना से विशेष अंग का नष्ट होना	1.समय से पूर्व जन्म का होना
2. तेज दवाओ का सेवन	2. ब्रीव आवृति वाली ध्वनि मे रहना	2. जन्म के बाद आक्सीजन की कमी
3. नशीले पदार्थो का प्रयोग	3 संक्रामक रोग जो श्रवण क्षमता को प्रभावित करते है	3. प्रसव के समय किसी उपकरण का रह जाना
4. कुपोषण		4. जन्म के तुरन्त बाद पोलियो होना
5. रहन –सहन की दशाएं		

श्रवण दोष बालकों की पहचान- इस प्रकार के बालको को पहचानने के लिए निम्नलिखित विधियों का उपयोग करते है।

1. **विकासात्मक पैमाना** – इसमें संवेदी गामक यंत्र के सदंर्भ में बालक के वर्तमान स्तर का पता लगाकर उसकी श्रवण विकलांगता का पता लगाते हैं।

नोट

2. **चिकित्सीय परीक्षण** – इसमें बालक के श्रवण अंगों की क्रियाशीलता तथा निष्क्रियता की जांच करके श्रवण क्षमता का पता लगाया जाता है।
3. **जीवन इतिहास विधि** – इसमें श्रवण दोष युक्त बालक के जीवन विवरण का पता लगाकर, उसके स्वास्थ्य-इतिहास, विकास का इतिहास तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि को जानकर यह पता लगाने का प्रयास किया जाता है कि श्रवण - दोष अनुवांशिक है अथवा अर्जित है।
4. **क्रमबद्ध निरीक्षण** – इसमें माता-पिता अथवा शिक्षक द्वारा बालक के व्यवहार का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है और बालक के असामान्य व्यवहार का पता लगाया जाता है।

श्रवण बाधित की शिक्षा व्यवस्था

ऐसे बालक कक्षा में ठीक प्रकार से समायोजित नहीं हो पाते हैं अत: इन्हें निम्नलिखित साधनों का प्रयोग करना चाहिए।

1. श्रवण यंत्र का प्रयोग करना चाहिए।
2. आत्म विश्वास को विकसित करने के लिए नर्सरी शिक्षा देनी चाहिए।
3. एक स्वर को दूसरे स्वर से भिन्न करने के लिए श्रवण प्रशिक्षण देना चाहिए।
4. इनके लिए कक्षा व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि इन्हें आगे की पंक्ति में बैठाया जाए।
5. शिक्षक को भी उच्च स्वर में बोलना चाहिए तथा इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए कि छात्र शिक्षक के होठों को ठीक प्रकार देख सके।

वाणी दोष

वाणी दोष सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। वाणी दोष में सुनने वाला व्यक्ति, क्या कहा है, इस पर ध्यान न देकर किस प्रकार कहा जा रहा है, इस पर ध्यान देता है और श्रोता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। इससे श्रोता एवं वक्ता दोनों ही परेशान होते है। वाणी दोष के अन्तर्गत दोषपूर्ण उच्चारण, दोषपूर्ण स्वर, अटकना एवं हकलाना, देर से वाणी विकास आदि आता है।

वाक विकलांगता के कारण - वाक विकलांगता के कारण श्रवण - क्षमता में कमी या उसका विकारयुक्त होना है। कान के रोग के कारण यह विकृति आती है। मस्तिष्क पर चोट लग जाना, तालु कण्ठ, जीभ, दांत आदि में किसी प्रकार की विकृति के कारण यह विकलांगता आ जाती है। वातावरण के कारण भी यह विकार आ जाता है। वाणी विकार अनुकरण के आधार पर भी होता है। यदि बालक के वातावरण में किसी प्रकार का दोष होता है तो वह इन दोषों को अपना लेता है जैसे शब्दों का उच्चारण, उतार - चढाव, चेहरे के भाव इत्यादि अनुकरण द्वारा सीखे जाते है।

वाक् विकलांगों का वर्गीकरण

1. आंगिक विकृति
2. सामान्य वाक् विकृति
3. मानसिक वाक् विकृति
4. विशेष वाक् विकृति

वाक्

विकृति को दूर करने तथा वाक् विकास के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखकर वाक् – विकलांगों की शिक्षा को महत्वपूर्ण माना जाता है।

नोट

1. वाक् – ध्वनि के शुद्ध एवं स्पष्ट टेप - रिकार्डर रखना।
2. वाक् – विकृति का समुचित संग्रह करना।
3. बालक को स्वस्थ तथा मनोरम वातावरण में रखना।
4. बालक के मुक्त विकास के लिए विद्यालय के वातावरण को सहज एवं स्वभाविकता प्रदान करना।
5. वाक् – दोषी बालक को मौखिक अभिव्यक्ति के अधिक अवसर प्रदान करना।

अस्थि विकलांगता

अस्थि विकलांग बालक वे होते हैं, जिनकी मांसपेशियों, अस्थि व जोड़ो में दोष या विकृति होती है जिससे वह सामान्य बालकों की तरह कार्य नहीं कर पाते है और उन्हें विशेष सेवाओं, प्रशिक्षण, उपकरण, सामग्री तथा सुविधाओं की आवश्यकता होती है। इसमें पोलियोग्रस्त, Crippled आदि आते है।

अस्थि विकलांगता के कारण

वंशानुगत कारक - इसमें विकलांगता एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती है जोकि कार्यकुशलता में बाधा उत्पन्न करती है।

1. **जन्मजात कारक** – ये जन्म के समय के कारक होते हैं। इसमें गर्भावस्था में कुपोषण संक्रामक रोग, मां का दुर्घटना ग्रस्त होना प्रमुख है जिसके कारण बालक में अस्थिदोष उत्पन्न हो जाते हैं।
2. **अर्जित कारक** – इसमें वे कारक आते हैं जो जन्म के पश्चात किसी प्रकार के दोष उत्पन्न करते हैं। इसके किसी प्रकार की दुर्घटना, बीमारियाँ जैसे पोलियों या अन्य बीमारी के लम्बे समय तक रहने पर होती है।

अस्थि विकलांग बालकों की शिक्षा

1. ऐसे बालकों के शिक्षक को विशेष ध्यान देना चाहिए तथा उनके बैठने के लिए उचित फर्नीचर की व्यवस्था करनी चाहिए।
2. इन बालकों के लिए एक स्थान पर बैठकर खेले जाने वाले खेलों का आयोजन होना चाहिए।
3. इन बालकों के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण व निर्देशन दिया जाना चाहिए। इनकी आवश्यकता के अनुसार इन्हें व्यवसाय उपलब्ध कराने चाहिए।
4. ऐसे बालकों को कृत्रिम अंग उपलब्ध कराये जाने चाहिए।
5. शिक्षकों को इन बालकों की सीमाओं को देखते हुये क्रियाएँ आयोजित की जानी चाहिए।

2.7 मानसिक रूप से विशिष्ट बालक

इसमें प्रतिभाशाली, मानसिक मंद एवं सृजनात्मक बालक आते हैं।

प्रतिभाशाली बालक

नोट

प्रतिभाशाली बालक वे बालक होते हैं जिनकी बौद्धिक क्षमताएँ सामान्य बालकों की अपेक्षा अधिक होती है। ये जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट प्रदर्शन करते हैं। **टरमेन** के अनुसार ऐसे बालकों की बुद्धिलब्धि 140 से ऊपर होती है जबकि **मिल** के अनुसार 190 से 200 बुद्धिलब्धि वाले बालक प्रतिभाशाली होते हैं। **विटी** के अनुसार प्रतिभाशाली बालक संगीत, कला, सामाजिक नेतृत्व तथा दूसरे विभिन्न क्षेत्रों में अच्छा प्रदर्शन करते हैं।

प्रतिभाशाली बालकों की पहचान

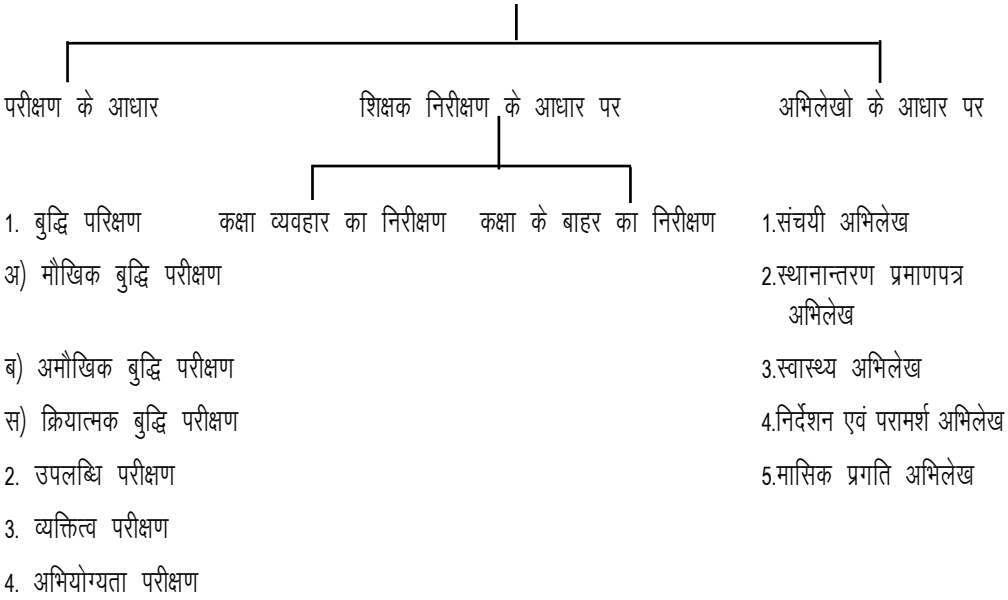

प्रतिभाशाली बालकों की पहचान बुद्धि परीक्षण के आधार पर की जाती है। यह वैयक्तिक तथा सामूहिक परीक्षण द्वारा होता है। वैयक्तिक और सामूहिक बुद्धि परीक्षण मौखिक, अमौखिक तथा क्रियात्मक होते हैं। इसके अतिरिक्त उपलब्धि परीक्षणों की सहायता से यह पता लगाया जाता है कि बालक ने विभिन्न विषयों में सिखायी जाने वाली कुशलताओं में ठीक प्रकार से सफलता प्राप्त की है अथवा नहीं।

शिक्षक के निरीक्षण द्वारा बालक का व्यवहार, रूचियों, योग्यताओं, क्षमताओं का ज्ञान प्राप्त कर प्रतिभाशाली बालकों की पहचान की जाती है।

विभिन्न प्रकार के अभिलेखों के आधार पर किसी भी विद्यार्थी की प्रतिभा को पहचाना जा सकता है। इसमें मुख्य रूप से संचयी अभिलेख, स्थानान्तरण अभिलेख, स्वास्थ्य अभिलेख, निर्देशन और परामर्श अभिलेख, मासिक प्रगति अभिलेख उपाख्यान संबधी अभिलेख है।

प्रतिभाशाली बालकों के शिक्षण के प्रमुख उपागम – प्रतिभाशाली बालकों की शिक्षा एक आसान कार्य नहीं है क्योंकि यह संख्या में कम होते हैं और समूह विजातीय होता है। अत: पूरे समूह पर किसी एक प्रणाली को लागू करना कठिन कार्य है। प्रतिभाशाली बालकों के शिक्षण के प्रमुख तीन उपागम है।

1. त्वरण
2. सामान्य कक्षाओं में समृद्धि

3. विशिष्ट कक्षाएँ

त्वरण – इसमें प्रतिभाशाली बालकों का उनकी शारीरिक आयु की अपेक्षा मानसिक आयु के आधार पर प्रवेश दिया जाता है। ऐसे बालकों को विद्यालय में शीघ्र प्रवेश दिया जाता है। **हावसन** के अनुसार ऐसे बालक आठवीं कक्षा या उसके बाद अधिक अच्छी प्रगति दिखाते हैं।

नोट

समृद्धिकरण – समृद्धिकरण का तात्पर्य है कि नियमित कक्षाओं में दिये जाने वाले पाठ्यक्रम में शैक्षिक अनुभव अधिक देकर उसे समृद्ध बनाया जाना। प्रतिभाशाली बालकों के समुचित विकास के लिए पाठ्यक्रम इतना कठिन होना चाहिए कि उसे पढ़ना बालक के लिए एक चुनौतिपूर्ण हो।

विशिष्ट कक्षाएं – इनमें सामान्य विद्यालायों में ही विशेष कक्षाएँ आयोजित कर विशेष रूप से नियोजित पाठ्यक्रमों को प्रस्तुत किया जाता है। विशिष्ट प्रतिभावान व्यक्तियों को बुलाकर उनके अनुभवों से छात्रों को लाभान्वित करवाया जाता है।

मानसिक मंद बालक

मानसिक मंदता एक ऋणात्मक संकल्पना है। मानसिक रूप से मंद बालक घर, समाज तथा विद्यालय का कार्य नहीं कर पाते हैं।

डॉल ने 1941 में मानसिक मंदता की पहचान के लिए 6 प्रमुख बातें बतायी हैं।

1. जब बालक सामाजिक परिस्थितियों के साथ समायोजन न कर सके।
2. जब बालक अपने साथियों के साथ मित्रवत व्यवहार न कर सके।
3. जब व्यवहारिक तथा वातावरण सम्बन्धी कारणों से उसका मानसिक विकास न हो सके।
4. जब बालक उतना कार्य न कर सके जितना उस आयु के लोगों से आशा की जाती है।
5. विशेष शारीरिक दोष के कारण वह सामान्य कार्य न कर सके।
6. जब बालक में कुछ ऐसे दोष हो जिन्हें परिष्कृत नहीं किया जा सकता है।

अमेरिकन एसोसिएशन ऑन मेण्टल डेफिशिएन्सी (1959) के अनुसार मानसिक मंदता में सामान्य बौद्धिक प्रकार्य सामान्य से कम स्तर के होते हैं। मानसिक मंदता की उत्पत्ति विकासात्मक अवस्थाओं में होती है और समायोजित व्यवहार को क्षति पहुंचाने से भी यह सम्बन्धित है।

मानसिक मंदता का वर्गीकरण

शारीरिक अवस्था के आधार पर	मंदता की मात्रा पर	दूसरों पर आश्रित रहने पर	बुद्धिलब्धि पर
(1) मस्तिष्क आघात	(1) साधारण मानसिक मंदता	(1) स्वतंत्र	(1) शिक्षा प्राप्त करने वाले
(2) मंगोलायड	(2) आत्मबल मानसिक मंदता	(2) आंशिक स्वतंत्र	(2) प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले
(3) क्रेटिन बालक	(3) गम्भीर मानसिक मंदता	(3) आश्रित	(3) संवासित
(4) फेनिलकेटनयूरिया			
(5) हाइड्रोसेफेली			
(6) सेरीबल पालसी			

नोट

मानसिक मंदता के कारण

जन्म के पूर्व के कारक	जन्म के समय के कारक	जन्म के पश्चात के कारक
(1) विषैले पदार्थो का सेवन	(1) अपरिपक्व जन्म	(1) गम्भीर बीमारी
(2) दवाएं	(2) प्रसव के समय असमान्य दशाएं	(2) मानसिक आघात
(3) रेडियोधर्मिता	(3) प्रसव के समय औजारों का प्रयोग	(3) दुर्घटना
(4) माता का मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य		(4) कुपोषण
(5) जन्म के पूर्व संक्रमण		(5) वंचित वातावरण

मानसिक मंद बालकों की शिक्षा व्यवस्था

मानसिक मंद बालकों की शिक्षा व्यवस्था के लिए कुछ सिद्धान्तों को प्रयोग में लाना चाहिए।

1. मानसिक मंद बालकों के लिए मूर्त माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिए। डूनॉन ने अपने अध्ययनों में यह पाया कि ऐसे बालक ऐलेक्जेण्डर परफारमेन्स टेस्ट को आसानी से कर लेते हैं।
2. कक्षा का आकार छोटा होना चाहिए तथा निर्देश व्यक्तिगत होने चाहिए।
3. करके सीखने के सिद्धान्त पर शिक्षा आधारित होनी चाहिए।
4. मानसिक मंद बालकों को वास्तविक स्थान पर ले जाकर शिक्षा देनी चाहिए।
5. शिक्षण को वास्तविक जीवन पर आधारित करके करना चाहिए। विभिन्न विषयों को आपस में सहसम्बन्धित करके शिक्षा देनी चाहिए।
6. मानसिक मंद बालकों के लिए अलग से विशेष शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए।

2.8 शैक्षिक रूप से विशिष्ट बालक

यहाँ पर शैक्षिक रूप से विशिष्ट बालकों के दो प्रकारों के बारे में बताया गया है।

शैक्षिक पिछड़े बालक

पिछड़े बालक वह होते है जो कक्षा में किसी तथ्य को बार-बार समझाने पर भी नहीं समझते हैं और औसत बालकों के समान प्रगति नहीं कर पाते हैं। ये पाठ्यक्रम तथा पाठ्य सहगामी क्रियाओं में किसी प्रकार की रुचि नहीं लेते हैं। इनकी बुद्धिलब्धि सामान्य होने पर भी इनकी शैक्षिक उपलब्धि कम होती है। बर्ट के अनुसार 'एक पिछड़ा बालक वह है जो अपने स्कूल जीवन के मध्यकाल में अपनी कक्षा से नीचे की कक्षा का काम नहीं कर सकते जो कि उसकी आयु के लिए सामान्य कार्य हो।' पिछड़े बालकों को तीन आधारों पर जाना जा सकता है।

1. बुद्धिलब्धि के आधार पर
2. शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर

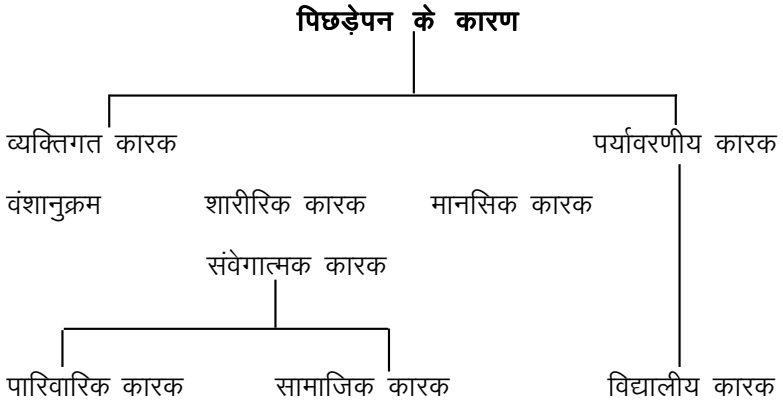

नोट

पिछड़े बालक की शिक्षा – पिछड़े बालकों पर यदि उचित ध्यान दिया जाता है तो वह शिक्षा में प्रगति कर सकते हैं। इसके लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

1. विशिष्ट विद्यालय
2. विशिष्ट कक्षाएँ
3. सामान्य कक्षाओं में विशिष्ट प्राविधान

विशिष्ट विद्यालय– पिछड़े बालकों के लिए उनके अनुसार पाठय्क्रम, उपयोगी सहायक सामग्री, प्रशिक्षित शिक्षकों सहित अलग से विद्यालय की स्थापना की जाए जिससे वह अपनी कमियों को कम समझ सके तथा अधिक सुरक्षा का अनुभव कर सके। यह विद्यालय आवासीय होने चाहिए।

विशिष्ट कक्षाएँ – पिछड़े बालकों के लिए सामान्य विद्यालयों में विशिष्ट कक्षाएं आयोजित की जा सकती है। इन कक्षाओं में विशेष प्रशिक्षित अध्यापक नियुक्त किये जाने चाहिए। इन कक्षाओं में शिक्षक आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि में परिवर्तन कर सकते है तथा इन बालकों को कठिन प्रतियोगिता का सामना नहीं करना पड़ेगा।

सामान्य कक्षा में विशिष्ट प्राविधान– इसमें सामान्य कक्षाओं में विशेष प्राविधान करके, उन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इन बालकों के लिए पाठ्यक्रम में लचीलापन होना चाहिए जो उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुरूप हो। इनके लिए शिक्षकों को निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना होगा।

1. शिक्षक व्यवहारिक और अनुभवी होना चाहिए।
2. शिक्षक को मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए। जिससे वह छात्रों की विशेष परेशानियों तथा कठिनाईयों को समझ सके।
3. पिछड़े बालकों में असफलता की दर अधिक होती है अत: शिक्षकों में धैर्य होना चाहिए।
4. शिक्षक को बाल-केन्द्रित शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

सीखने में अक्षम बालक

सीखने में अक्षम बालक उन बालकों को कहते है जो कि मौखिक अभिव्यक्ति, सुनने सम्बन्धी क्षमता, लिखित कार्य, मूलभूत पढ़ने की क्रियाओं में, गणितीय गणना, गणितीय तर्क तथा स्पेलिंग

में उनकी शैक्षिक उपलब्धि तथा बौद्धिक योग्यताओं में सार्थक विभेद दिखायी देता है। यह विभेद किसी और अक्षमता का परिणाम नहीं होता है। यह बालक ठीक प्रकार से सुन, सोच, बोल, पढ़ तथा लिख नहीं पाते हैं।

नोट

विशेषताएँ– सीखने में अक्षम बालकों में मुख्य रूप से अति क्रियाशीलता, विलम्बित वाणी विकास पढ़ने, लिखने तथा गणित की समस्या तथा स्मृति ह्रास आदि पाये जाते है।

कारण– सीखने में अक्षमता के निम्नलिखित कारण होते हैं।

1. **पारिवारिक कारक–**
   - सीखने में अक्षमता विशेष परिवारों में अधिक पायी जाती है।
   - डिसलेक्सिया का प्रमुख आधार वंशानुक्रम होता है।
   - यह जन्म से पूर्व, जन्म के समय तथा जन्म के बाद की समस्याओं का परिणाम होता है।
   - माँ का स्वास्थ्य, खान पान तथा जीवन का तरीका
   - सिर में चोट, संवेगात्मक वंचन
   - केन्द्रीय स्नायुमण्डल का ठीक प्रकार से विकसित न होना आदि।
   - श्रव्य गत्यात्मक समस्याएं, तथा किसी प्रकार की एलर्जी का होना।
2. **मनोवैज्ञानिक कारक–**
   - ध्यान केन्द्रित करने में असमर्थता
   - खराब अनुशासन का होना
3. **पर्यावरण कारक–**
   - स्वास्थ्य, गलत आहार तथा सुरक्षा।
   - परिवार में उचित भाषा का प्रयोग न होना।
4. **सामाजिक सांस्कृतिक कारक–**
   - विद्यालीय उपस्थिति, कार्य तथा पढ़ने की आदतें
   - ठीक प्रकार की शिक्षा न मिल पाना।

2.9 सामाजिक रूप से विशिष्ट बालक-

समाज के अनुरूप व्यवहार न कर सकने वाले बालक सामाजिक रूप से विशिष्ट बालक कहलाते हैं।

बाल-अपराधी

बालक के व्यक्तित्व के समुचित विकास में सामाजिक नियन्त्रणों तथा सामाजिक मानकों की विशेष भूमिका है। बालक के विकास में परिवार के साथ-साथ सामाजिक वातावरण, बालक की इच्छा आकांक्षाए तथा महत्वाकांक्षा का भी प्रभाव पड़ता है। बाल अपराधी वह है जो समाज के नियमों तथा कानूनों का उल्लंघन इस प्रकार करते हैं कि वह विभिन्न असामाजिक गतिविधियों में लिप्त हो जाते हैं।

हैली के अनुसार एक बच्चा जो सामान्य व्यवहार के प्रस्तावित मानकों से भिन्न व्यवहार करता है अपराधी बालक कहलाता है। जैविकीय दृष्टिकोण के अनुसार बालक के स्नायुमण्डल में किन्हीं प्रकार की गड़बड़ियां होने पर वह असमाजिक व्यवहार करने लगता है। अत: असामाजिक व्यवहार करना जन्मजात होता है।

नोट

उपर्युक्त दृष्टिकोणों के अनुसार बाल अपराधी के व्यवहार का विश्लेषण करने पर निम्न बातें प्रमुख है।

1. अपराधी बालक असामाजिक गतिविधियों में लिप्त रहते हैं तथा सामाजिक मानकों का उल्लंघन करते हैं।
2. बाल अपराधी एक किशोर होते हैं जो लगभग 12 वर्ष से 21 वर्ष की आयु के मध्य होता है।
3. उनकी असामाजिक गतिविधियां इतनी अधिक होती है कि उनके प्रति कानूनी कार्यवाही आवश्यक होती है।
4. इन्हें किशोर बन्दीगृहों में रखा जाता है।

अपराधी क्रियाओं के प्रकार – भारतीय संविधान के परिपेक्ष्य में बाल-अपराध में वे सभी व्यवहार आ जाते हैं जिनमें सामाजिक, नैतिक मूल्यों की अवहेलना की जाती है अथवा राष्ट्रीय बाल अधिनियम 1920, 1924, 1948, 1960 और 1978 का उल्लंघन होता है।

1. अर्जन करने की प्रवृति
2. धोखा धड़ी
3. उग्र प्रवत्तियां
4. बचाने या भागने की प्रवृति
5. यौन अपराध

बाल अपराध के कारण

बाल अपराध के मनोवैज्ञानिक, व्यक्तिगत, सामाजिक और आर्थिक कारक होते है।

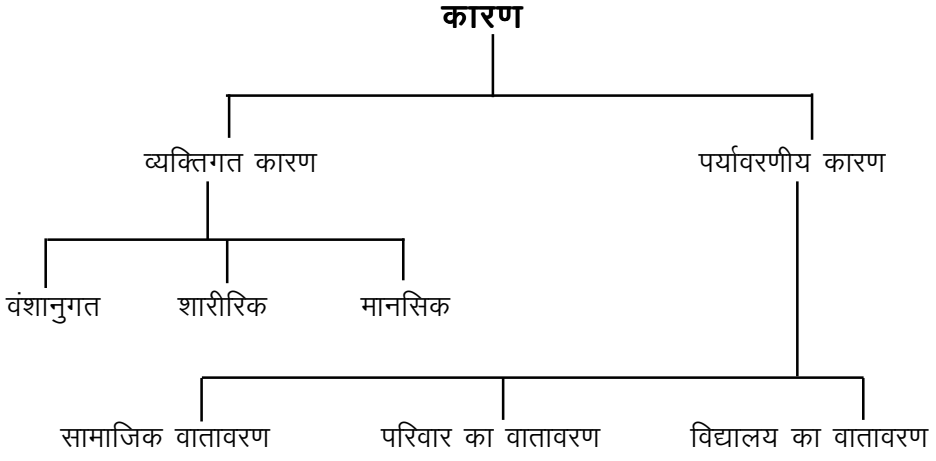

नोट

व्यक्तिगत कारण

शारीरिक कारक	**वंशानुगत कारक**	**मानसिक कारक**
1. शारीरिक संरचना		1. बौद्धिक कारक
2. शारीरिक दोष		2. संवेगात्मक निर्बलता
3. पैतृक दोष		3. मानसिक रोग
4. अविकसित शरीर		4. मनोस्नायु विकृति
5. कम विकसित शरीर		5. हीन भावना
6. गम्भीर बिमारी		

वातावरणीय कारक

परिवार का वातावरण	**विद्यालय का वातावरण**	**समाज का वातावरण**
(1) भग्न परिवार	(1) विद्यालय का संवेगात्मक वातावरण	1) आर्थिक असमानता
(2) दूषित अनुशासन	(2) विद्यालय की स्थिति	2) गन्दी बस्तियाँ
(3) असुरक्षा या अत्यधिक सुरक्षा	(3) अनुशासन का अभाव	3) बेरोजगारी
(4) अनैतिक परिवार	(4) शिक्षकों द्वारा पक्षपातपूर्ण व्यवहार	4) बुरी संगति
(5) सामाजिक आर्थिक स्थिति	(5) पुस्तकालय तथा अन्य खेल की सुविधाओं का अभाव	5) अपराधी क्षेत्र
(6) माता पिता का चरित्र	(6) निर्देशन सेवाओं का अभाव	
(7) माता पिता की अभिवृत्ति		
(8) नौकरों की संगति		

बाल अपराध के उपचार – बाल अपराध एक सामाजिक समस्या है अतः इसके उपचार करते समय दो बातें प्रमख हैं– (1) जो बाल अपराधी है उनका उपचार करना (2) ऐसी शिक्षा तथा क्रिया करवाना जिससे वे पुनः अपराध में लिप्त न हो।

मनोवैज्ञानिक विधियाँ – इसमें निरीक्षण करके अपराध की मात्र का पता लगा कर अपराधी को निम्न विधियों द्वारा ठीक करने का प्रयास किया जाता है।

(1) पुनः शिक्षा – इसमें शिक्षा का उद्देश्य केवल पढ़ना लिखना ही नहीं वरन् समस्या के प्रति जानकारी देकर आत्म का निर्माण करना है।

(2) अनिर्देशित विधि – इसमें बालक को अपनी दमित इच्छाओं और संवेगों को व्यक्त करने का अवसर दिया जाता है।

(3) प्रोत्साहन – इसमें बाल अपराधी को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि वह भविष्य में इस प्रकार का अपराध नहीं करेगा।

(4) वातावरणीय उपचार – इस विधि में बालक के परिवार तथा सामाजिक वातावरण में सुधार लाने का प्रयास किया जाता है।

(5) सुझाव और परामर्श– इसमें बाल अपराधियों को सकारात्मक सुझाव देकर उन्हें सही रास्ते पर लाया जाता है तथा परामर्श के द्वारा उनके परम अहम् को सुदृढ़ किया जाता है।

नोट

मादक-द्रव्य व्यसनी बालक

मादक द्रव्यों का सेवन प्राचीन काल से किसी-न-किसी रूप में किया जा रहा है। प्राचीन काल में सामाजिक और धार्मिक उत्सवों में इन पदार्थों का सेवन किया जाता था। भारतवर्ष में लगभग 2000 वर्ष पूर्व भांग व चरस का सेवन किया जाता था। आधुनिक समाज के प्रत्येक वर्ग में मादक पदार्थो के सेवन की लत बढ़ रही है। मादक द्रव्य से तात्पर्य उन द्रव्य तथा औषधियों से है जिनका उपयोग नशा, उत्तेजना, उर्जा तथा प्रसन्नता के लिए किया जाता है। चरस, गांजा, भांग, अफीम, कोकीन आदि का सेवन करने वाले को मादक द्रव्य व्यसनी कहा जाता है। जिन मादक पदार्थों का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है उन्हें मुख्य रूप से छः श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

1. शराब
2. शामक पदार्थ
3. उत्तेजक पदार्थ
4. तन्द्राकर पदार्थ
5. भ्रमोत्पादक पदार्थ
6. निकोटीन

मादक द्रव्य व्यवसन के कारण – मादक द्रव्यों का प्रयोग किसी भी स्तर पर हो सकता है परन्तु यह सबसे अधिक किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था में पायी जाती है। इसके प्रमुख निम्नलिखित कारण है–

1. अधिकांश लोग मादक द्रव्यों का सेवन प्रारम्भ में दर्द को दूर करने के लिए करते हैं।
2. अधिकांश युवा वर्ग मादक पदार्थों का प्रयोग अपने भ्रम प्रभाव में करते है जिससे वे संसार की सत्यता से अपने को दूर करके एक कृत्रिम संसार स्थापित कर सके।
3. कभी-कभी बेराजगारी, अनिश्चित भविष्य, पारिवारिक परेशानियों, लिंग (Sex) परेशानियों आदि के कारण मादक पदार्थों का सेवन प्रारम्भ कर देते हैं।
4. मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मादक पदार्थों का सेवन हीन भावना से बचने के लिए, किशोरावस्था में उत्पन्न तनाव को दूर करने के लिए, अवसाद को शांत करने आदि के लिए करते हैं।
5. दूषित सामाजिक वातावरण, भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, पक्षपात जिसके कारण युवावर्ग ठीक प्रकार से शिक्षा एवं रोजगार नहीं प्राप्त कर पाते हैं तथा कुण्ठा का शिकार हो जाते है, मादक पदार्थों का सेवन प्रारम्भ कर देते है।

6. माता-पिता का उचित नियन्त्रण न हो, दोनों माता-पिता का कार्यरत होना, संयुक्त परिवार का अभाव, परिवार का उच्च अथवा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के कारण बालक मादक पदार्थों का सेवन करना प्रारम्भ कर देते है।

नोट

7. संगति के प्रभाव के कारण भी किशोर या युवा मादक पदार्थों का सेवन करते है।

मादक द्रव्य व्यसन के परिणाम – मादक पदार्थों का अत्यधिक सवेन करने से स्वास्थ्य में अचानक गिरावट आ जाती है। भूख कम लगती है तथा इन लोगों में विभ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। व्यक्ति अपने जीवन मूल्यों तथा सामाजिक मूल्यों को भूल जाता है। **विक्टर हार्सले** ने अपने अध्ययन में यह पाया कि मादक द्रव्यों के प्रभाव से व्यक्ति में सनकीपन, चर्मराग, हृदयरोग, लीवर की समस्या उत्पन्न हो जाती है। जिससे उनका व्यक्तिगत अपराधी, तनावग्रस्त तथा अकर्मण्य हो जाता है। मादक पदार्थों के सेवन से झूठ बोलना सीख जाता है तथा उलझन भरा स्वभाव हो जाता है। ये बालक विद्यालय से अधिकांश अनुपस्थित रहते है तथा जब भी संभव होता है पैसा चुराने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं करते हैं। मादक द्रव्यों के सेवन में अधिकांश युवा वर्ग होता है अतः यह सामाजिक विकास में बाधाक होते हैं। मादक पदार्थों के दुरूपयोग के परिणाम स्वरूप दंगे, हत्यायें, बलात्कार, अपहरण, अभद्रता, अनैतिक कार्य तथा व्यवहार बढ़ते जा रहे हैं।

निरोधक उपाय

मादक पदार्थों के व्यसन की समस्या गम्भीर रूप धारण कर चुकी है। वर्तमान समय में सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि इसके शीघ्र रोकथाम, समय से नियन्त्रण तथा इन्हें पुनः सामान्य जीवन जीने की तकनीकों तथा विधियों का ज्ञान सबको दिया जाए। शिक्षा को एक सशक्त साधन के रूप में प्रयोग कर अभिभावकों, सरकार, गैरसरकारी संस्थाओं (NGOs) तथा निर्देशन कर्त्ताओं को इस बढ़ती हुयी समस्या को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम अभिभावकों को परिवार का वातावरण स्वस्थ तथा स्थायी रखने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि इस प्रकार के व्यवहार का एक प्रमुख कारण प्यार की कमी होता है। शिक्षक को विभिन्न स्तरों जैसे स्कूली छात्रों, कालेज तथा विश्वविद्यालय के छात्रों तथा अन्य युवाओं को मादक पदार्थों के दुरूपयोग की जानकारी देनी चाहिए इसके लिए इस प्रकार के व्यक्तियों की बाते ध्यानपूर्वक सुननी चाहिए तथा एक दोस्त के रूप में सहायता करनी चाहिए। शिक्षण संस्थाओं में पाठ्य सहगामी क्रियाओं पर बल दिया जाना चाहिए जिससे छात्र अपने अवकाश के समय का ठीक प्रकार से प्रयोग कर सके। व्यक्तित्व विकास के कार्यक्रम जैसे नेतृत्व करने का प्रशिक्षण, स्वानुशासन उत्पन्न करने का प्रशिक्षण, साहसिक कार्य एवं युवा कैम्पों की व्यवस्था नियमित रूप से की जाए। चुने हुये क्षेत्रों में व्यापक तथा अधिकांश सर्वेक्षण करना चाहिए जिससे यह पता लग सकेगा कि विभिन्न आयु और समदायों के लोगों में से कौन मादक पदार्थों का सेवन अधिक करते है इन आंकड़ों के आधार पर इनके रोकथाम के लिए कार्यविधि निर्धारित की जा सकती है।

2.10 सारांश

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य समाज में उपलब्ध मानवीय संसाधनों का पूर्ण उपयोग करके व्यक्तिगत कुशलता तथा समाज का विकास करना है। इसके लिए व्यक्तिगत सीमाओं को ध्यान में रखते हुए

विभिन्न प्रकार के विशिष्ट बालक जैसे शारीरिक रूप से विकलांग बालक, प्रतिभाशाली बालक, मानसिक मंद, पिछड़े बालक, सीखने में अक्षम या धीमी गति से सीखने वाले बालक, बाल अपराधी तथा मादक द्रव्य व्यसनी की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। इसके लिए आवश्यकतानुसार उन्हें पहचान कर विशेष विद्यालय, विशेष कक्षाएं, सामान्य कक्षाओं में विशेष व्यवस्था, अलग से कक्षा की व्यवस्था करना, व्यवसायिक शिक्षा प्रमुख है। शिक्षा द्वारा इन बालकों में आत्म विश्वास जागष्टत कर उनके कौशलों का विकास किया जा सकता है। इस इकाई में हमने आपको विशिष्ट बालकों की पहचान तथा उनकी शिक्षा व्यवस्था के बारे में जानकारी देने का प्रयत्न किया है।

नोट

2.11 अभ्यास कार्य

1. आप अपने विद्यालय या आस पास के किसी विशिष्ट बालक का चयन कीजिए जिसका आप सुधार करना चाहते हो। चयनित बालक की विशेषताएं लिखिए तथा उसके आधार पर उसे किस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था देने के लिए कहेंगे स्पष्ट करें।

2.12 संदर्भ पुस्तकें

- डॉ. एस.पी. गुप्ता : शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- डॉ. आर.एन. सिंह : आधुनिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मदिंर आगरा -2
- डॉ. अरूण कुमार सिंह : आधुनिक मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना
- डॉ. पी.डी. पाठक : शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मदिंर आगरा - 2
- सिंह, अरूण कुमार (2002) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पिलकेशंस

नोट

अध्याय-3

व्यक्तित्व का मूल्यांकन

(Structure)

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 व्यक्तित्व मापन का अर्थ
3.4 व्यक्ति को मापने की विधियाँ
3.5 व्यक्तित्व मापने की विधियों के प्रकार
3.6 व्यक्तिगत विधि
3.7 वस्तुनिष्ठ विधियाँ
3.8 प्रक्षेपी विधि
3.9 व्यक्ति परीक्षण के प्रमुख मुद्दे
3.10 सारांश
3.11 अभ्यास प्रश्न
3.12 संदर्भ पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी योग्य होंगे–

- व्यक्तित्व मापन का अर्थ समझ सकेंगे;
- व्यक्तित्व को मापने की विभिन्न विधियों को जान पायेंगे एवं उनका उपयोग कर सकेंगे;
- व्यक्तित्व परीक्षण के प्रमुख मुद्दों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी।
- व्यक्तित्व विभिन्नता की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

विगत अध्याय में व्यक्ति के अर्थ एवं व्यक्तित्व के विभिन्न सिद्धान्तों की चर्चा की जा चुकी है। व्यक्ति के प्रकार एवं व्यक्ति को प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा की जा चुकी है। नि:सदेह मनोविज्ञान में व्यक्ति को एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रत्यय स्वीकार किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी व्यक्ति का अत्यन्त महत्त्व है। सीखने वाले एवं सिखाने वाले दोनों ही पक्षों का व्यक्ति शिक्षा प्रक्रिया में सार्थक भूमिका अदा करता है। यही कारण है कि अब शासकों, अध्यापकों एवं छात्रों के व्यक्ति को समझने एवं मापने पर जोर दिया जाने लगा है। प्रस्तुत अध्याय में व्यक्ति मापन के संबंध में चर्चा की गई है।

नोट

3.3 व्यक्तित्व मापन का अर्थ

व्यक्तित्व की माप से तात्पर्य व्यक्ति के शीलगुणों के बारे में पता लगाकर यह निश्चित करना होता है कि कहाँ तक वे संगिठत (organised) हैं या विसंगिठत (disorganised) है। किसी भी व्यक्ति के भिन्न-भिन्न शीलगुण जब आपस में संगिठत होते हैं, तो इससे व्यक्ति का व्यवहार सामान्य होता है। परन्तु यदि उसके शीलगुण विसंगिठत होते हैं तो व्यक्ति का व्यवहार असामान्य (abnormal) हो जाता है। व्यक्ति मापन (personality measurement) के सैद्धान्तिक (theoretical) तथा व्यावहारिक (practical) उद्देश्य है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्तित्व मापन से व्यक्ति के विकास तथा उसके स्वरूप (nature) से संबंधित बहुत से ज्ञान प्राप्त होते हैं जिससे इस क्षेत्र में शोध करने तथा नए नए सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में मदद मिलती है। इस सैद्धान्तिक उद्देश्य (theoretical purpose) के अलावा व्यक्ति मापन के कुछ व्यावहारिक उद्देश्य भी हैं। जैसे व्यक्ति मापन से यह पता चलता है कि व्यक्ति के कौन-कौन शीलगुण की शक्ति (strength) कितनी है और किस शीलगुण की कमी से व्यक्ति को अभियोजन (adjustment) करने दिक्कत हो रही है। अत: व्यक्तित्व मापन करके व्यक्तियों का जिन्हें समायोजन में व्यक्तिगत कठिनाई (personal difficulties) है, उन कठिनाइयों को दूर करने में मदद की जाती है। व्यक्ति मापन का दूसरा प्रमुख अनुप्रयोग नेता का चयन तथा उत्तरदायी (responsible) पदों के लिए सही व्यक्तियों का चयन करने में है।

3.4 व्यक्ति को मापने की विधियाँ

व्यक्तित्व का विशद अर्थ इससे पूर्व के अध्ययन में बताया जा चुका है। जहां तक व्यक्तित्व के मापन का प्रश्न है तो इसके मापने के प्रयास मनुष्य ने तभी से शुरू कर दिए थे, जबसे मानव का इस पृथ्वी पर प्रार्दुभाव हुआ था, तथा यह प्रयास आज तक जारी है। हां इन मापने के प्रयास व प्रकार में समय के अनुसार अवश्य परिवर्तन होते रहे है। आदिम काल में मनुष्य कुश्तियाँ आदि लड़कर शारीरिक क्षमता के आधार पर व्यक्तित्व को नापता था। तत्पश्चात् ज्योतिष व शारीरिक बनावट के आधार पर व्यक्तित्व को मापने का प्रयास किया गया। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को मापने के लिए अनेक विधियों का विकास किया। इनमें से कुछ प्रमुख विधियों का वर्णन इस अध्याय के अन्तर्गत किया जा रहा है।

3.5 व्यक्तित्व मापने की विधियों के प्रकार

इन विधियों को मुख्यत: अप्रक्षेपी तथा प्रक्षेपी विधियों के नाम से दो वर्गों में बांटा जाता है। निम्न चार्ट में से इन विधियों को अधिक स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है।

व्यक्तित्व मापन की विधियाँ

अप्रक्षेपी विधियाँ		प्रक्षेप विधियों
व्यक्तिनिष्ठ प्रविधियाँ	वस्तुनिष्ठ प्रविधियाँ	रोशाइंग ब्लाट टेस्ट
साक्षात्कार	नियंत्रित परीक्षण	टी.ए.टी.
व्यक्तिगत इतिहास	रेटिंग स्केल	सी.ए.टी.
आत्म कथा	शारीरिक परीक्षण	शब्द साहचर्य्र
आटो बायोग्रग्राफी	व्यावहारिक परीक्षण	शब्द साहचर्य

व्यक्तित्व परिसूची
अवलोकन आदि
परिस्थिति परीक्षण
स्वतंत्र सम्पर्क विधि
सोसियोग्राम आदि
वाक्य पूर्ति परीक्षण
स्वप्न विश्लेषण
साइको डामा
चित्र विधि जोड़ा टेस्ट
मोसाइक टेस्ट
क्ले माडलिंग
ग्रग्राफोलाजी

नोट

इन समस्त विधियों का वर्णन एक अध्याय में करना सम्भव नहीं है। अत: प्रमुख विधियों का वर्णन यहाँ पर किया जा रहा है।

3.6 व्यक्तिगत विधि

इस प्रकार की विधि में हम व्यक्ति संबंधी सूचना या तो व्यक्ति से ही स्वयं लेते है या उसके मित्रों या सम्बन्धियों से भी प्राप्त करते है इसको क्रियावित करने के चार ढंग है :

(i) जीवन-कथा या उसका स्वयं का इतिहास।

(ii) व्यक्तिगत इतिहास।

(iii) साक्षात्कार विधि।

(iv) अभिापक प्रश्नावली।

(i) जीवन-कथा या उसका स्वयं का इतिहास – इस विधि के अनुसार जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन करना होता है, मनौवैज्ञानिक कुछ मोटी बातों के आधार पर व्यक्तित्व को कुछ शीर्षक में बाँट देता है और फिर उस व्यक्ति से अपना व्यक्तित्व इतिहास लिखने को कहता है। इसी सूची के आधार पर वह व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में कुछ निश्चित निष्कर्ष निकालता है।

इस विधि में यह कठिनाई है कि भूल ने के कारण व्यक्ति अपनी कुछ मुख्य घटनाओं को भूल जाता है और उनको सविस्तार एवं सही-सही लिख नहीं पाता। इस विधि के द्वारा कुछ अचेतनावस्था में पड़ी हुई इच्छा या आवश्यकताओं का भी हम अनुमान नहीं लगा सकते है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति के व्यवहार या रूझान आदि का भी सत्य रूप में कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इस विधि को हम अन्य विधियों का पूरक कह सकते है। यह अकेली विधि व्यक्तित्व के बारे में हमें कोई निश्चित या सत्य तथ्य नहीं दे सकती।

(ii) व्यक्तिगत इतिहास – इस विधि के अंदर हम बाल्य वातावरण के उन तत्वों तथा वंशानुगत तत्वों का अध्ययन करते हैं जो व्यक्ति के जीवन पर प्रभाव डालते हैं। व्यक्ति की मानसिक रचना को हम उसके परिवार के इतिहास, रीति-रिवाज, धारणाएँ, जन्म लेने का क्रम आदि का सहारा लेकर समझने का प्रयत्न करते है।

इस विधि को प्राय: मानसिक चिकित्सक अपनाते है। मुख्य रूप में साधारणतया जन्म से संसंबंधित, जन्म से पूर्व की परिस्थतियों, माता-पिता का बालक के प्रति व्यवहार, व्यक्ति की बीमारी की घटनाओं का इतिहास आदि का सहारा मानसिक चिकित्सा के लिए देते है।

नोट

(iii) **साक्षात्कार विधि** – जिन मुख्य बातों को हम व्यक्ति के इतिहास से पता नहीं लगा पाते उनका इस विधि के द्वारा साक्षात्कार करने वाला एक योग्य व्यक्ति है तो साक्षात्कार के साथ-साथ वह अनिवार्य सूचनाओं को लिख देता है। यह व्यक्ति के अंदर पहले अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करता है और उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यह व्यक्ति की समस्याओं को समझने में सहयोग प्रकट करता है, साथ ही साथ उसके उत्तरदायित्व को भी समझने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार जितनी भी सूचनाएँ वह प्राप्त करता है, वे व्यक्ति की व्यक्तित्व -संबंधी विशेषताओं को समझने तथा निर्णय करने में सहायक होती है।

साक्षात्कार करने में साक्षात्कार करने वाले को कभी भी निर्णय नहीं देना चाहिए। उसे व्यक्ति संबंधी अपनी पूर्व -धारणा के आधार पर कोई विचार नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि इन विचारों से कभी-कभी बहुत भारी त्रुटि हो जाती है। अपना निर्णय देने से पहले उस व्यक्ति को पूर्ण अवसर देना चाहिए, जिससे वह अपने इतिहास को पुन: दोहरा सके। यों तो साक्षात्कार बड़ी ही अच्छी विधि है, किन्तु यह बहुत ही व्ययपूर्ण है। साथ ही इसमें सबसे बड़ी कमी यह है कि यह व्यक्तिगत विधि है, इसीलिए हम इस पर अधिक विश्वास नहीं कर सकते।

(iv) **अभिापक प्रश्नावली** – इस विधि को हम प्रश्नों की एक प्रश्नावली बनाते है और व्यक्ति से स्वयं इसे भरने का अनुरोध करते है। यह प्रश्नावली विभिन्न प्रकार की होती है। यह प्रश्नावली उनको दे देते है जिनके व्यक्तित्व का अध्ययन करना है।

प्रश्न-प्रश्नावली में साधारणतया प्रश्नों एक सूची होती है, जिसका व्यक्ति को लिखित या हाँ या 'न' में उत्तर देना होता है। यह प्रश्न इस प्रकार तैयार किये जाते है कि उनसे इच्छित जानकारी प्राप्त हो जाती है। व्यक्ति की आरम्भ की परीक्षाओं में वुडवर्थ की 'साइकोन्यूरेटिव इन्वेन्टरी' है। इसमें 115 प्रश्न व्यक्तियों के जीवन से संसंबंधित उन विभिन्न अनुभवों के है जिन्हें व्यक्ति जब वह दूसरे के साथ होता है, प्रत्युत्तरस्वरूप करता है। साथ ही साथ उसके अनुभव भी उसमें सम्मिलित रहते है। विभिन्न व्यक्तित्व-प्रश्नावली में दिए हए प्रश्न निम्न प्रकार के होते है:

(a) क्या आप अपने परिवार के सदस्यों से झगड़ा करते है? (हाँ, नहीं)

(b) क्या आप अक्सर रात को जागते है? (हाँ, नहीं)

(c) क्या आप चिन्ता करते है? (अक्सर, कभी-कभी, कदाचित) या दूसरे प्रकार के प्रश्नों होते है।

(d) क्या आप अपने वैवाहिक संबंध से सन्तुष्ट हैं? (पूर्णरूप से, थोड़े रूप में, बिलकुल नहीं) विषयी से उस एकांशको चिह्न लगाने के लिए कहा जाता है जो करीब-करीब ठीक हो। प्रश्नावली बहुत-से व्यक्तित्व गुणों: जैसे – दुख, प्रभुत्व, सामाजिकता, अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी आदि मालूम करने या उनकी परीक्षा करने के लिए बनायी जाती है। इन परीक्षाओं द्वारा व्यक्ति की रुचि की सीमा भी मालूम हो सकती है, यह प्रश्नावली में इस प्रकार के विभिन्न प्रश्नों को सम्मिलित कर दिया जाय जो व्यक्ति की रुचि या अरुचि के संबंध में हों। इस प्रकार यवसाय आदि के चुनने या उसके बारे में रुचि जानने में भी यह प्रश्नावली सहायक होती है। यह प्रश्नावली विधि के अनुसार हम व्यक्ति के धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक या मौलिक विचारों आदि का भी पता लगाने में सफल हो सकते हैं।

नोट

यह ढंग बड़ा ही उपयोगी है और दु:ख आदि जानने वाली प्रश्नावली आदि में पर्याप्त मात्रा में विश्वनीयता है, किन्तु इसकी वैधता कम होती है। उच्च विश्वसनीयता से हमारा तात्पर्य है कि कसी दूसरी परीक्षा में भी वे ही या उसी प्रकार के उत्तर प्राप्त हों। ऐसी कुछ विशेष प्रकार की प्रश्लावलियों में पाया जाता है, परन्तु इस प्रश्नावली विधि द्वारा सदैव व्यक्ति से सत्य उत्तर प्राप्त नहीं किये जा सके। अक्सर व्यक्ति सत्यता को छिपा लेते है या झूठ उत्तर दे देते हैं, अत: उनकी वैधता निम्न होती है।

वैधता और विश्वसनीयता से हमारा क्या तात्पर्य है?

विश्वसनीयता और वैधता के बारे में थोड़ा-सा वर्णन हम पहले कर चुके है। ज्ञान-वर्धन हेतु शेष तथ्य निम्न भाँति है :

1. मापने का यन्त्र तभी वैध कहा जाता है, जबकि प्राप्त सूचनाएँ सत्य हों।
2. मापने का यन्त्र विश्वसनीय तभी हो सकता है, यदि प्राप्त सूचनाएँ उसी प्रकार की किसी दूसरी परीक्षा से भी प्राप्त हों या उसी प्रकार की हों।

इसका तात्पर्य यह है कि प्रश्नावली आदि के समान किसी विधि की मान्यता तभी हो सकती है जबकि वह उन सभी गुणों की सत्य सूचना दे जिसके लिए उसको तैयार किया है: उदाहरण के लिए, यदि प्रश्न संख्या-पत्र का उद्देश्य यह मापन करना है कि व्यक्ति आत्म-केन्द्रित, चिन्तित या उत्सुक है तो यदि यह इसको सत्य रूप में मापता है, अर्थात् व्यक्ति के अंदर, उतनी ही मात्रा में चिन्ता है जितनी कि प्रश्नावली द्वारा पता चलती है, तो हम कह सकते है कि यह प्रश्नावली मानवीय है। एक विश्वसनीय यन्त्र से तात्पर्य यह है कि एक अवसर पर प्रश्नावली मे दिए गए उत्तर एक दूसरी दी गई प्रश्नावली या उस प्रकार की प्रश्नावली में दूसरी अवसर पर दिये गये उत्तर भी समान हों। उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति कहता है कि वह अक्सर चिन्तित रहता है और उसी प्रकार के प्रश्नों में उसी प्रकार के उत्तर दूसरे अवसर पर भी देता है तो इस प्रकार का यन्त्र विश्वसनीय कहा जायेगा।

व्यक्तिगत विधि के दोष

व्यक्तिगत विधि में बहुत से दोष है इनमें से मुख्य इस प्रकार है –

(i) **वे विषयीगत होती है** – अर्थात् उस व्यक्ति पर निर्भर होती है, जिसके व्यक्तित्व का अध्ययन किया जा रहा है, और वह व्यक्ति कुछ तथ्यों को छिपा सकता है।

(ii) **वे अविश्वसनीय होती है**– अर्थात् व्यक्ति सामान्य रूप से समान उत्तरों को नहीं देते। वे एक-एक बात को कहते है, और दूसरे, क्षण पर दूसरी बात कहते है।

(iii) **उनमें वैधता कम होती है** – अर्थात् जो भी सूचना हम व्यक्ति की सहायता से प्राप्त करते है वह हमेशा सत्य नहीं होती। वे सत्य बात को छिपा लेते हैं और उत्तर में उस उत्तर को देते है जिसमें सामाजिक रूप से मान्य होता है। उदाहरण के लिए, बहुत थोड़े लोग इस बात को स्वीकार करेंगे कि उसमें समानलिंग भावना जीवन में किसी भी अवसर पर थी।

(iv) **ये चेतन मस्तिष्क की बातें बताती है** – ये विधियाँ व्यक्ति के अचेतन मस्तिष्क के बारे में कोई भी बात नहीं बतातीं, जबकि व्यक्ति के मस्तिष्क का 9/10 भाग अचेतन है और व्यक्ति पर वृहत् प्रभाव डालता है।

3.7 वस्तुनिष्ठ विधियाँ

नोट

व्यक्तित्व मापन की वस्तुनिष्ठ विधियां

यह विधियां व्यक्ति के बाह्य व्यवहार पर आश्रित होती हैं तथा व्यक्ति के स्वयं के वर्णन पर मुख्य रूप से आधारित नहीं होती है। यह विधियां वैज्ञानिक होती हैं तथा इनमें वस्तुनिष्ठता होती है। इस वर्ग की प्रमुख विधियाँ निम्न है:-

(अ) **अनियंत्रित परीक्षण** – अवलोकन तथा नियंत्रित परीक्षण मे मुख्य अंतर यह है कि अवलोकन में मुख्यत: ज्ञानदेन्द्रियों का ही प्रयोग होता है, तथा इसके लिए किसी विशिष्ट प्रयोगशाला की भी आवश्यकता नहीं होती है। जबकि नियंत्रित परीक्षण विधि का सफल प्रयोग मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में ही होता है तथा इस विधि में प्रयोगशाला की नियंत्रित परिस्थितियों के मध्य एक कुशल मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है।

(ब) **रेटिंग स्केल** – इस विधि में बालक के व्यक्तित्व के लक्षणों को जानने के लिए उसके सम्पर्क में रहने वाले व्यक्तियों से बालक के व्यक्तित्व के किसी लक्षण पर अपने विचार प्रकट करने के लिए कहा जाता है। उदाहरण के लिये यदि आप किसी बालक के सत्य बोलने की गुण की परीक्षा करना चाहते हैं तो उसका मापदण्ड निम्न प्रकार से बन सकता है। आप है -

पूर्ण सत्य	साधारण सत्य	औसतन कभी-कभी	कभी न	
बोलने वाले	बोलने वाले	सत्य बोलने	सत्य बोलने	सत्य बोलने
		वाले	वाले	वाले

इन विभागों में जिस विभाग पर अधिक लोग निशान लगाते है। बालक को उसी वर्ग का माना जाता है।

वास्तव में इस विधि का सूत्रपात पैकनर ने किया तथापि प्रथम रेटिंग स्केल साल्टन ने 1983 में प्रकाशित किया। रेटिंग स्केल का प्रथम व्यवस्थित प्रयोग बायस महोदय ने 1915 में किया था। परन्तु इसके रूप का वास्तविक विकास सर्वप्रथम "स्काट कम्पनी लेबोरेटरी" ने किया। अब तो यह मापण्ड अत्यन्त लोकप्रिय है तथा इनका व्यापक रूप से प्रयोग होता है।

1. **रेटिंग स्केल के प्रकार** – यद्यपि रेटिंग स्केल कई प्रकार के होते है इनमें से निम्न प्रकार विशेष उपयोगी है –

संख्यात्मक मापदण्ड – विधि में परिभाषत अंको को खण्डश: निश्चित उद्दीपकों के साथ संबंधी कर देते हैं तथा इस विधि से व्यक्ति को अपने गुणों के अनुसार अंक मिल जाते हैं जैसे स्त्री सौन्दर्य का संख्यात्मक मापदण्ड हो सकता है। सर्वाधिक सुंदर अत्यन्त सुंदर सामान्य कुरूप अत्यन्त कुरूप सर्वाधिक कुरूप

रेखांकित मापदण्ड – इसमें एक लम्बी रेखा के नीचे खण्डश: गई विवरणात्मक विश्लेषण या वाक्यांश लिखे दिये जाते है।

प्रमाणित मापदण्ड का वर्गक्रम – वर्गक्रम मापक जिनमें निर्णायक के समक्ष अपने प्रमाण या मानक प्रस्तुत कर दिये जाते हैं, जैसे – हस्तलेखन मापदण्ड या मनुष्य का मनुष्य से मिलान।

संचयी अंक विधि से वर्गक्रम – इस विधि में कई विवतरण पदों का प्रयोज्य का मूल्यांकन करके अंक प्रदान किये जाते हैं तथा इन अंको के कुल योग के आधार पर प्रयोज्य के व्यक्तित्व के बारे में निर्णय लिया जाता है। पर इसमें अंक वस्तुनिष्ठ कसौटी के आधार पर न दिए जाकर केवल निर्णय

नोट

के आधार पर दिए जाते है। अनुमान लगाने की विधि इसी के अन्तर्गत आती है।

बलात् विकल्प वर्गक्रम – इस विधि का प्रयोग सर्वप्रथम सैन्य अफसर का मूल्यांकन करने के लिए किया गया। इस विधि में लक्षणों के जोड़े दिए जाते हे और निर्णायक से यह बताने के लिए कहा जाता है कि निर्णय किए जाने वाले व्यक्ति के संबंध मे इन दोनों लक्षणों में कौन-सा सही है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति के लिए चार विकल्प दिए गये जैसे- गम्भीर, उत्साह, लावरवाही, असभ्य। इसमें निर्णायक को बताना होता है कि कौन-सा लक्षण व्यक्ति के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं, और कौन-सा सबसे कम। फिर एक फलांक कुंजी के आधार पर गणना कर ली जाती है।

रेटिंग स्केल की संरचना के लिए कुछ सुझाव-

– पदों की संख्या पहले से तय कर ली जानी चाहिए। साइमण्ड के अनुसार 7 वर्ग आदर्श संख्या है।

– निर्णय करने के लिए उपयुक्त गुणों का चयन होना चाहिए।

– रेटिंग स्केल के कथनों को वस्तुनिष्ठ होना चाहिए।

– कथन पूर्णतया एवं वस्तुनिष्ठ रूप से परिभाषित होने चाहिए।

(स) शारीरिक परीक्षण – शारीरिक परीक्षण विधि में अनेक यंत्रों की सहायता से व्यक्तित्व के शारीरिक लक्षणों का अध्ययन किया जाता है। सामान्यत: व्यक्तित्व के शारीरिक परीक्षण हेतु निम्न यंत्रों का प्रयोग करते हैं।

प्लेन्थी सोमोग्राफ – इस यंत्र के द्वारा रक्त का दबाव मालमू किया जाता है।

इलेक्ट्रो– काडियो ग्राफ – इसके द्वारा हृदय की गति मापी जाती है।

स्फीग्मोग्राफ – इसके यंत्र के द्वारा प्रयोज्य की नाडी की गति मापी जाती है।

न्यूमोग्राफ – उसके द्वारा व्यक्ति की सांस लेने की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

सइको गैलविनोमीटर – सांवेगिक परिवर्तनों का अध्ययन इस यंत्र द्वारा किया जाता है।

व्यक्तित्व के मापन में अन्य शारीरिक परीक्षण का भी प्रयोग होता है- जैसे मस्तिष्क तरंग का मापन तथा रसपाक परिवर्तन आदि।

(द) प्रश्नावली – व्यक्तित्व की विभिन्न विशेषताओं का पता लगाने की यह एक लिखित विधि है। प्रश्नावली का प्रयोग जब हम व्यक्तित्व की विशेषताओं का पता लगाने के लिए करना चाहते हैं तो पहले व्यक्तित्व से संबंधित कुछ प्रश्न तैयार कर लेते हैं। इन प्रश्नो के उतर प्रयोज्य को हां, नहीं या अनिश्चित में देने होते हैं। उदाहरण के लिए यदि प्रयोज्य के व्यक्तित्व के एक गुण संवेगात्मक अस्थिरता का पता लगाना है, तो प्रश्नावली में कुछ प्रश्न इस प्रकार रखे जा सकते है –

– क्या आप को अक्सर बुरे स्वप्न दिखाई देते ह? हां / नहीं / अनि.

– क्या आप गपशप लगाना पसंद करते हैं? हां / नहीं / अनि.

– क्या आप विपरीत योनि के व्यक्ति से बात करने में घबराते है? हां / नहीं / अनि.

– क्या आप कोई कार्य प्रारम्भ करके उसे बीच में ही छोड़ देते हैं? हां / नहीं / अनि.

प्रश्नावली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका एक साथ प्रयोग बड़े समूह पर भी किया जा सकता है। परतु इसके साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि इसका प्रयोग केवल पढ़े लिखे लोगों पर ही हो सकता है।

व्यक्तित्व प्रश्नावलियों का वास्तविक प्रारम्भ 1918 में बुडवर्थ द्वारा किया गया उसके पश्चात् वर्नरिटर बेल प्रेस, आलपोर्ट, एम.एम.पी.आई. आदि व्यक्तित्व की प्रश्नावलियाँ काफी प्रसिद्ध रहीं। कुछ व्यक्तित्व मापन की प्रमुख प्रश्नावलियाँ की सूची यहाँ पर दी जा रही है।

नोट

नाम	स्तर	प्रकाशक	विश्वसनीयता	विशेष
ब्लैक की प्रश्नावली	हाइ स्कूल	स्टेनफोड युनि	.94	स्कूल संगठन के छात्रों के अभियोजन का मापन
ब्राउन की बच्चो	4 से 9	साइक्लोजिकल कार्पोरेशन	.90	गृह स्कूल शारीरिक लक्षण असुरक्षा आदि के आधर पर फलांक्र
लिंग की सूची	4 से 13	साइक्लोजिकल कार्पोरेशन		आत्मनिर्भरता, विपरीत योनि से सामंजस्य आदि का मापन
मेलर की सदाचार	प्रौढ़ व्यक्ति	कोलम्बिया	93.94	शब्द देकर व्यक्ति की प्रतिक्रिया ली जाती है
रोजर्स व्यक्तित्व आयोजन सूची	9 से 13 वर्ष	वि. एसोसिएशन प्रेस- न्यूयार्क	.70	हीनभावना, पारिवारिक सामाजिक, सामंजस्य दिवास्वप्न आदि के आधार पर फलांकन

प्रश्नावली की सीमाएँ

(1) प्रश्नावली में सबसे बड़ी कठिनाई भाषा की है।

(2) प्रयोज्य कुछ बातें पर लिखित रूप से अपनी राय व्यक्त करना पसंद नहीं करते हैं।

(3) प्रश्नावली के द्वारा किसी समस्या के पीछे छिपे कारण का पता नहीं चल पाता है।

(4) इन प्रश्नावलियों का निदानात्मक महत्व अधिक नहीं है।

(5) प्रयोज्य प्राय: प्रश्नों का उत्तर गम्भीरता से नहीं देते है।

(य) व्यावहारिक परीक्षण – इस प्रकार के व्यक्तित्व परीक्षण में यह देखा जाता है कि बालक अपने दैनिक जीवन में वास्तव में किस प्रकार का व्यवहार करते हैं उदाहरण के लिए एक मनोवैज्ञानिक कुछ बालकों को संग्रहालय में घुमाने के लिए ले जाता हैं। बालकों को स्वतंत्र रूप से बिना किसी रोक-टोक के संग्राहलय की विभिन्न वस्तुओं को देखने के लिए कहा जाता है। प्राय: यह देखने में आता है कि कुछ बच्चे एक वस्तु को देखकर तुरन्त दूसरी और देखना शुरू कर देते हैं, जबकि कुछ बालक एक वस्तु को ध्यान पूर्वक देखने के पश्चात ही आगे दूसरी वस्तुओं को देखते हैं। यह गुण इन बालकों की अन्तर्मुखी प्रकृति को इंगित करते हैं।

(र) परिस्थिति परीक्षण – परिस्थिति परीक्षणों में किसी विशिष्ट परिस्थिति में प्रयोज्य की कोई कार्य करना होता है, तथा उसे यह पता नहीं चल पाता है कि उसकी किस क्रिया का अवलोकन किया जा रहा है यह परीक्षण मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं –

– दिन प्रतिदन जीवन के परीक्षण।

– प्रत्याबल परीक्षण

नोट

– **दिन प्रतिदिन जीवन के परीक्षण** – इस श्रृंखला में हार्नशोन तथा ने सन 1928 में अपने प्रवचन संबंधी अध्ययन मे "सेवा तथा आत्म नियंत्रण संबंधी अध्ययन तथा 1930 में "चरित्र गठन संबंधी अध्ययन" प्रकाशित किए। दिन प्रतिदन जीवन के प्रशिक्षण में वार्टसन का ईमानदारी का परीक्षण करने का निम्न टेस्ट काफी प्रसिद्ध रहा है।

"हार्टशोन तथा बच्चों की ईमानदारी का प्रशिक्षण करने के लिए एक कमरे मे एक सन्दूक रखा। इसके पश्चात उन्होंने बालकों से कहा कि तुम सब कमरे म रखखे हुए सदकू मे कुछ पैसे डाल आओ क्योंकि यह पैसे गरीबों को दिये जायेंगे। जब परीक्षण आरम्भ हुआ तो मनोवैज्ञानिकों ने एक छोटे से छेद से चुपके से देखा कि कुछ बच्चे तो सड़क में पैसे डाल आते थे लेकन कुछ बालक ऐसे थे जो पैसे डालने के बजाए सन्दूक से पैसे निकाल लिये।

इसी श्रृंखला में प्रतिलिपि विधि, दोहरा परीक्षण विधि, असम्भावित निष्पित्त विधि आदि अन्य परीक्षण काफी प्रसिद्ध है।

प्रत्याबल **परीक्षण** – इन परीक्षणों में किन्हीं विशिष्ट परिस्थितयों मे प्रयोज्य में चिंता या अय संवेगात्मक बाधाएं उत्पन्न करते है तथा फिर देखा जाता है कि इन परिस्थितयों मे प्रयोज्य का कैसा व्यवहार रहता है। मुख्यत: इनका प्रयोग सैनिकों के चुनाव के लिए द्वितीय विश्व युद्ध के समय अमेरिका में किया गया। इस श्रृंखला में टूटी दीवार या घाटी को सीमित उपकरणों से पार करना अथवा अन्य कोई कठिन कार्य करवाना जिसमें साथ के लोग सहायता नहीं करते हैं तथा प्रत्याबल साक्षात्कार लेना आदि प्रमुख है।

(ल) स्वतंत्र सम्पर्क विधि – इस विधि में मनोवैज्ञानिक पहले प्रयोज्य के साथ मिल जुलकर मित्रता का वातावरण तैयार करता है। तत्पश्चात् वह प्रयोज्य से मिलजुलकर बातचीत करता है तथा प्रयोज्य से अपने विचार स्वतंत्रतापूर्व प्रकट करने के लिए कहता है क्योंकि जब तक प्रयोज्य परक को अपना हित चिन्तक मानता है, अत: वह अपनी मन की गाँठे परीक्षक के सामने खोल देता है यदि वह किसी बात को छुपाना चाहता है तो परीक्षक प्रयोज्य के मन में विश्वास जमाकर उन्हें निकलवाने का प्रयास करता है।

(व) समाजमिती – इस विधि का विकास सन् 1934 में मुरेनो ने किया था जिसके द्वारा बालक की सामाजिकता आँकी जाती है। इसके द्वारा समूह में नेतृत्व, गुटबन्दी आदि का पता चल सकता है। इस पद्धति में किसी समूह के सदस्यों से किसी विशेष गुण की दृष्टि से अपने साथियों का चुनाव करने को कहा जाता है। समूह के प्रत्येक सदस्य को ये बताना या लिखना होता है किसी विशेष क्षेत्र में उसकी पहली दूसरी और तीसरी पसन्द का साथी कौन होगा? इस प्रकार सही विधि द्वारा समूह का सबसे लोकप्रिय सबसे कम लोकप्रिय तथा समूह से अलग-थलग पड़े सदस्यों या बालकों का काफी आसानी से पता चल जाता है।

व्यक्ति के बाह्य व्यवहार पर आश्रित होती है। ये व्यक्ति के स्वयं वर्णन पर मुख्य रूप से आधारित नहीं होती है, वैज्ञानिक होती है और इनमें वस्तुनिष्ठता होती है। वस्तुनिष्ठ विधियों में (i) नियन्त्रित निरीक्षण, (ii) व्यक्तिगत गुणों का मूल्य निर्धारण या अन्य के द्वारा, अनुमानांकन मापदण्ड द्वारा व्यक्ति

नोट

के व्यवहारों का निराकरण या व्यवहार के लिए अन्य पूर्व-कारणों की स्मृति, (iii) शारीरिक परिवर्तन, जो व्यक्तित्व की और संकेत करते है, और (iv) मौखिक व्यवहार द्वारा व्यक्तित्व अध्ययन आते हैं। ये सब विधियाँ पूर्णरूप से वस्तुनिष्ठ नहीं होती जैसे- निर्धारण मापनी को कभी-कभी हमें व्यक्तिगत विधियों में भी सम्मिलित कर लेते है, किन्तु उचित सावधानी बरतने से उनमें वस्तुनिष्ठता भी आ जाती है। अत: इस विवाद के आधार पर यहाँ हम उन्हें वस्तुनिष्ठ परीक्षण में सम्मिलित करते है। अब हमें इन परीक्षाओं पर क्रमानुसार विचार करना चाहिए –

(i) **नियन्त्रित निरीक्षण** – इस विधि का सफल प्रयोग मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में हो सकता है। इस विधि में प्रयोगशाला की नियन्त्रित परिस्थतियों के मध्य एक कुशल मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन करता है। इस विधि को भी पूर्णरूप से विश्वसनीय नहीं कह सकते, क्योंकि बहुत-सी कठिनाइयाँ है जो विश्वसनीयता पर प्रभाव डालती है। उनमें से कुछ इस प्रकार है – (i) निरीक्षण के समय की लम्बाई, (ii) निरीक्षण की संख्या, (iii) उस सीमा का ज्ञान जिस तक परीक्षक व्यक्तित्व के उस गुण का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर सके, (iv) परिस्थिति में बाह्य तत्व बीच में बाधा डालते है, (v) यह सत्य है कि निरीक्षण एक परिस्थिति में एक विशेष गुण की कार्यशीलता को स्पष्ट करता है।

(ii) **निर्धारण मापनी** – वास्तविक रूप से यह व्यक्तित्व मापन का वस्तुनिष्ठ ढंग नहीं है। निर्धारण-मापनी वह विधि है जो व्यक्तित्व के गुणों का अनुमान लगाने के लिए है, जो साधारण मापन से अधिक सही परिणाम प्रस्तुत करती है।

लगभग सभी व्यक्तित्व की विशेषताएँ निर्धारण-मापनी द्वारा पता लगाई जा सकती है, किन्तु इनमें गुणों को प्रदर्शित करने की एक सीमा भी हो सकती है, जिसके इस मापनी की विश्वसनीयता में अन्तर न पड़ सके।

सबसे अधिक साधारण रूप से मापना हों, नहीं के उत्तरों के रूप में होता है जैसे-ये प्रश्न है-क्या आप उसे कंजूस समझते हैं? क्या वह अपने मित्रों को प्यार करते हैं? ''

इस मापनी पर प्राप्तांकों को हम प्रतिशत में प्रकट कर सकते है। सबसे अधिक प्रसन्नता वाले व्यक्ति 100 प्रतिशत प्रसत्र कहे जाते हैं। साधारण व्यक्ति 50 प्रतिशत, निम्न 0 प्रतिशत। अकिधतर जिस मापनी को हम व्यक्तित्व के गुणों को मालूम करने के लिए प्रयोग करते है, उसमें 5 से 10 तक खण्ड होते है। इसका तात्पर्य है कि यह मापनी एक विशेष गुण को 5 खण्ड में 0 से 5 या 9 दशाओं का वर्णन करते है। 1 और 4 निम्न या उच्च, 2 उसके लिए जो औसत से कम और 3 जो औसत से ऊपर है।

इस प्रकार की निर्धारण-मापनी का एक उदाहरण नीचे दिया गया है :

उत्तम	औसत से अधिक	औसत औसत से कम	बहुत कम	अपने मूल्यकरण को इस इस वर्ग में रिखए।
(बहुत ईमानदार)	(ईमानदार)	(समय पर ईमानदार)	(बेईमान) बेईमान)	(बिलकुल

दूसरे प्रकार का मापन जो अधिक उपयोगी होता है और सुविधाजनक भी है, वह रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित मापन होता है। परीक्षण रेखा द्वारा बिन्दु या निशान उस जगह के रक्त स्थान लगा देता है जो मापन में उस गुण के लिए छोड़ा जाता है। कभी-कभी रेखा को हम विभिन्न इकाइयों में बाँट

देते है और मूल्य का निर्धारण वर्णन के अनुसार करते है और तब उसी के अनुसार रेखा में निशान लगाते है, एक उदाहरण दिया जा रहा है जो कार्य करने वाले कर्ता की कार्य-शक्ति के संबंध में है।

मन्द रुचि रहित औसत रुचिपूर्ण परिश्रमी

नोट

औसत व्यक्ति, किसी भी गुण में रेखा के मध्य पर होता है। कभी-कभी मापनी निर्धारक अपनी उदारता की त्रुटि के कारण या परिचायक संबंध के कारण औसत में ही व्यक्तियों को रखने पसंद करते है। कभी-कभी एक मापन निर्धारक दूसरे से अधिक उदार होता है तब और भी अधिक समस्या हो जाती है। किन्तु इस त्रुटि को दूर करने के लिए हम सांख्यिकी के नियम का प्रयोग कर सकते है।

दूसरे त्रुटि को हम परिवेश प्रभाव कहते है। यदि कोई व्यक्ति अपनी तीव्र बुद्धि के कारण एक गुण प्रदर्शित करने में निर्धारण-मापन को प्रभावित कर लेता है तो वह उसे बिना सोचे ही दूसरे गुण में सबसे उच्च स्थान देने का प्रयत्न करेगा। यदि उसने एक समय में अनुचित कृपा प्राप्त की है तो उस प्रभाव को दूर करना निर्धारण-मापन के लिए कठिन हो जाता है, जबकि वह दूसरे गुण को निर्धारण कर रहा हो।

इस प्रकार के मापदण्ड के प्रयोग से लाभ यह है कि हम व्यक्ति के गुणों के माध्यमिक को अधिक अच्छी प्रकार प्रदर्शित कर सकते है जितना कि शब्द द्वारा नहीं हो सकता है। साथ-साथ दो या दो से अधिक मापन-निर्धारकों के नियम का हम औसत भी निकाल सकते है। कोई विशेष निर्धारक ईर्ष्यालु भी हो सकता है, या एकपक्षीय हो सकता है, किन्तु विभिन्न निर्धारकों की ईर्ष्याएँ विभिन्न दशाओं में हो सकती है और यह एक-दूसरे को न कर देती है और इस प्रकार केवल उचित रूप निपक्ष और ईर्ष्या-रहित औसत निर्धारक माप हमें मिल जाता है।

इन विधियों की वैधता हम सरलता से पता नहीं लगा सकते। निरीक्षक का पक्षपात, ईर्ष्या अन्तिम निष्कर्ष में अनुचित प्रभाव डालती है। निरीक्षण अपने ही व्यक्तित्व के आधार पर दूसरे व्यक्तित्व को देखने का प्रयत्न करता है। यदि हम विभिन्न निरीक्षकों के मत को एक साथ संगिठत है, जो वास्तव में एक-दूसरे से स्वतंत्र हों, त हमें हमारे निष्कर्ष में अधिक वैधता प्राप्त हो सकती है।

निर्धारकों की विश्वसनीयता को भी हम विभिन्न निरीक्षकों के स्वतंत्र कार्य को देखकर निर्धारित कर सकते है। विश्वसनीयता को प्राप्त करने के लिए हमें निर्धारक-मापदण्ड को बड़ी सावधानी से तैयार करना चाहिए। साथ ही साथ निर्धारकों तथा निर्णायकों को पूर्ण शिक्षित तथा उसके ज्ञान आदि में पूर्ण कुशल होना चाहिए।

(iii) शारीरिक परिवर्तन : व्यक्तित्व के संकेतक के रूप में

व्यक्तित्व की कुछ विशेषताओं को हम अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के व्यवहार को देखकर अध्ययन कर सकते है। व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए मुख्य तत्व 'संवेग' है। संवेग को प्रदर्शित करने से मुख्य शारीरिक संकेत-हृदय की गति और रचना, रक्त-परमाण, रक्त-भार श्वसन के परिवर्तन, से विद्युत अनुक्रिया और व्यक्तिगत परिवर्तन आदि है। इन शारीरिक परिवर्तनों की माप के द्वारा हम सीमा के अंदर झूठे या धोखे की माप एक व्यक्ति के अंदर करने में सफल होते हैं।

मौखिक व्यवहार व्यक्तित्व अध्ययन

व्यक्तित्व की विशेषताओं का लिखित या मौखिक प्रत्युत्तरों के द्वारा अध्ययन करने में यह समझा जाता है कि यह व्यक्तित्व के मुख्य गुणों का संकेतक है। बहुत-सी व्यक्तित्व परीक्षाएँ मौखिक व्यवहारों का प्रयोग करती हैं।

इनमें से मुख्य साहचर्य परीक्षा, प्रक्षेपी प्रविधि, प्रश्न-उत्तर परीक्षा अभिवृद्धि मापनी तथा ज्ञान की परीक्षाएँ और सामाजिक तथा नैतिक मूल्य की परीक्षाएँ है।

सहचर्य परीक्षाएँ विभिन्न प्रकार की होती है। स्वतंत्र साहचर्य परीक्षाएँ वे है, जिनमें परीक्ष्य लगातार बोलता रहता है उस समय तक, जय आगे बोलने में असमर्थ हो जाता है। इसका प्रयोग विश्लेषक किसी भावना का पता लगाने के लिए करते है।

नोट

दूसरे प्रकार की साहचर्य परीक्षा में हम विषयी को एक उतेजक शब्द देते हैं और इसके प्रत्युत्तर में विषयी के मस्तिष्क में जो भी आता है, वह बोलता है। इन परीक्षाओं को हम विषयी की संवेगात्मक कठिनाइयों का पता लगाने के लिए प्रयोग करते हैं। इन साहचर्य परीक्षाओं को हम संवेगात्मक ग्रन्थियों के रूप में प्रयोग करते है। यह हमें अपराध, मानसिक अवस्था, रुचि आदि के बारे में भी बताती है।

3.8 प्रक्षेपी विधि

तीसरे प्रकार की विधि, जिसे हम व्यक्तित्व को मापने के लिए उपयोग करते है, प्रक्षेपी प्रविधि है। व्यक्तित्व का वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं की सबसे बड़ी कमी यह है कि यह व्यक्ति के अचेतन का अध्ययन नहीं करतीं। प्रत्येक व्यक्ति में प्रेरणाएँ, इच्छाएँ, रुचि, संवेग, विश्वास आदि होते है जो वास्तव में दूसरे को दिखाई नहीं देते, किन्तु वह उस व्यक्ति के ही अंग होते हैं। व्यक्ति स्वयं भी इनके बारे में चेतन नहीं होता। इस प्रकार बिना इन अचेतन प्रेरणाओं, को विचार में रखते हए हम व्यक्तित्व को पूर्णरूप से व्यक्त नहीं कर सकते।

प्रेक्षण विधि

प्रोजेक्ट का अर्थ है – प्रेक्षण करना या फेंकना। सिनेमा हाल के किसी भाग में बैठा हुआ व्यक्ति प्रोजेक्टर की सहायता से फिल्म के चित्रों को पर्दे पर 'प्रोजेक्ट' करता है या फेंकता है। वहाँ बैठे हए दर्शकगण उन चित्रों को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखते है। उदाहरणार्थ अभिनेत्री के नृत्य के समय कलाकार उसके शरीर की गतियों को, नवयुवक उसके सौन्दर्य को, तरूण बालिका उसके श्रृंगार को और सामान्य मनुष्य उसकी विभिन्न मुद्राओं को विशेष रूप से देखता है। इसका अभिप्राय: यह है कि सब लोग एक व्यक्ति या वस्तु को समान रूप से न देखकर अपने व्यक्ति के गुणों या मानसिक अवस्थाओं के अनुसार देखते है। मानव स्वभाव की इस विशिष्टता से लाभ उठाकर मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति मापन के लिए प्रेक्षण विधि का निर्माण किया। इस विधि का अर्थ थार्प व शमलर ने लिखा है – ''प्रेक्षण विधि, उद्दीपकों के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसके व्यक्ति के स्वरूप का वर्णन करने का साधन है।''

प्रेक्षण विधि में व्यक्ति को एक चित्र दिखाया जाता है और उसके आधार पर उससे किसी कहानी की रचना करने के लिए कहा जाता है। व्यक्ति उसकी रचना अपने स्वयं के विचारों, संवेगों, अनुभवों और आकांक्षाओं के अनुसार करता है। परीक्षक उसकी कहानी से उसकी मानसिक दशा और व्यक्ति के गुणों के संबंध में अपने निष्कर्ष निकालता है। इस प्रकार, इस विधि का प्रयोग करके वह व्यक्ति के कुछ विशिष्ट गुणों का नहीं, वरन् उसके सम्पूर्ण व्यक्ति का ज्ञान प्राप्त करता है। यही कारण है कि व्यक्ति मापन की इस नवीनतम विधि का सबसे अधिक चलन है और मनोविश्लेषक इसका प्रयोग विभिन्न परेशानियों में उलझे हए लोगों की मानसिक चिकित्सा करने के लिए करते है।

प्रक्षेपण विधि के आधार पर अनेक व्यक्ति परीक्षण का निर्माण किया गया है, जिनमें निम्नांकित दो सबसे अधिक प्रचलित है –

(i) रोर्शा का स्याही धब्बा परीक्षण Rorschach Ink BlotTest

(ii) प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण -Thematic Apperception Test (TAT)

(i) रोर्शा का स्याही धब्बा परीक्षण (Rorschach Ink Blot Test)

नोट

प्रक्षेपी विधियाँ

व्यक्तित्व मापन को वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिनिष्ठ परीक्षणों की सबसे बड़ी कमी यह है कि यह व्यक्ति के अचेतन मन का अध्ययन नहीं करती है। एक मनोवैज्ञानिक के अनुसार व्यक्ति 'के मन ' की तुलना पानी पर तैरते बर्फ के टुकड़े से की जा सकती है जिसका 1/10 भाग तो पानी के ऊपर रहता है जबकि 9/10 भाग पानी के नीचे रहता है। मन और पानी में तैरते बर्फ के टुकड़े की यदि चेतन और अचेतन मन से तुलना की जाए तो हमारे 9/10 विचार, रुचियाँ, इच्छायें, संवेग आदि अचेतन. मन' मे रहते हैं, जो हम दिखाई नहीं देते है जबकि केवल 1/10 भाग ही चेतन मन में रहते हैं जिससे हम परिचित रहते हैं। इन प्रक्षेपी विधियों के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व के चेतन तथा अचेतन दोनों पक्षों का अध्ययन किया जा सकता है।

अन्य विधियाँ व परीक्षण

1. **निरीक्षण विधि** (observational method) – इस विधि में परीक्षणकर्ता विभिन्न परिस्थतियों में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है।
2. **आत्मकथा विधि** (Autobiographical Method) – इस विधि में परीक्षार्थी से उसके जीवन सें संबंधित किसी विषय पर निबध लिखने के लिए कहा जाता है।
3. **स्वतंत्र सम्पर्क विधि** (Free contact Method) – इस विधि में परीक्षार्थी से अति घनिष्ठ संबंध स्थापित करके, उसके विषय में विभिन्न प्रकार की सूचनायें प्राप्त करता है।
4. **मनोविश्लेषण विधि** (Psycho-Analytic Method) – इस विधि में परीक्षार्थी के अचेतन मन की इच्छाओं का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।
5. **समाजिमित विधि** (Sociometric Method) – इस विधि का प्रयोग, व्यक्ति के सामाजिक गुणों का मापन करने के लिए किया जाता है।
6. **शारीरिक परीक्षण विधि** (Psysical test method) – इस विधि में विभिन्न यंत्र से व्यक्ति की विभिन्न क्रियाओंका मापन किया जाता है। ये यंत्र हृदय, मस्तिष्क, ास, माँसपेशियों आदि की क्रियाओंका मापन करते है।
7. **बालकों का अन्तर्बोध परीक्षण** (Children's Apperception Test, (CAT) – यह परीक्षण TAT के समान होता है। अन्तर केवल इतना है कि TAT वयस्कों के लिए है, यह बालकों के लिए है।
8. **चित्र कहानी परीक्षण (Picture Story Test) -** इस परीक्षण में 20 चित्रों की सहायता से किशोर बालकों और बालिकाओं के व्यक्ति का अध्ययन किया जाता है।
9. **मौखित प्रेक्षण परीक्षण** (Verbal Projective Test) – इस परीक्षण में कहानी कहना, कहानी पूरी करना और इस प्रकार की अन्य मौखिक क्रियाओं द्वारा परीक्षण किया जाता है।

3.9 व्यक्ति परीक्षण के प्रमुख मुद्दे

व्यक्ति को मापना और निर्धारण करना, एक बहुत ही प्राचीन समस्या है। शताब्दियों में मनुष्य ने अपने तथा दूसरे के व्यक्ति और चरित्र की माप करने की विधियों का पता लगाने की चेष्ट की। उन्होंने ऐसी विधि या

साधन को चुना जो आज तक हमारी प्रत्येक संस्कृति में कुछ महत्त्व रखते है। यह साधन कपालिवद्या आकृति विद्या आलेखीय विद्या आदि है। इन्हीं के द्वारा चरित्र के पढ़ने का प्रयास या चरित्र के बारे में बताने का प्रयत्न किया जाता है। मनोवैज्ञानिक इन सिद्धान्तों तथा ज्योतिषशास्त्र में विश्वास नहीं रखते। व्यक्ति के निर्धारण तथा व्यक्ति के गुणों को प्रकट करने के लिए मनोवैज्ञानिक नवीन ढंग का प्रतिपादन कर रहे हैं। इनमें से कुछ पर, हम यहां विचार करगे।

नोट

व्यक्तित्व के मापों में वैज्ञानिक रूप में बहुत सी बाधाएँ है। एक व्यक्ति के गुण को यह इन ढंग को नहीं अपना सकते क्योंकि 1 इनमें मापन आरंभ करने के लिए कोई भी शून्य अंक नहीं है। 2 मापन इकाइयों में कोई समानता नहीं होती, 3 मापन के संबंध में जो मुख्य शब्द प्रयोग किये जाते है उनके संबंध में कोई एक सा मत नहीं है। 4 इन्हें नापने के लिए उपयुक्त साधन तथा यंत्र उपलब्ध नहीं है।

किसी वस्तु के मूल्यांकन से तात्पर्य है – उस वस्तु संबंधी किसी प्रकार का वर्णन। जब हम मापते है तो वर्णन का सहारा लेते है, किन्तु यह वर्णन तुलनात्मक और साधारण अंक संबंधी होते है अर्थात् यह माप सदैव अंशों में होती है जो कम या अधिक हो सकती है। वास्तविक रूप में हम यह माप पूरे का एक अंक होती है, यह पूरी माप नहीं हो सकती। जब हम किसी वस्तु को मापते है तो एक सी एक गुण या एक से अधिक गुण उस वस्तु को मापते है। जैसे लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, भार, चिकलापन या कठोरता आदि, किन्तु विशेष बात यह है कि कभी भी हम उस वस्तु के सब गुण एक समान मापन द्वारा नहीं माप सकते। यह बात जब भौतिक वस्तुओं के लिए सत्य है तो व्यक्ति के संबंध में जो वस्तु नहीं है, हम विश्वास के साथ कह सकते है कि कोई भी एक मापन हमें पूर्णरूप से इसका चित्र नहीं दे सकता।

व्यक्ति मापन की दिशा में गत अनेक वर्षों से निरन्तर कार्य किया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप कुछ अत्युत्तम मापन-विधियों और परीक्षण का निर्माण किया गया है। छात्र, सैनिकों और असैनिक कमचारयों के व्यक्ति का मापन करने के लिए इनका प्रयोग अति सफलता से किया जा रहा है। इसका अभिप्राय: यह नहीं है कि इन विधियों और परीक्षण में वैद्यता और विश्वसनीयता का अभाव नहीं है। इस अभाव का मुख्य कारण यह है कि मानव-व्यक्ति इतना जटिल है कि उसका ठीक-ठीक माप कर लेना कोई सरल कार्य नहीं है। **वरनन** ने ठीक ही लिखा है ''मानव व्यक्ति के परीक्षण या मापन में इतनी अधिक कठिनाइयाँ है कि सर्वोच्च मनोवैज्ञानिक कुशलता का प्रयोग करके भी शीघ्र सफलता प्राप्त किये जाने की आशा नहीं की जा सकती है।''

व्यक्ति मूल्यांकन की इन विधियों का प्रयोग करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सही मापन हेतु मापी जाने वाली वस्तु की प्रकृति, उपकरणों की प्रकृति तथा व्यक्ति की प्रकृति का ध्यान रखना पड़ता है। इन तीनों प्रकृति के आधार पर मापन उपकरण के सही इस्तेमाल से व्यक्ति का मापन सही ढंग से किया जा सकता है।

3.10 सारांश

व्यक्तित्व मापने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार की विधियों का वर्णन किया है जिसमें व्यक्ति आविष्कारिका (personality inventories) तथा प्रेक्षण परीक्षण (projective tests) प्रमुख है। व्यक्ति आविष्कारिका MMPI में, बेल समायोजन आविष्कारिका (Bell Adjustment Inventory), कैटेल 16 व्यक्ति कारक आविष्कारिका (Cattell 16 PF Inventory) आदि प्रमुख है। प्रेक्षण विधि (projective method) के रूप में सेशखि (Rorshach Test) TAT परीक्षण शब्द साहचर्य परीक्षण (Word Association, Test) तथा वाक्यपूर्ति परीक्षण (Sentence Completion Test) आदि प्रमुख है।

व्यक्ति मापन में प्रेक्षण विधियों (observational methods) जैसे रेटिंग मापनी (rating scale) तथा साक्षात्कार विधि (interview method) का भी प्रयोग किया जाता है।

नोट

3.11 अभ्यास प्रश्न

1. व्यक्ति मापन का क्या अर्थ है?
2. व्यक्ति मापन की व्यक्तिगत विधियों के नाम लिखिये।
3. व्यक्ति मापन की वस्तुनिष्ठ विधियों के नाम लिखिये।
4. व्यक्ति मापन की प्रेक्षिपी विधियों के नाम लिखिये।
5. स्याही धब्बा परीक्षण के प्रवर्तक कौन है?
6. प्रासंगिक अन्तरबोध परीक्षण के प्रवर्तक कौन है?
7. जीवन इतिहास विधि किसे कहते है? संक्षेप में स्पष्ट कीजिये।
8. किसी परीक्षण की वैधता और विश्वसनीयता से क्या तात्पर्य है।
9. हमर्न रोशा परीक्षण का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
10. समाजिमित विधि का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
11. TAT परीक्षण की कार्यविधि की सउदाहरण व्याख्या कीजिये।
12. CAT परीक्षण की कार्यविधि की सउदाहरण व्याख्या कीजिये।
13. चित्र कहानी परीक्षण की कार्यविधि की सउदाहरण व्याख्या कीजिये।
14. व्यक्ति परीक्षण के प्रमुख मुद्दों पर प्रकाश डालिये।

3.12 संदर्भ पुस्तकें

- डॉ. एस.पी. गुप्ता : शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- डॉ. आर.एन. सिंह : आधुनिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मदिंर आगरा -2
- डॉ. अरूण कुमार सिंह : आधुनिक मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना
- डॉ. पी.डी. पाठक : शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मदिंर आगरा - 2
- सिंह, अरूण कुमार (2002) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पिलकेशंस

अध्याय-4

मानसिक स्वास्थ्य

नोट

(Structure)

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 कुसमायोजन के कारक
4.4 समायोजना की परिभाषाएं
4.5 समायोजन की प्रकृति
4.6 समायोजन की प्रक्रिया
4.7 समायोजन प्रतिमान
4.8 सुसमायोजि व्यक्तियों की विशेषतायें
4.9 मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ
4.10 मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ
4.11 बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले कारक
4.12 तनाव या प्रतिबल का अर्थ एवं विशेषताएँ
4.13 तनाव की प्रतिक्रियाएँ
4.14 तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारक
4.15 तनाव का मापन
4.16 तनाव के कारण या स्रोत
4.17 तनाव कम करने के उपाय
4.18 प्रतिबल या तनाव का प्रबंधन
4.19 व्यक्तित्व
4.20 व्यक्तित्व विकृति की परिभाषाएँ
4.21 मनोविकारी व्यक्तित्व या समाजविरोधी व्यक्तित्व
4.22 व्यक्तित्व विकृति के उपचार एवं प्रतिफल
4.23 मनोस्नायुविकृति का अर्थ एवं स्वरूप
4.24 दुश्चिन्ता विकृति का अर्थ तथा प्रकार
4.25 दुर्भिति विकृति
4.26 सामान्यीकृत चिंता विकृति की परिभाषा, कारण एवं उपचार
4.27 मनोग्रस्ति-बाध्यता विकृति की परिभाषा, कारण एवं उपचार

नोट

4.28 कायाप्रारूप विकृतियाँ
4.29 मनोविच्छेदी विकृति का अर्थ, परिभाषा एवं लक्षण
4.30 मनोविकृति का अर्थ एवं परिभाषा
4.31 मनोविकृति का वर्गीकरण
4.32 मनोविकृति के सामान्य लक्षण
4.33 मनोविकृति के मनोजन्य विकारों के प्रकार
4.34 सारांश
4.35 अभ्यास प्रश्न
4.36 संदर्भ पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- मानसिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ समझने में;
- बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले तत्वों के विषय में जानकारी प्राप्त करने में;
- तनाव का अर्थ एवं उसकी विशेषताओं को समझने में;
- तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारकों को जानने में;
- तनाव को कम करने के उपाय एवं तनाव के प्रबंधन को समझने में।
- व्यक्ति विकृति का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।
- व्यक्ति विकृति का स्वरूप एवं पहचान बता सकेंगे।
- 'मनोस्नायुविकृति' का अर्थ बता सकेंगे;
- 'मनोस्नायुविकृति' की परिभाषा, श्रेणियाँ तथा उद्देश्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- मनोविकृतियों को सही तरह से समझ सकेंगे;
- मनोविकृतियों के प्रकारों की जानकारी ले सकेंगे;
- समायोजन के अर्थ को समझ सकें;
- समायोजन की प्रकृति से परिचित हो सकें।

4.2 प्रस्तावना

व्यक्ति के शरीर में मस्तिष्क का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि व्यक्ति जो भी कार्य करता है वह अपने मस्तिष्क के संकेत पर या मन के अनुसार करता है। जब तक हमारा मन स्वस्थ नहीं रहता है, तब तक हम किसी भी कार्य को ठीक से नहीं कर सकते। जिन लोगों का मस्तिष्क स्वस्थ नहीं रहता वे जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का सामना सफलतापूर्वक नहीं कर पाते, वे सदा एक प्रकार से मानसिक उलझन या परेशानी में रहते हैं। इसका कारण मानसिक दुर्बलता या किसी प्रकार का

नोट

विकार होता है। आज व्यक्ति का जीवन अधिक जटिल बनता जा रहा है। उन्हें जीवन में पग-पग पर कठिनाइयों और निराशाओं का सामना करना पड़ता है, मानसिक उलझनों के कारण वे समाज में अपने को समायोजित नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में व्यक्ति के लिए मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होना आवश्यक है। संसार में वे ही व्यक्ति भौतिक और सामाजिक परिस्थितियों में अपने को समायोजित (Adjust) कर पाते हैं जिनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है। मानव-जीवन में शारीरिक स्वास्थ्य के समान ही मानसिक स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। इसलिए शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि शिक्षण-प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए शिक्षण और शिक्षार्थी दोनों के मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के स्वरूप पर विचार करने के उपरान्त बालक के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों तथा मानसिक स्वास्थ्य में उन्नति करने के प्रयासों पर प्रकाश डालते हुए हम शिक्षा में मानसिक स्वास्थ्य के महत्त्व की चर्चा करेंगे। तनाव हमेशा से मानव जीवन को प्रभावित करता रहा है। हम जब कभी असंतुष्ट होते हैं तो तनाव में आ जाते हैं और जब तक हमारी समस्या का निदान नहीं हो जाता तब तक तनाव की स्थिति बनी रहती है। शिक्षा मनोविज्ञान के अंतर्गत मनोवैज्ञानिक तनाव की प्रक्रिया को समझने, उसका मापन करने के साथ-साथ उसे कम करने अथवा उसके निराकरण के उपाय सुझाते हैं।

तनाव हमेशा से मानव जीवन को प्रभावित करता रहा है। हम जब कभी असंतुष्ट होते हैं तो तनाव में आ जाते हैं और जब तक हमारी समस्या का निदान नहीं हो जाता तब तक तनाव की स्थिति बनी रहती है। शिक्षा मनोविज्ञान के अंतर्गत मनोवैज्ञानिक तनाव की प्रक्रिया को समझने, उसका मापन करने के साथ-साथ उसे कम करने अथवा उसके निराकरण के उपाय सुझाते हैं।

व्यक्तित्व विकृति मूलत: शीलगुणों की विकृति है, जो पर्यावरण को कुसमायोजित ढंग से प्रत्यक्षण करने तथा उसके प्रति अनुक्रिया करने की प्रवृति की और इशारा करता है।

मानसिक बीमारयाँ अनेक है। सभी मानसिक बीमारयों को साधारणत: दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है। एक प्रकार के अन्तर्गत आने वाली सभी मानसिक बीमारयों को मन: स्नायुविकृतियाँ कहते है तथा दूसरे प्रकार के अन्तर्गत आने वाली सभी मानसिक बीमारयों को मनोविकृतियाँ कहते हैं। इस अध्याय में चिंता विकृति - सामान्यीकृत चिंता विकृति मनोग्रसित बाध्यता तथा दुर्भिति के कारण एवं उपचार के बारे में विस्तार में वर्णन किया गया है। इसके अलावा दूसरी व तीसरी श्रेणी - कायाप्रारूप विकृतियों में रूपांतर हिस्ट्रीया तथा मनोविच्छेदी विकृतियाँ के भी कारण व उपचार के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है।

आधुनिक समाज में विकृति के पाये जाने की संभावना दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है जिसका कारण सामाजिक गति तथा सामाजिक आद्योगिकरण ही है, जिससे व्यक्ति के मूल्य में बदलाव ही नहीं आया है, वरन यह बदलाव एक और जहाँ जीवन को आसान बनाने के काम आया है, वहीं हमें अपेक्षाकृत अधिक तनावों, कुंठाओं और प्रतिबल का सामना भी करना पड़ा है। प्रस्तुत इकाई में आप मनोविक्षिप्त या मनोविकृतियों का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप, लक्षण तथा विस्तार में इनके कारण एवं उपचारों के बारे में अध्ययन किया गया है।

मनुष्य जीवन में निरन्तर परिवर्तन अनुभव करता है। कुछ परिवर्तन अत्यन्त धीमी गति से होते हैं। जिससे कि बिना अतिरिक्त प्रयास के मनुष्य उसके साथ अनुकूलन कर लेता है। कुछ परिवर्तन इतने आकस्मिक होते हैं कि मनुष्य का सुनियोजित जीवन लड़खड़ा जाता है। इसी लड़खड़ाहट का नाम है जीवन में समायोजन का

नोट

अभाव। परिवर्तनों की निरन्तरता व आकस्मिकता दोनों समायोजन की आवश्यकता को स्पष्ट करते हैं। एक मां अपने बालक को प्रथम बार विद्यालय में भेजने पर उसके समायोजन हेतु चिन्तित रहती है। सेवामुक्त व्यक्ति अपने आगामी जीवन में समायोजन हेतु उपबोधन की आवश्यकता का अनुभव करता है। जीवन के प्रारम्भ से अंत तक मानव समायोजन के प्रयास में लगा रहता है। समायोजन परिवर्तन के साथ अनुकूलन के रूप में हमारे सामने उभर कर आता है। यह स्पष्ट है कि परिवर्तन के प्रति अनुकूलन हमारे जीवन का एक अनवरत क्रम है।

समायोजन व्यक्ति की आवश्यकताओं व आकांाओं तथा वातावरण की मांग व बाधाओं के मध्य संतुलन है। समायोजन में अन्तर्निहित है- जीवन बनाये रखने के लिए परिवर्तन को सहज रूप में स्वीकार करते रहना समायोजन क्या है इसको समझने के लिए सर्वप्रथम जानना होगा समायोजन की आवश्यकता क्या होती है?

4.3 कुसमायोजन के कारक

जीवन में परिवर्तन के कारण मानव पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों से मानव की रक्षा करना ही सामान्यत: समायोजना का प्रयोजन है। सर्वप्रथम उन दुष्प्रभावों का स्पष्टत: देखना होगा जिन्हें मनोवैज्ञानिकों ने अधिक परिश्रम से खोज निकाला है तथा जिनके कारण व्यक्ति को समायोजन की आवश्यकता पड़ती है। इन कारणों में प्रमुख हैं तनाव दुश्चिन्ता, भग्नाशा, द्वंद आदि। आइए इन कारणों के संबंध में संक्षिप्त में विचार करें।

तनाव

तनाव की स्थिति में व्यक्ति वातावरण द्वारा उत्पन्न मांग की पूर्ति में स्वयं को असमर्थ समझता है। व्यक्ति के लिए अपनी सीमित क्षमताओं में इन परिस्थितियों पर काबू पाना कठिन हो जाता है। जिससे तनाव उत्पन्न होता है। तनाव के आधार है व्यक्ति द्वारा किसी भी भयपूर्ण स्थिति का सामना करने की अपनी शक्ति का मूल्यांकन। अपनी आवश्यकतानुसार पढ़ सकने की अपनी क्षमता के बोध के आधार पर जो छात्र पहले भी सफल हो चुके हैं वे परीक्षा की पूर्व रात्रि में शान्ति से रहते हैं। किन्तु जो छात्र परीक्षा का सामना करने की अपनी क्षमता का मूल्यांकन नहीं कर सकते तथा इसी कारण पहले भी असफल हो चुके हैं। वे परीक्षा की पूर्व रात्रि में अत्यन्त तनाव ग्रस्त रहते हैं।

दबाव

जब व्यक्ति एक निश्चित स्तर के अनुसार जीवन जीने के संबंध में सोचता है अथवा जब व्यक्ति को त्वरित गति से होने वाले परिवर्तनों के साथ अनुकूलन करना होता है तब दबाव उत्पन्न होता है। दबाव आन्तरिक व बाह्य दोनों प्रकार के होते हैं। आन्तरिक दबाव का संबंध व्यक्ति की आत्म सम्मान को बनाये रखने की भावना से होता है। जबकि बाह्य दबाव प्रतिद्वंद्विता का होता है।

दुश्चिन्ता

यह एक उलझनपूर्ण स्थिति है। दबाव में व्यक्ति उसका कारण जानता है। किन्तु दुश्चिन्ता में व्यक्ति व्यय तो रहता है। किन्तु व्यग्रता का कारण नहीं जानता। मनोविश्लेषणवादियों के आधार के अनुसार व्यक्ति के जीवन मूल्यों से संघर्ष करती हुई इच्छा बलात् चेतन स्तर पर आना चाहती है। दुश्चिन्ता इसी आन्तरिक अचेतन के संघर्ष का लक्षण है। व्यक्ति किसी कार्य को गलत समझते हुए भी घनीभूत भावनाओं के फलवरूप वह कार्य करता है तब स्वयं को अत्यन्त थका हुआ व अवसादपूर्ण अनुभव करता है। यह स्थिति ही दुश्चिन्ता है। दुश्चिन्ता दो प्रकार की होती है –

1. **विशेषक दुश्चिन्ता** – व्यक्ति की विशेषताओं में से है जो व्यक्तित्व के साथ जुड़ी रहती है। प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्ति में विशेषत दुश्चिन्ता की कुछ न कुछ मात्रा अवश्य रहती है।
2. **परिस्थिति की दुश्चिन्ता** – यह दुश्चिन्ता परिस्थितिजन्य होती है। इसमें विभिन्न परिस्थितियों में दुश्चिन्ता की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है।

नोट

कुछ तनावपूर्ण परिस्थितियां व्यक्ति में अधिक दुश्चिन्ता उत्पन्न करती है। कुछ कम। अधिक अवधि की तथा आकस्मिक घटना व्यक्ति में अधिक मात्रा में स्थिति की दुश्चिन्ता उत्पन्न करती है। तनावपूर्ण घटना की सूचना भिन्न-भिन्न मात्रा में दुश्चिन्ता की मात्रा उत्पन्न करती है।

भग्नाशा

इस स्थिति में व्यक्ति अपने निर्दिष्ट उद्देश्य को त्याग देना अथवा बाधा पाता है। व्यक्ति के सम्मुख उद्देश्य को त्याग देना अथवा बाधाओं को दूर करना, दो ही विकल्प होते हैं।

कौलमेंन व **हैमन** ने भग्नाशा उत्पन्न होने के लिए जिन कारकों को प्रमुख माना है। उनमें प्रमुख हैं - उद्देश्य प्राप्ति में देर होना, असफलता की संभावना तथा सहायता की भावना आदि।

द्वंद

द्वंद वह स्थिति के जिसमें व्यक्ति दो असंगत मांग, अवसर, उद्देश्य अथवा आवश्यकताओं का सामना एक साथ करता है। द्वंद का पूर्ण हल संभव नहीं है। व्यक्ति को एक को छोड़ना पड़ता है अथवा दोनों को परिशोधत करना पड़ता है अथवा एक पूर्ति में देर करना अथवा इस तथ्य के साथ समझौता करना पड़ता है कि कोई भी जीवन में पूर्ण संतुष्ट नहीं हो सकता है।

द्वंद की व्याख्या कुर्ट लेविन ने दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ उपगमन तथा परिहार के रूप में की है। जब कोई उद्देश्य आकर्षित करता है तब व्यक्ति उस और प्रवृत्त होना चाहता है। इसी प्रकार जब कोई उद्देश्य विकर्षित करता है। जब व्यक्ति उससे दूर जाना चाहता है अथवा उसका परिहार करता है। इन दोनों प्रवृत्तियों के विभिन्न संयोजनों की सहायता से तीन मूलभूत प्रकार के द्वंद की व्याख्या की गई है।

प्रथम - उपागमन - उपागमन (Approach Approach) अर्थात् व्यक्ति एक साथ दो उद्देश्यों की ओर आकर्षित होता है तथा उन्हें प्राप्त करना चाहता है।

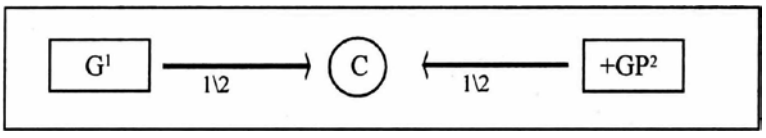

दूसरा है -परिहार - परिहार (Avoidance Avoidance) – जब व्यक्ति का सामना दो अवांछनीय परिस्थितियों से होता है। दोनों ही परिस्थितियों से व्यक्ति दूर भागना चाहता है तब पलायन सम्भव नहीं होने पर विभिन्न तरीकों से परिस्थिति से समझौता करना चाहता है या व्यक्ति प्राय दोनों अवांछनीय परिस्थितियों के मध्य झूलता रहता है।

तृतीय - उपागमन (Approach) व परिहार के (Avoidance) मध्य द्वंद - जिसमें व्यक्ति एक ही उद्देश्य के प्रति आकर्षित भी होता है और है इसमें दूर भी भागना चाहता है। इसमें समस्या का हल कठिन होता हैं उद्देश्य की ओर प्रवृत्त होने की इच्छा व उद्देश्य से दूर भागने की इच्छा उद्देश्य के समीप होने पर बढ़ जाती है। और द्वंद गभीर हो जाता है।

4.4 समायोजना की परिभाषाएं

बोरिंग लैगफैल्ड तथा वेलड के अनुसार "समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्यकताओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में संतुलन रखना है।"

नोट

स्किनर से कहां है "समायोजन..... अधिगम प्रक्रिया है।" गेट्स एवं अन्य के अनुसार "समायोजन एक सतत् प्रक्रिया है। जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व वातावरण के मध्य सामंजस्यपूर्ण संबंध के लिए अपने व्यवहार मे परिवर्तन करता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट है कि समायोजन एक अधिगम प्रक्रिया है। "प्रक्रिया के साथ ही समायोजन शब्द स्थित" को भी अभिव्यक्त करता हैं। व्यक्ति तथा वातावरण के मध्य समरसतापूर्ण संबंध ही स्थित के रूप में समायोजन की व्याख्या है। समरसता की मात्रा एक और व्यक्ति में अन्तर्निहित क्षमताओं तथा दूसरी ओर वातावरण की प्रकृति पर निर्भर है। समायोजन प्रक्रिया के अनुसार व्यक्ति आंतरिक आवश्यकताओं तथा वातावरण बाह्य मांगो के मध्य संतुलन की स्थिति अनिवार्य है। इस तथ्य की स्वीकृति गेट्स महोदय भी करते है –

"सार रूप से सुसामंजस्य समायोजन युक्त व्यक्ति वह है जिसके आवश्यकताएं व तृप्तियाँ सामाजिक दृष्टिकोण एवं सामाजिक उत्तरदायित्व की स्वीकृति के साथ संघटित होते है।"

कुछ मनोवैज्ञानिक समायोजन की प्रक्रिया में स्थिति के अतिरिक्त उपलब्धि का भी मत है समायोजन को उपलब्धि मामने पर वातावरण के साथ समायोजन की गुणवत्ता महत्त्वपूर्ण होती है इसमें व्यक्ति के समायोजन के मापन हेतु चार निर्धारक तत्व माने गये है।

शारीरिक स्वस्थ्य मनोवैज्ञानिक स्वस्थ्य, कार्य कुशलता तथा सामाजिक स्वीकृति।

समायोजन के अर्थ के अवबोध की प्रक्रिया के अनुसार है निष्कर्ष निकलता है कि समायोजन की अवधारणा अपनी प्रकृति में बहुरूपी है। अत: समायोजन हेतु कोई भी एक पूर्ण परिभाषा देना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

4.5 समायोजन की प्रकृति

शिक्षकों को अपने दायित्व के प्रभावी निर्वाह हेतु समायोजन की प्रकृति का ज्ञान होना अपरिहार्य है। समायोजन की प्रकृति के मुख्य विशेषताएं निम्न है –

1. बालक निष्क्रिय रहने के बजाय सक्रिया रहकर अधिक अच्छी तरह से समायोजन कर सकता है।
2. समायोजन, स्वाभाविक होना चाहिए, बलात् नहीं।
3. समायोजन कोई रहस्यमयी वैज्ञानिक युक्ति नहीं है, अपितु यह स्वस्थ, पूर्वअधिगम की ही प्रक्रिया है।
4. बालक अपने 'स्व' तथा उपयोगता की रक्षा के लिए भी प्रयास पूर्वक समायोजित होने के तरीके अपनाता है।
5. जीवन की परिविर्तत परिस्थितियों के साथ समयानुसार समायोजन करना- सामान्य व्यक्ति का स्वाभाविक गुण है।

4.6 समायोजन की प्रक्रिया

दबाव को दूर करने के लिए मांगों के साथ तालमेल बिठाना ही समायोजन की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के निम्न सोपान हैं–

- दबाव युक्त परिस्थिति का मूल्यांकन

नोट

- समस्या समाधान हेतु निर्णय
- संभावित निर्णयों में उपयुक्त विकल्प की क्रियान्विति
- प्रतिपुष्टि करना
- इन सबके परिणाम का समायोजन हेतु प्रयोग

जब भी दबाव सहनशीलता की एक निश्चित सीमा से बढ़ जाता है तब स्वत: व्यक्ति समस्या के हल की और बढ़ जाता है। दबाव को दूर करने का प्रयास व्यक्ति के स्वयं के संदर्भ, उद्देश्य, क्षमता, सहिष्णुता वातावरणीय सीमाओं तथा सहायता पूर्व में अनुभव की गई मानसिक इच्छाओं, सामाजिक मांगों तथा अपेक्षाओं पर निर्भर करता है।

दबाव का सामना करते समय व्यक्ति के सम्मुख दो समस्याएं आती है। प्रथम समायोजन संबंधी मांग की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा द्वितीय "व" की मनौवैज्ञानिक क्षति तथा विघटन से रक्षा करना दबाव का सामना करने की व्यक्ति की क्षमता के अनुसार उसका समायोजी प्रतिमान होता है ये प्रतिमान प्रमुखत: दो प्रकार के होते हैं।

(क) कार्यअभिमुखी प्रतिमान (Task oriented pattern) इस प्रतिमान में व्यक्ति की दबाव की स्थिति का सामना करने में स्वयं को सक्षम पाता है।

(ख) रक्षा अभिमुखी प्रतिमान (Defense oriented pattern) जब व्यक्ति दबाव का सामना करने में असमर्थ होता है, तो वह इस प्रतिमान को अपनाता है।

समायोजन कैसे हो

मनोवैज्ञानिकों ने समायोजन के दो सामान्य प्रकार स्पष्ट किये हैं –

(1) प्रत्यक्ष संयोजन (Direct coping) तथा (2) रक्षात्मक संयोजन (Defensive coping)। प्रत्यक्ष संयोजन से तात्पर्य है कि असंविधाजनक अथवा तनाव युक्त परिस्थिति के विकल्प के रूप में व्यवहार करना तथा अपने उद्देश्य एवं क्षमता के मध्य की बाधा को हटाना रक्षात्मक युक्ति युक्त संयोजन से तात्पर्य है कि. व्यक्ति का विभिन्न तरीकों से स्वयं को विश्वास दिलाना कि वस्तुत: वह भयभीत नहीं है, कोई समस्या भी नहीं है अथवा वे जिसे प्राप्त नहीं कर सकता उसकी इच्छा नहीं कर रहा है। रक्षात्मक युक्ति वस्तुत: अचेतन के द्वन्द के हल के रूप में एक प्रकार की आत्मवंचना है अर्थात् व्यक्ति किसी समस्या को चेतन स्तर पर लाकर प्रत्यक्ष रूप से उसका सामना करने में असमर्थ होता है। आइए संक्षेप में प्रत्यक्ष संयोजन तथा रक्षात्मक युक्ति पर विचार करें।

प्रत्यक्ष संयोजन

दबाव, निराशा अथवा द्वंद के साथ समायोजन के लिए प्रत्यक्ष संयोजन के लिये तीन प्रमुख विकल्प हैं प्रथम व्यक्ति जिस परिस्थिति में निराशा का अनुभव कर रहा है, उस परिस्थिति को परिवर्तत कर देना। द्वितीय में व्यक्ति को स्वयं को परिवर्तत कर देना तथा तृतीय में परिस्थिति से स्वयं को दूर कर लेना। प्रत्यक्ष संयोजन के तरीके हैं-

(क) समझौता करना (Compromise) – निराशा अथवा द्वंद के साथ संयोजन के लिए सबसे अधिक प्रचलित तरीका समझौता (Compromise) करना है। जिसमें द्वंद के लिये उतरदायी विभिन्न पक्षों अर्थात् व्यक्ति की क्षमता उद्देश्य तथा परिस्थिति में से थोड़ा-थोड़ा त्याग करके एक समझौता करना पड़ता है।

(ख) आक्रामकता (Aggression) – जिन व्यक्तियों को बलात् समझौता करना पड़ता है वे क्रोध का अनुभव करते हैं, क्योंकि मनोवैज्ञानिक यह अनुभव करते हैं कि व्यक्ति जन्मजात आक्रामक प्रवृत्ति का होता

नोट

है। मनुष्य प्रकृप्या स्वयं की प्रतिरक्षा करना चाहता है, अपनी वस्तु की रक्षा करना चाहता है। तथा अपने शत्रु का विनाश करना चाहता है। इन सब उद्देश्यों की पूर्ति के मार्ग में जो भी बाधा आती हैं उसे अनुमति नहीं देता। अत: ठोकर मार कर, अपशब्द कहकर या कई तरीकों से अपनी निराशा को अभिव्यक्त करता है। आक्रामक व्यवहार की सफलता दो बात पर निर्भर करती है- प्रथम, उद्देश्य व व्यक्ति के मध्य बाधक कौन है ' द्वितीय, आक्रामकता की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि शत्रु शक्ति में व्यक्ति से कम हो।

(ग) निवर्तन (Withdrawal) – बहुत सही परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनके साथ प्रत्यक्ष संयोजन में निवर्तन ही सबसे प्रभावी तरीका होता है। विशेषत: जबकि हमारी दुश्चिन्ता तथा निराशा किसी अत्यन्त दबावपूर्ण घटना से जुड़ी हो। सामान्यत: निवर्तन का संबंध समस्या का सामना करने के निषेध से लगाया जाता है। किन्तु जब व्यक्ति का प्रतिद्वन्दी उसकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है तब स्वयं को परिविर्तत करके या परिस्थिति को परिविर्तत कर किसी एक समझौते पर पहुँचना पड़ता है।

रक्षा युक्ति युक्त

रक्षा युक्तियों को मानसिक युक्तियाँ भी कहा जा सकता है। दबाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया ही रक्षा की युक्तियाँ हैं। समय-समय पर व्यक्ति जीवन में तनाव, दबाव, द्वन्द्व, भग्नाशा तथा दुश्चिन्ता से घिर जाता है। चेतना स्तर पर वह इन सबसे ऊपर निकलने का पूरा प्रयास करता है किन्तु हमेशा वह इसमें सफल नहीं होता है। तब उसका अचेतन अनेक प्रकार की रक्षा युक्तियाँ विकसित कर अपने विशिष्ट तरीकों से दबाव का सामना करता है। व्यक्ति के "स्व" की रक्षा कर व्यक्ति को सांवेगिक असन्तुलन से बचाता है। इसलिये अचेतन स्तर की इन क्रियाओं को रक्षा युक्तियाँ कहा जाता है। बालक के मानसिक विकास में रक्षा युक्तियों की महत्ती भूमिका है।

रक्षायुक्तियों के प्रकार

कुछ प्रमुख प्रकार की रक्षा युक्तियों का परिचय यहाँ पर दिया जा रहा है।

प्रतिक्रिया विधान

किसी ऐसे व्यवहार के नियमत ताने बाने का दृढ़ बन जाना जो किसी बल अचेतन प्रवृत्ति का प्रत्यक्ष विरोधी हो। जैसे डर को दबाने या उससे इंकार करने के लिये व्यवहार का आक्रामक बन जाना। समायोजन की यह महत्चपूर्ण रक्षा युक्ति दुखद अनुभव को कम कर व्यक्ति के 'स्व' की रक्षा करती है। अचेतन की अवांछनीय इच्छाओं को दमित कर श्रेष्ठ विचारों को प्रतिक्रिया विधान को अपनाना एक अच्छी रक्षा युक्ति हैं। उदाहरणार्थ यदि घृणा के स्थान पर प्रेम का उदय हो। किन्तु यदि अत्यधिक आक्रामकता अधिक श्रेष्ठ होने की भावना, अत्यधिक आदर्श मूलक अभिवृति, अत्यधिक नैतिकता अथवा अत्यधिक धार्मिकता विकृत विकास हो तो यह मानसिक विघटन तथा मानसिक रूग्णता के लक्षण होते हैं।

प्रक्षेपण

व्यक्ति अपनी विशेषताओं, अभिवृत्तियों अस्वीकृत इच्छाओं, कमियों आदि को दूसरे पर आरोपित कर देता है। किसी वस्तुनिष्ठ उद्दीपन को अपनी इच्छाओं, अभिवृत्तियों आदि के अनुसार ही देखना तथा उसकी वैसी ही व्याख्या करना प्रक्षेपण के अन्तर्गत आता है। इस रक्षा युक्ति का आवश्यकता से अधिक प्रयोग व्यक्ति को कुसमायोजित व्यक्ति के रूप में परिविर्तत कर देता है।

दमन

इस रक्षा युक्ति में व्यक्ति का अहं (Ego) उसके चेतन मन को अवांछनीय लगने वाले तथा उसके आदर्शों का विरोध करने वाले विचारों व इच्छाओं आदि को अचेतन मन में ढकेल देता है। जहाँ वे क्रियाशील रहते हुए उसके व्यक्तित्व को अस्वीकार ही नहीं करता अपितु उनकी सत्ता से ही इनकार कर उन्हें चेतना स्तर पर नहीं आने देता। दुखद एवं अवांछनीय इच्छाओं और अनुभव को भूलना अच्छा है। ऐसी स्थिति में दमन की रक्षा युक्ति उपयुक्त है।

नोट

स्थिरता

स्थिरता से तात्पर्य है- किसी वस्तु या व्यक्ति विशेष के प्रति अतिशय लगाव तथा उसे लम्बे समय तक बने रहना। उदाहरणार्थ- एक बालक बाल्यकाल में अच्छी पोशाक के अभाव के फलवरूप उसके प्रति विशेष लगाव रखते हुए अच्छी पोशाक के प्रति स्थिरण का विकास कर लेता है अपने वयस्क जीवन में आवश्यकता से अधिक शौक अच्छी पोशाक के लिये पैदा कर लेता है। इस रूप में यह रक्षा युक्ति का प्रयोग दमित इच्छाओं के चेतन स्तर पर आकर व्यक्ति को उपहास पात्र बनाने से उसकी रक्षा करती है।

यथार्थ का अस्वीकार

व्यक्ति यथार्थ स्थिति को स्वीकार नहीं करता है। यथा किसी व्यक्ति का अत्यन्त दुखद घटना को सुनकर अचानक अचेत हो जाना अर्थात् उसका दुखद परिस्थिति का यथार्थता को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। इस रक्षा युक्ति के निम्न प्रकार होते है।

(क) दिवास्वप्न – दमित या भग्न अभिलाषाओं की अनुचित संतुटि के प्रयास में व्यक्ति जागतृ अवस्था में विविध अनियन्त्रित कल्पनाओं अथवा निष्प्रयोजन चिन्तन में ही डुबे रहना दिवास्वप्न है। इस प्रकार व्यक्ति यथार्थ की संघर्षपूर्ण स्थिति से बचा रहता है। ये दो प्रकार के होते हैं - एक तो विजेता के रूप में, दूसरे कष्ट सहने वाले के रूप में। अपनी क्षमता के अनुसार भविष्य के लिये चिन्तनशील दिवास्वप्न व्यक्ति में साहस व आशा का संचार करता है। इसके अतिरिक्त अव्यावहारिक दिवास्वप्न व्यक्ति को निराशा व असफलता की और ले जाते हैं। जिसमें समायोजन के अवसर न्यूनतम होते हैं। व्यक्ति अपने आप में उलझकर, सिमटकर, जीवन की वास्तविकताओं से परे हो जाता है। यह स्थिति व्यक्ति को मनस्ताप तथा तंत्रिका ताप की ओर ले जाती है।

(ख) प्रतिगमन – इससे तात्पर्य है आन्तरिक या बाह्य संघर्ष से किसी प्रवृत्ति, आवश्यकता या लक्ष्य में बाधा पड़ने के कारण मानसिक शक्ति के स्वाभाविक प्रवाह का उलट जाना। जिससे उसकी अभिव्यक्ति पूर्व के स्तर के व्यवहार के अनुरूप हो जाती है। यथार्थ से पलायन के लिये जब व्यक्ति अपनी आयु के अनुकूल व्यवहार न करके उसके पूर्व की आयु के अनुसार व्यवहार करता है तथा अपनी आयु के अनुसार अपने उत्तरदायित्वों से अपने आपको दूर कर लेता है। यथा जीवन की यथार्थताओं का सामना करने में सक्षम वयस्क व्यक्ति बालकों अथवा किशोर के समान व्यवहार करने लगे।

(ग) निषेध प्रवृत्ति – यह रक्षा युक्ति यथार्थता से पलायन की एक अन्य युक्ति है जिसके अन्तर्गत दूसरे के सुझाव का बिना किसी प्रत्यक्ष अथवा वस्तुनिष्ठ कारण के ही सदैव प्रतिरोध करने की प्रवृत्ति को रखा जा सकता है। कठोर और अमनोवैज्ञानिक व्यवहार बालक में इस प्रकार की रक्षा युक्ति का विकास करने में सहायक होते हैं।

नोट

क्षतिपूर्ति

इसमें व्यक्ति अपनी कमियों को दूर करने का प्रयास करता है। एक व्यक्ति किसी एक क्षेत्र में असफल रहने का दूसरे क्षेत्र में सफलता के लिए प्रयत्न करता है। यह रक्षायुक्ति व्यक्ति को हीन भावना से होने वाली क्षति से बचाती है। अपनी कमियों को सृजनात्मक कार्यों द्वारा दूर करने की दृष्टि से स्वस्थ रक्षायुक्ति है। किन्तु यह रक्षा युक्ति यदि मात्र मानसिक रूप में होती है तो हानिप्रद है क्योंकि अपनी कमियों को दूर करने के लिए व्यक्ति केवल वैचारिक स्तर पर ही सीमित हो जाता है उसे व्यवहार में परिणित नहीं करता।

उदात्तीकरण

आदिम प्रवृत्तियों की शक्तियों को सामाजिक दृष्टि से उपयोगी लक्ष्यों की ओर दिशातरित कर उन्हें परिष्कृत रूप देने की अचेतन प्रक्रिया ही उदातीकरण है। इसमें इच्छायें वांछनीय रात की ओर प्रवृत्त हो जाती है जिसमें व्यक्ति की विभिन्न ग्रन्थियों व निराशाओं का शोधन हो जाता है। व्यक्ति के मानसिक स्वस्थ्य के संरक्षण के लिए यह महत्त्वपूर्ण रक्षायुक्ति है।

युक्तिकरण

इस युक्ति में व्यक्ति अपनी असफलताओं व निराशाओं को तार्किक आधार पर अभिव्यक्ति देकर अपने अहं (इगो) की तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा करता है। जीवन में समायोजन व संतुष्ट रहने के लिए यह रक्षायुक्ति उपयोगी है किन्तु इसके अधिकतम उपयोग से व्यक्ति आत्मवंचना का शिकार होता है अर्थात् ढगी हो जाता है। उसकी कथनी ओर करनी में अंतर होता है और विश्वसनीय नहीं होता।

तादात्मीकरण

इनमें व्यक्ति अपने को किसी अन्य व्यक्ति या समूह से इतना अधिक संबद्ध कर लेता है। कि वह उसके मूल्यों, आदर्शों, मान्यताओं और व्यवहार के तौर तरीकों को अपना ही समझने लगता है। इस प्रकार जो कार्य वह स्वयं नहीं कर पाता उसे उस व्यक्ति विशेष द्वारा पूरा होते देखकर माता के साथ स्वयं को संबंधित कर लेती है। वस्तुत: यह अनुसरण नहीं है। क्योंकि अनुसरण चेतन स्तर पर होता हैं यह जटिल मानसिक की स्वयं की व दूसरों की दृष्टि में अपने आत्म सम्मान की रक्षा करना व आत्म सम्मान को बढ़ाना है। यह तादात्मीकरण व्यक्तियों, विचारों तथा संस्थाओं के साथ हो सकता है।

विस्थापन

इसमें व्यक्ति किसी अभिप्रेरक के संतुष्ट न होने अथवा किसी प्रयत्न के विफल हो जाने से उत्पन्न आक्रामक तथा शत्रुतापूर्ण भावनाओं को उस दुश्चिन्ताजनक मूल स्थिति या व्यक्ति से हटाकर अनजाने ही उससे एकदम असंबद्ध किसी अन्य व्यक्ति या स्थिति पर केन्द्रित कर देता है। उदाहरणार्थ बालक अपने से बड़ी से मार खाकर छोटों को मारता है अथवा खिलौने तोड़ देता है। इससे मानसिक तनाव से मुति थोड़े ही समय के लिए होती है। अत: इस युक्ति का सीमित उपयोग ही उपयुक्त है।

विपर्याय

इस रक्षायुक्ति का अर्थ है कि दमन की गई मनोग्रंथि की किसी प्रभावक द्वारा अर्थात् शारीरिक लक्षणों द्वारा अभिव्यक्ति। शारीरिक लक्षण दमन की गई मनोग्रंथि की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होते हैं जिससे दमित इच्छा

की परोक्षत: तुप्ति होती है। इसमें व्यक्ति पक्षाघात, जी घबराना, सिर दर्द, हिस्टीरिया आदि शारीरिक लक्षणों के माध्यम से जीवन की कठोर वास्तविकताओं से स्वयं की रक्षा के प्रयास में मानसिक अस्वस्थता के स्थान पर शारीरिक अस्वस्थता को स्वीकार कर लेता है। जिससे अपने मित्रों व निकटस्थ संबंधियों से सहानभुति प्राप्त कर अपने आप को सुरक्षित व महत्त्वपूर्ण समझकर संतुष्ट हो जाता है। विपर्याय का एक सीमा से अधिक उपयोग मानसिक असंतुलन का कारण हो सकता है।

नोट

बौद्धिकीकरण

इस रक्षायुक्ति में व्यक्ति वैयक्तिक घटना का सामान्यीकरण कर समायोजन करता है। उदाहरणार्थ किसी दुखद घटना घटने पर उसे ईश्वरेच्छा कहकर अपने दु:ख को कम करना चाहता है। किन्तु इस युक्ति की अधिकता से आत्मवंचना भी संभव है जो मानसिक अवस्था व कुसमायोजन की द्योतक है। किन्तु यदि आत्मवंचना न हो तो यह युक्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी के माध्यम से श्रीकृष्ण द्वारा अजुर्न को कर्तव्यबोध कराने का प्रमाण उपलब्ध है।

4.7 समायोजन प्रतिमान

समायोजन हेतु मनौवैज्ञानिक ने अपने-अपने सिद्धांतों के आधार पर समायोजन प्रतिमान प्रस्तुत किए हैं। प्रतिमान वस्तुत: मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगों के आधार पर प्राप्त सिद्धांतों में परस्पर संबंध स्थापित करना है। प्रतिमानों में पूर्णता तथा विस्तार की दृष्टि से भिन्नता हो सकती है। समायोजन की दृष्टि से इस अध्याय में तीन प्रतिमान प्रस्तुत किए जा रहे है। प्रत्येक प्रतिमान का यहाँ वर्णन प्रतिमान के मूलभूत सिद्धान्त तथा मनोवैज्ञानिक विचारों 'पर प्रभाव के संदर्भ में किया जा रहा है।

मनोविश्लेषणात्मक प्रतिमान

यह प्रतिमान सिगमंड फ्रायड के कठिन परिश्रम का परिणाम है। यह प्रतिमान अत्यन्त जटिल है। किंतु जटिल होने के साथ ही सुव्यवस्थित भी है।

मनोविश्लेषणात्मक प्रतिमान के प्रमुख सिद्धान्त : इस प्रतिमान के प्रमुख सिद्धान्त निम्न हैं –

(क) इड, अहम (Ego) **तथा पराअहम्** (Super Ego) – व्यक्तित्व में अंतर्निहित इन तीनों उपविधानो की परस्पर अंतक्रिया पर ही व्यक्ति का व्यवहार आधारित होता है।

(ख) दुश्चिंता, रक्षायुक्तियाँ तथा अचेतन – दुश्चिन्ता मनोवलेणामक प्रतिमान में सबसे महत्त्वपूर्ण है। फ्रायड के अनुसार तीन प्रकार की दुश्चिन्ता होती है। यथार्थ दुश्चिन्ता स्नायुविक दुश्चिन्ता तथा नैतिक दुश्चिन्ता। दुश्चिन्ता व्यक्तित्व के आंतरिक विघटन के लिए भयावह चेतावनी होती है। प्राय: अहं तर्कसम्मत उपायों की सहायता से दुश्चिन्ता के दूर करने के लिए समायोजन करता है। तर्कसम्मत उपायों के असफल होने पर रक्षा युक्तियों की सहायता से दुश्चिन्ता से समायोजन करता है। दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्व इस प्रतिमान में अचेतन का है। फ्रायड के अनुसार अचेतन की अपेक्षा चेतन, मस्तिष्क का एक छोटा सा भाग है। फ्रायड ने पानी में डूबे हम खंड से चेतन व अचेतन की तुलना की है व्यक्ति अचेतन से सर्वथा अनभिज्ञ रहता है। किंतु फिर भी अचेतन सदैव अभिव्यक्ति के अवसर खोजता रहता है तथा कल्पना एवं स्वयं की सहायता से अभिव्यक्ति देता है।

(ग) मनोयौनात्मक विकास :- फ्रायड के अनुसार व्यक्ति का विकास विभिन्न चरण में होता है। प्रत्येक अवस्था यौन आनंद की विशिष्टता लिए हुए होती है। फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व के विकास की निम्न अवस्थायें होती हैं।

गदु अवस्था (Anal) मौखक (Oral) लिंग अवस्था (Phallic) काम प्रसुप्ति काल, जननांगिक (Genital)। प्रत्येक अवस्था की व्यक्तित्व से एक विशेष मांग होती है। मांग की पूर्ति द्वंद के समाधान के लिए आवश्यक होती है।

नोट

(घ) **मनोनैदानिक स्थिति के प्रति विचार** :- मनोविश्लेषणवादी प्रतिमान के अनुसार व्यक्ति मूल प्रवृत्यात्मक जैविक चालकों, अचेतन इच्छाओं और प्रेरकों से अपने व्यवहार हेतु प्रभावित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में सृजनात्मक केन्द्रीय रागात्मक शक्ति (Libido) भी होती है। इस केन्द्रीय रागात्मक शक्ति का विघटनात्मक पक्ष भी होता है जो मनुष्य का सर्वनाश व मृत्यु की ओर ले जाता है। अहं के आधार पर व्यवहार तर्कसम्मत होता है, जबकि अंतर्मानसिक द्वंद, रक्षायुक्तियां तथा अचेतन व्यक्ति के अतार्किक तथा अपव्यनुकूल (Maladaptive) व्यवहार के प्रेरक होते है। व्यक्ति के व्यवहार का आधार इन सबके अतिरिक्त उसका अधिगम भी होता है। मनोविश्लेषणात्मक प्रतिमान मानव व्यवहार के नकारात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। यह नकारात्मक दृष्टिकोण मानव व्यवहार के तार्किक तथा आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता के महत्व को कम करता है। यद्यपि यह प्रतिमान कग्राफी आलोचना का विषय रहा है किन्तु फिर भी मनुष्य के सामान्य व असामान्य व्यवहार के संबंध में फ्रायड का महत्वपूर्ण योगदान हैं अत: फ्रायड द्वारा प्रस्तुत मनोविश्लेषणात्मक प्रतिमान के विभिन्न संप्रत्यय मानव व्यवहार के संबंध में चिन्तन के लिए मूलभतू व महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करते है।

व्यवहारवादी प्रतिमान

व्यवहारवादियों ने इस प्रतिमान के लिए अधिगम को आधार बनाया हैं व्यवहारवादी प्रतिमान के केन्द्र "मानव व्यवहार में अधिगम की भूमिका" है।

व्यवहारवादी प्रतिमान के मूल सिद्धान्त- इस प्रतिमान में अधिगम ही केन्द्रीय सिद्धान्त है। अधिकांशत: मानव व्यवहार अधिगम के माध्यम से होता है। अत: व्यवहारवादियों ने अधिगम कैसे होता है, इसी को महत्व दिया तथा निम्न तथ्यों को विशेष रूप से ध्यान में रखा:-

- शास्त्रीय तथा क्रियाप्रसूत अनुकूलन में व्यवहार उद्दीपक पर निर्भर करता है।
- शास्त्रीय व क्रियाप्रसूत अनुकूलन में पुनर्बलन न प्रधान तत्व है। पुनर्बलन न अर्थात् उद्दीपन की निरंतर पुनरावृति से नई अनुक्रिया का दृढ़ीकरण होता है।
- सामान्यीकरण व विभेदीकरण के संदर्भ में उद्दीपक की समानता के आधार पर समान उद्दापक से भी समान अनुक्रिया प्राप्त होती है।

व्यवहारवादियों द्वारा प्रस्तुत उक्त प्रतिमान की, प्रतिरूपण व प्राथमिक तथा माध्यमिक चालकों के आधार पर अधिक स्पष्ट व्याख्या की जा सकती है। प्रतिरूपण का अर्थ है, वांछित अनुक्रिया प्रतिमान का अधिगमकत्र्ता द्वारा दर्शन किया जाना शेपिंग (Shaping) की प्रक्रिया के माध्यम से उस अनुक्रिया की उत्पत्ति होती है, जो इस जात के प्राणी में जैविकता की दृष्टि से नहीं होती, यथा कबतूरों का पिंग पोंग खेलना। इस प्रक्रिया की सहायता से जटिल अधिगम हेतु जटिल अनुक्रिया करवायी जा सकती है।

व्यवहारवादियों के अनुसार मानव के व्यवहार की उत्प्रेरणा हेतु प्रथमत: जैविक चालक कार्य करते हैं। किन्तु इसके साथ ही अनेक प्रकार के अन्य चालक भी मानव को व्यवहार के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं। वस्तुत: वे सभी प्रेरक इन प्राथमिक जैविक चालकों का अधिगमित विस्तार है।

मनोनैदानिक विचारों पर प्रभाव

मनोनैदानिक विचारों पर व्यवहारवाद के प्रतिमान के प्रभाव को यदि देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि व्यवहारवाद द्वारा व्यवहार के अर्जन परिष्करण तथा विभेदीकरण की व्याख्या का प्रयत्न भी किया गया है। यह प्रतिमान विशिष्ट व्यवहार की परिवर्तनशीलता तथा व्यवहार की वस्तुनिष्ठता आदि का सूक्ष्म विश्लेषण करने में भी सक्षम है। किन्तु इसके साथ ही कुछ बिन्दु व्यवहारवादियों के इस प्रतिमान को आलोचना का विषय बनाने में सहायक है यथा-

नोट

यह प्रतिमान मानव व्यवहार के जटिल पक्षों को सुलझाने में असफल रहा है। विषयगत अर्थात् अधिगमकर्त्ता के अनुभव संबंधी विश्लेषण जीवन मूल्यों का पक्ष तथा मानव जीवन में इन मूल्यों की अवस्थिति के महत्त्व तथा व्यवहार के लिए आत्मनिर्देशन संबंधी समस्याओं का भी कोई हल व्यवहारवादियों के इस प्रतिमान द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया।

किन्तु निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि व्यवहारवाद के प्रतिमान में जो कमियाँ हैं उनके बावजूद भी यह मानव प्रकृति व मानव व्यवहार संबंधी विचारों को कग्राफी सीमा तक प्रभावित करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं। मनोनैदानिक विचारों पर भी इनका प्रभाव विशिष्ट रूपेण परिलक्षित होता है।

मानवतावादी प्रतिमान

इस प्रतिमान को मनोविश्लेषणवादी व व्यवहारवादी प्रतिमान दोनों ने ही प्रभावित किया है। किंतु फिर भी मानवतावादी प्रतिमान दोनों ने ही प्रभावित किये हैं किन्तु फिर भी मानवतावादी प्रतिमान इन दोनों से ही कुछ सीमा तक असहमत भी रखता है। मानवतावादी प्रतिमान व्यक्ति की मूल प्रकृति के "अच्छा होने" में विश्वास रखता हैं मनुष्य में उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग से आत्मनिर्देशन की प्राकृतिक क्षमता होती है। इसी तथ्य को इस प्रतिमान में अत्यधिक महत्त्व दिया गया है।

मानवतावादी प्रतिमान के प्रमुख सिद्धान्त

मनुष्य की अंतर्निहित क्षमताओं में इस प्रतिमान का अखंड विश्वास (क) एकीकरण का कारक (ख) मनुष्य का "स्व" मनोविश्लेषणवादियों के अहं से ही सादृश्यता नहीं रखता है अपितु इस "स्व" के अन्तर्गत व्यक्ति की आत्मानुभूति की क्षमता, संसार के साथ व्यक्ति का संबंध, आत्म मूल्यांकन व निरंतर आत्मपूर्णता की प्रवृत्ति भी सम्मिलित की गयी हैं मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों में कार्ल रोजर्स ने "स्व" की अवधारणा को व्यवस्थित रूप से विकसित किया है। सारांश रूप से "स्व" की धारणा निम्न प्रकार है –

(1) मैं और मेरा अपना को केंद्रीभूत करके प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक निजी वैयक्तिक संसार होता है।

(2) "स्व" के अनुरक्षण, वृद्धि तथा पूर्णता के प्रति प्रत्येक व्यक्ति प्रयासरत रहता है।

(3) किसी भी प्रेरक के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया का आधार उसकी "स्वधारणा" तथा संसार के प्रति उसका दृष्टिकोण होता है।

(4) "स्व" की क्षति की सम्भावना का प्रत्यक्षीकरण ही "स्व" की रक्षायुक्तियों का आधार होता है।

(5) सामान्य की आन्तरिक प्रवृत्तियाँ स्वयं की पूर्णता तथा स्वस्थ्य की ओर उन्मुख होती है।

(6) सामान्य परिस्थितियों में व्यक्ति तर्कसम्मत व सृजनात्मक व्यवहार ही करता है।

(ख) वैयक्तिक विकास एवं जीवन मूल्य: मानवतावादी प्रतिमान में सार्थक जीवन जीने के लिए तथा व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशन देने के लिए जीवन मूल्यों तथा मूल्यों के विकल्प चयन की प्रक्रिया

का अत्यन्त महत्चपूर्ण स्थान है। यह विचार व्यक्ति के साथ समाज के लिए भी कार्यान्वित किया जा सकता है।

(ग) **मानव सामर्थ्य तथा मानव प्रकृति के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण** : मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि सृजनात्मक, सहाकारितापूर्ण तथा सौहाद्रपूर्ण व्यवहार के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर मानव की क्षमतायें सकारात्मक रूप से क्रियाशील होती है, क्योंकि मनुष्य निष्क्रिय स्वचालित प्राणी नहीं है अपितु एक क्रियाशील व्यक्तित्व है। वैयक्तिक रूप से अपने तथा अपने समाज के भाग्य निर्माता के रूप में व्यक्ति को जीवन का आकार प्रदान करने की स्वतंत्रता भी है। वह अपने जीवन की दिशा निर्धारण तथा समाज के प्रति अपने सक्रिया योगदान देने के लिए स्वतंत्र है।

नोट

मानवतावादी प्रतिमान का मनोनैदानिक विचारों पर प्रभाव

मानववतावादी प्रतिमान के अनुसार मनोनिदान वैयक्तिक वृद्धि व विकास में बाधक व अवरोधक होता है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए निम्नलिखित आधार मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं:

- अहं द्वारा रक्षायुक्तियों का अधिकता से प्रयोग।
- दोषपूर्ण अधिगम तथा प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियाँ।
- अत्यन्त दबाव व तनाव की स्थितियाँ।

मानवतावादियों के प्रतिमान की आलोचना

इसकी आलोचना मानवतावाद के सिद्धांतों का बखराव, सिद्धांतों के प्रतिपादन में वैज्ञानिक नियमबद्धता, परिश्रम व संयम का अभाव तथा मनोविज्ञान से अधिकाधिक अपेक्षाओं के कारण की जाती है।

4.8 सुसमायोजि व्यक्तियों की विशेषतायें

मनोवैज्ञानिक सुसमायोजन के तत्वों के संबंध में भिन्न-भिन्न मत रखते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक सामाजिक मान्यताओं के अनुसार जीवन व्यतीत करने की व्यक्ति की क्षमता के आधार पर समायोजन का मूल्यांकन करते हैं। इस धारणा के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति विद्वेषपूर्ण व स्वार्थी इच्छायें रखता है तथा सभी व्यक्ति असम्भव उद्देश्यों व इच्छाओं के स्वप्न देखते हैं, कल्पना करते हैं। किन्तु जो व्यक्ति अपने इन इंद्रिय वेगों को नियंत्रित करना सीख लेते हैं तथा समाज के आदर्शों की सीमा के अंदर ही अपने उद्देश्यों को सीमित कर लेते हैं वह सुसमायोजित माने जाते हैं। अन्य मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि जो व्यक्ति नमनीयता, सृजनात्मकता तथा सहजता के आधार पर जीवन की कठिनाइयों तथा अस्पष्टता का सामना करने की योग्यता रखता है वह सुसमायोजित है। कुछ विचार है कि तनाव की अनुपस्थिति ही प्रभावशाली समायोजन का प्रतीक है। एक और वर्ग है मनोवैज्ञानिकों का, जिनकी मान्यता है कि सुसमायोजित व्यक्ति परम्परा तथा नवाचार एवं आत्म नियंत्रण तथा स्वैच्छिकता में संतुलन रख सकता हैं सुसमायोजित व स्पष्ट की है। इनका विचार है कि सुसमायोजित व्यक्ति स्वयं को पूर्ण (Self-actualize) बनाने का प्रयास करते हैं अर्थात् वे अपने व्यक्तिगत विकास व पूर्णता हेतु जो श्रेष्ठ समझते हैं उसी के अनुसार व्यवहार करते हैं। दूसरे क्या सोचते हैं उसकी परवाह नहीं करते। हास्य की प्रवृत्ति, सृजनात्मकता, तथा सांस्कृतिक स्वायत्तता आदि।

इन विशिष्टताओं के साथ ही मैसलो का यह विचार है कि ये सुसमायोजित व्यक्ति पूर्ण ही हो यह आवश्यक नहीं है।

यह पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि समायोजन एक अधिगम प्रक्रिया है। अत: यह भी निश्चित है कि यह अधिगम प्रक्रिया छात्र के व्यक्तित्व का विकास भी कर सकती है तथा विकास में बाधक भी हो सकती है। अत: योग्य शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह छात्र के व्यक्तित्व का विकास भी कर सकती है तथा विकास में बाधक भी हो सकती है। अत: योग्य शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि वह छात्र के व्यक्तित्व के विकास में सहायक निम्न प्रक्रियाओं से अपने को परिचित रखे -

नोट

यथार्थ स्थिति का स्वयं सामना करने के लिए : छात्र अपने संवेगों को समझने तथा अपनी क्षमताओं के मूल्यांकन में प्राय: समर्थ नहीं होते है। अत: यथार्थताओं का सामना करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। विद्यार्थी की समक्ष प्राथमिक उद्देश्य वास्तविकताओं को समझकर उनसे समायोजन करना है और शिक्षक का दायित्व इस वैयक्तिक समायोजन में विद्यार्थी की सहायता करना है कि विद्यार्थी अपनी वैयक्तिक समस्याओं का समाधान यथार्थता के धरातल पर कर सकें।

यथार्थता से पलायन से रक्षा के लिए पलायन की युक्तियों का समझकर शिक्षक उपयुक्त समायोजन के लिए विद्यार्थियों का निर्देशित कर सकता है। यथा पलायनवादी छात्र में उन छात्र के संबंध में विचार सर्वप्रथम आवश्यक है जा चुपचाप रहने वाले और एकांकी है। सामान्यत: शिक्षकों का ध्यान कार्य में बाधक बनने वाले विद्यार्थियों की ओर ही जाता है। किन्तु आज आवश्यकता है उन बालकों पर ध्यान देने की जो कभी किसी कार्य में भाग नहीं लेते तथा किसी भी कार्य में बाधा उत्पन्न नहीं करते हैं। विकमैन द्वारा अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि इस प्रकार के पलायनवादी बालक स्वस्थ वैयक्तिक विकास के अभाव में अधिक ध्यान दिए जाने योग्य हैं क्योंकि जब बालक कक्षा में पढ़ने के अपने दायित्वों का नहीं वहन करता है तब वह अपने सामाजिक संवेगात्मक समायोजन में भी अभावग्रस्त रहता है। चुप रहने वाले बालक विषय वस्तु के अधिगम तथा अपने व्यक्ति के समायोजन के संबंध में भी कम समझ पाते हैं। अत: शिक्षक का दायित्व है कि ऐसे बालकों को, एकाकीपन के घेरे में से निकाल कर उनके सुसमायोजन में सहायता करें। कुछ युक्तियों जो इस प्रकार के बालकों द्वारा युक्त की जाती हैं वे हैं दिवास्वप्न, प्रत्यावर्तन निषेध प्रवृत्ति आदि। निराशा तथा असफलता की स्थिति ही दिवास्वप्न युक्ति से पलायन के लिए बालक को प्रेरित करती है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों की निराशा के कारण जानकर तथा दिवास्वप्नों की विषय वस्तु के अवबोध के माध्यम से उनकी रुचियों तथा विद्यार्थी की क्षमता में तालमेल बिठाकर सृजनात्मक कार्यों में लगाना उपयुक्त होगा। प्रत्यावर्तन में बालक अपनी आयु के स्तर के व्यवहार से प्रतिगमन का पूर्व वर्षों के अनुसार व्यवहार करने लगता है। ऐसी स्थिति में शिक्षक का दायित्व होता है कि वह मूल्यांकन करे कि इस प्रकार के विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत पाठ्यक्रम कितना उपयुक्त है? क्या विद्यार्थी की रुचि व कठिनाई के संबंध के आधार पर पाठ्यक्रम चुनौतीपूर्ण है? क्या शिक्षा विधियां उपयुक्त है? अथवा क्या विद्यालय की गतिविधियों में पर्याप्त विविधता है? आदि मिथ्या समायोजन के प्रतिस्थापन से रक्षा मिथ्या समायोजन प्रतिस्थापन में दो प्रमुख रक्षायुक्तियों "स्व" की रक्षा के लिए युक्त होती है। (i) क्षतिपूर्ति (Compensation) एवं (ii) उदात्तीकरण (Sublimation) सर्वप्रथम एक प्रश्न विचारणीय है कि क्या शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य के प्रतिस्थापन से उन्नत आवश्यक व अस्थायी मिथ्या समायोजन बालक के स्वस्थ समायोजन तथा विकास में सहायक है।

क्षतिपूर्ति की युक्ति बालक के दुर्व्यवहार से परेशान शिक्षक के लिए सहायक है। शिक्षक थोड़ा सा समय देकर बालक के उक्त व्यवहार में छिपी हुई भग्नाशा (Frustration) को ज्ञात कर सकता है। क्योंकि बालक को स्वयं पता नहीं होता है कि ऐसा व्यवहार किस क्षति की पूर्ति के लिए वह कर रहा है? ऐसी स्थिति में शिक्षक

आंतरिक व बाह्य रूप में क्षति के लिए कारणों का पता लगाकर बालक के लिए स्वस्थ समायोजन में सहायक हो सकता है।

उदात्तीकरण की रक्षापूर्ति के दुर्व्यवहारिक समायोजन के लिए लाभप्रद मानी गई है। इसको अनजाने में युक्त आत्मवंचनायुक्त व्यक्ति की अपेक्षा लाभदायक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में शिक्षक द्वारा विकसित किया जाना चाहिए.। जब शिक्षक व विद्यार्थी दोनों पारस्परिक अवबोध के आधार पर प्रतिस्थापन संबंधी युक्तियों द्वारा नये उद्देश्य का एक सीमा तक महत्व समझ जाते हैं तब समायोजन द्वारा व्यक्तित्व का स्वस्थ विकास होता है।

नोट

4.9 मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ

उपर्युक्त विचारों से यह स्पष्ट होता है कि मानसिक स्वास्थ्य के द्वारा ही व्यक्ति जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में अपने को समायोजित कर सकता है। मानसिक स्वास्थ्य के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने निम्नांकित परिभाषाएँ दी हैं–

1. **हेडफील्ड** (Headfield)–"साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पूर्ण सामंजस्य के साथ कार्य करना है।" (In general terms we may say that mental health is the full harmonious functioning of the whole personality.)
2. **लैडेल** (Ledell)–"मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है–वास्तविकता के धरातल पर वातावरण से पर्याप्त सामंजस्य करने की योग्यता।" (Mental health means the ability to make adequate adjustments to the environment on the plane of reality.)
3. **कुप्पूस्वामी** (Kuppuswamy)–"मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है–दैनिक जीवन में भावनाओं, इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं, आदर्शों में सन्तुलन रखने की योग्यता। इसका अर्थ है–जीवन की वास्तविकताओं को सामना करने और उनको स्वीकार करने की योग्यता।" (Mental health means, the ability to balance feelings, desires, ambitions and ideals in one's daily. It means the ability to face and accept the reality of life.)

4.10 मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ

मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान को, 'मानसिक आरोग्य' नाम भी दिया गया है। मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ है–मन को स्वस्थ या निरोग रखने वाला विज्ञान। जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य-विज्ञान का सम्बन्ध शरीर के स्वास्थ्य से होता है, उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य से होता है।

जिससे व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास हो सके ताकि व्यक्ति जीवन की सरल और कठिन दोनों प्रकार की परिस्थितियों में समायोजन स्थापित करने में समर्थ हो। इस विज्ञान के अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने निम्नांकित परिभाषाएँ दी हैं–

1. **ड्रेवर** (Drever)–"मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ है–मानसिक स्वास्थ्य के नियमों की खोज करना और उनको सुरक्षित रखने के उपाय करना।" (Mental hygiene means investigation of the laws of mental health and taking of measures for its preservation.)

2. **हेडफील्ड** (Headfield)–"मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा और मानसिक अव्यवस्थापन को दूर करने से है।" (Mental hygiene is concerned with the maintenance of Mental health and the prevention of mental disorder.)
3. **क्रो और क्रो** (Crow and Crow)–"मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान वह विज्ञान है जो मानव कल्याण के विषय में बताता है और मानव सम्बन्धों के सब क्षेत्रों को प्रभावित करता है।" (Mental hygiene is a Science that deals with the human welfare and pervades all fields human relationships.)

नोट

ए.जे. रोजानफ (Rojanoff A.J.)–"मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान व्यक्ति की कठिनाइयों को दूर करने में सहायता देता है तथा कठिनाइयों के समाधान के लिए साधन प्रस्तुत करता है।" (Mental hygiene endeavours to aid people toward of troubles as well as to furnish ways of handling troubles.)

कालसनिक (Kolesnik)–"मानसिक स्वाथ्य-विज्ञान नियमों का समूह है जो व्यक्ति को स्वयं तथा दूसरों के साथ शान्ति से रहने के योग्य बनाता है।" (Mental hygiene is a set of conditions which enable person to live at peace with himself and others.)

वेबस्टर डिक्शनरी (Webster's Dictionary) में मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया गया है–"मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान वह विज्ञान है जिसके द्वारा हम मानसिक स्वास्थ्य को स्थिर रखते हैं तथा पागलपन और स्नायु सम्बन्धी रोगों को पनपने से रोकते हैं। साधारण स्वास्थ्य-विज्ञान में केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ही ध्यान दिया जाता है, परन्तु मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान में मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य को भी सम्मिलित किया जाता है, क्योंकि बिना शारीरिक स्वास्थ्य के मानसिक स्वास्थ्य सम्भव नहीं है।"

इस कथन के अनुसार शिक्षण-प्रक्रिया में शिक्षार्थी एवं शिक्षक दोनों के मानसिक स्वास्थ्य का ठीक होना अनिवार्य है। मानसिक रूप से स्वस्थ न होने पर बालक को शिक्षा ग्रहण करने में तथा शिक्षक को शिक्षण-कार्य में सफलता नहीं मिलती। अत: उनके मानसिक अस्वास्थ्य के कारणों पर तथा मानसिक स्वास्थ्य को अच्छा बनाए रखने वाले उपायों पर विचार करना आवश्यक है।

4.11 बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले कारक

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले अनेक कारण या कारक होते हैं। ये कारक निम्नलिखित हैं–

1. **वंशानुक्रम का प्रभाव**–दोषपूर्ण वंशानुक्रम के कारण बालक में मानसिक दुर्बलता जैसे–बुद्धि की कमी या स्नायु सम्बन्धी रोग पाये जाते हैं। इस कारण वह मानसिक रूप से अस्वस्थ रहता है।
2. **शारीरिक स्वास्थ्य का प्रभाव**–शारीरिक स्वास्थ्य का मानसिक स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। रोगी व्यक्ति नयी परिस्थितियों से सामंजस्य करने में कठिनाई का अनुभव करता है।
3. **शारीरिक दोष या विकार का प्रभाव**–शारीरिक दोष दुर्घटना या बीमारी आदि के कारण आ जाते हैं। शारीरिक दोष के कारण भी बालक में हीनता की भावनाएँ पैदा हो जाती

हैं। उसके लिए हीनता की भावनाएँ अपने साथयों और समाज के बीच समायोजन की समस्याएँ पैदा कर देती हैं।

नोट

4. **परिवार से सम्बन्धित कारण**–बालक के व्यक्तित्व पर परिवार सम्बन्धी निम्नांकित कारकों का प्रभाव पड़ता है–

   (क) **परिवार का वातावरण**–यदि परिवार के सदस्यों में सदा लड़ाई-झगड़ा या पारस्परिक संघर्ष होता रहता है तो बालक पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

   (ख) **परिवार की निर्धनता**–परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण बालक कठोर और उग्र हो जाता है, उसमें सुरक्षा का अभाव, आत्मविश्वास की कमी तथा हीनता की भावना पैदा हो जाती है और ये सब बातें उसके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती हैं।

   (ग) **परिवार का कठोर अनुशासन**–यदि बालक को छोटी-छोटी बातों पर डाँट-फटकार पड़ती रहती है तो उसमें आत्महीनता की भावना उत्पन्न हो जाती है। ऐसे वातावरण में वह मानसिक रूप से अस्वस्थ रहता है।

   (घ) **माता**-पिता का अनुचित पक्षपात–यदि परिवार में माता-पिता किसी कारणवश किसी बच्चे को कम और किसी को अधिक स्नेह करते हैं, तब भी उन बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है जिन्हें कम स्नेह मिलता है। ऐसी स्थिति में अन्य भाई-बहनों से या परिवार के अन्य बच्चों से ईष्या-द्वेष के भाव रखते हैं। उनमें झगड़ालू प्रवृत्ति पैदा हो जाती है और वे सदा दूसरों को हानि पहुँचाने का प्रयत्न करते रहते हैं।

   (ङ) **माता**-पिता की अत्यधिक ममता–बहुत से माता-पिता इकलौते बच्चों को या मुश्किल से जीवित रहने वाले बच्चों या अमीरी आदि के कारणों से बच्चों को अत्यधिक स्नेह करते हैं। इससे भी बालकों को हानि होती है। उनमें आत्मनिर्भरता का अभाव पाया जाता है। वे जीवन की कठिनाइयों का सामना करने में असमर्थ होत हैं।

   (च) **माता**-पिता के ऊँचे आदर्शों का प्रभाव–जिस परिवार में माता-पिता ऊँचे नैतिक आदर्शों वाले होते हैं, वे अपने बच्चों से भी उन्हीं आदर्शों के अनुकूल आचरण करने की आशा करते हैं। इन ऊँचे आदर्शों के बोझ से दबकर बच्चों को ये हानियाँ उठानी पड़ती हैं–वे साधारण जीवन से दूर रहकर, कल्पना लोक में विचरण करने लगते हैं। इस प्रकार वे संसारिक समस्याओं को हल नहीं कर पाते। उसके मन में भावना-ग्रन्थियाँ पड़ जाती हैं। उनके मन में आदर्श और यथार्थ के बीच सदा संघर्ष होता रहता है। फलस्वरूप स्नायुमंडल (Nervous System) प्रभावित होता है और उनमें स्नायु सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

5. **मनोवैज्ञानिक कारण**–मानसिक अस्वास्थ्य के उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक कारण हैं जो मानसिक अस्वास्थता या मानसिक विकार उत्पन्न करने में सहायक होते हैं, जिन्हें मानसिक संघर्ष, संवेगात्मक तनाव, भावना-ग्रन्थियाँ, चिन्ता, मानसिक दुर्बलता और थकान आदि कहा जाता है। इनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इन सबका बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

नोट

6. **समाज से सम्बन्धित कारण**–बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर समाज के दोषपूर्ण संठन और वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। असंगठित समाज के बालकों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं रह सकता, क्योंकि यहाँ के वातावरण में सदा कलह, लड़ाई-झगड़े, विभिन्न प्रकार की सामाजिक बुराइयाँ जैसे–चोरी, झूठ, बेईमानी आदि दिखाई देती हैं। इस प्रकार के समाज में पलने वाले बालकों में संवेगात्मक अस्थिरता, ईर्ष्या, द्वेष, कलह, आचरणहीनता आदि दुर्गुण स्थान बना लेते हैं। समाज के जातीय और धार्मिक संघर्ष, धनी और निर्धन वर्ग की दूरी, ऊँच-नीच की भावनाएँ, विभिन्न समूहों में ईर्ष्या, द्वेष, असहयोग आदि–बालकों में मानसिक तनाव पैद कर देते हैं। समाज की इस प्रकार की स्थिति और वातावरण बालक के मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।

7. **विद्यालय से सम्बन्धित कारण**–परिवार के बाद बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर विद्यायल का भी अवांछनीय प्रभाव इस प्रकार पड़ता है।

   (क) **विद्यालय का वातावरण**–यदि विद्यालय में बालक पर अत्यधिक नियंत्रण रखा जाता है उसकी इच्छाओं का दमन किया जाता है या पाठ्य विषयान्तर क्रियाओं में भाग नहीं लेने दिया जाता, तब उसके मानसिक स्वास्थ्य में बाधा पड़ती है। यदि विद्यालय तथा कक्षा में सदा कड़े अनुशासन और भय का वातावरण रहता है, तो बालक मानसिक रूप से अस्वस्थ रहता है।

   (ख) **दोषपूर्ण पाठ्यक्रम**–यदि बालकों को उनकी रुचि, आवश्यकताओं और योग्यताओं के अनुसार पाठ्यक्रम नहीं मिलता तो वे पढ़ने में रुचि नहीं लेते और परीक्षा में असफल हो जाते हैं, इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य खराब हो जाता है। जब उन्हें पाठ्य-विषय नहीं याद हो पाता तो वे सदा चिन्तित और भयभीत रहते हैं कि उन्हें में दण्ड मिलेगा। प्राय: ऐसे बालक मानसिक तनाव की स्थिति में रहते हैं और अपराध-प्रवृत्ति के शिकार हो जाते हैं। प्राय: वे पाठशाला से भाग जाते हैं।

   (ग) **अनुपयुक्त शिक्षण-विधियाँ**–यदि शिक्षक वैयक्तिक भिन्नता पर ध्यान न देकर, अमनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करते हैं, तो बालक को ज्ञानार्जन में कठिनाई होती है और वह जब कुछ, सीख नहीं पाता तो निराश हो जाता है।

   (घ) **दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली**–वर्तमान समय में आत्मनिष्ठ परीक्षाएँ प्रचलित हैं, उनसे बालक की वास्तविक प्रगति और योग्यता का सही मूल्यांकन नहीं हो पाता। प्राय: परीक्षा के अनेक दोषों के कारण योग्य बालकों को कक्षोन्नति नहीं मिल पाती और भाग्यवश किन्हीं कारणों से अयोग्य बालक अच्छी तरह उत्तीर्ण हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में योग्य बालक निरुत्साहित होकर आत्मविश्वास खोने लगते हैं और अयोग्य बालक भी पढ़ने में रुचि नहीं लेते हैं। इस प्रकार के बालक विद्यालय तथा समाज में अपने का समायोजित नहीं कर पाते।

   (ङ) **प्रतियोगिता की भावना**–प्रतियोगिता की भावना, जिसमें ईर्ष्या, द्वेष और घृणा के भाव होते हैं वह भी बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं।

   (च) **शिक्षक के व्यक्तित्व का प्रभाव**–यदि शिक्षक में संवेगात्मक अस्थिरता होती है तो वह बालक से उचित व्यवहार नहीं कर पाता। उसका व्यवहार कठोर और

पक्षपातपूर्ण हो जाता है। यदि वह छोटी-छाटी बात पर दण्ड देता या डाँटता रहता है तो बालकों का मस्तिष्क असन्तुलित हो जाता है। ऐसी स्थिति में बालक अधिक उग्र और उद्दण्ड बन जाते हैं या सदा भयभीत से रहते हैं और भावना-ग्रन्थियों के शिकार बन जाते हैं।

नोट

4.12 तनाव या प्रतिबल का अर्थ एवं विशेषताएँ

तनाव या प्रतिबल (stress) आधुनिक समाज की एक बड़ी समस्या है। आधुनिक शोधों से यह पता चलता है कि करीब 75% रोगों का कारण यही तनाव होता है। यहाँ तक हृदय रोग एवं कैंसर जैसे जानलेवा रोगों में भी तनाव की भूमिका स्थापित हो चुकी है। प्रश्न यह उठता है कि तनाव का क्या अर्थ होता है? मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को परिभाषित करने में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों को अपनाया है जो इस प्रकार हैं–

1. कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को उद्दीपक (stimulus) कारकों के रूप में समझने की कोशिश की है और कहा है कि कोई भी घटना (event) या परिस्थिति जो व्यक्ति को असाधारण अनुक्रिया करने के लिए बाध्य करता है तनाव कहलाता है। घटनाएँ जैसे भूकंप, अगजनी, नौकरी छूट जाना, व्यवसाय का खत्म हो जाना, प्रियजनों की मृत्यु आदि कुछ प्रमुख घटनाएँ हैं जो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती हैं। ऐसे भौतिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय कारकों को जो तनाव उत्पन्न करते हैं, आसेधक (stressor) कहा जाता है।
2. कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को अनुक्रिया (response) के रूप में परिभाषित करने की कोशिश की है। यहाँ मनोवैज्ञानिकों द्वारा कठिन परिस्थितियों में व्यक्ति द्वारा किए गए मनोवैज्ञानिक एवं दैहिक अनुक्रियाओं पर बल डाला गया है। जब व्यक्ति इस विशेष तरह की मनोवैज्ञानिक अनुक्रियाएँ जैसे चिन्ता, क्रोध, आक्रमकता आदि एवं दैहिक अनुक्रियाएँ जैसे पेट की गड़बड़ी, नींद न आना, रक्त चाप में वृद्धि आदि दिखलाता है तो हम कहते हैं कि व्यक्ति में तनाव उत्पन्न हो गया है। इस क्षेत्र के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हैन्स सेली। (Hans Selye, 1979) ने तनाव को एक अनुक्रिया के रूप में ही परिभाषित करते हुए कहा है– "तनाव से तात्पर्य शरीर द्वारा आवश्यकतानुसार की गई अविशिष्ट अनुक्रिया से होता है।" इस परिभाषा की एक विशेषता यह है कि इसमें तनाव को एक अविशिष्ट अनुक्रिया (nonspecific response) कहा गया है, जिससे सेली का तात्पर्य यह था कि ऐसी अनुक्रियाएँ किसी खास तरह के आसेधक या तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपक से संबंधित नहीं होती है बल्कि एक ही तरह की अनुक्रियाएँ तनाव उत्पन्न करने वाले किसी भी उद्दीपक द्वारा उत्पन्न की जाती है।
3. मनोवैज्ञानिकों का तीसरा समूह वह है जिसने उपर्युक्त दोनों ही दृष्टिकोणों के अनुसार तनाव को न सिर्फ उद्दीपक और न ही सिर्फ अनुक्रिया बल्कि इन दोनों के संबंध (relationship) के आधार पर परिभाषित करने की कोशिश की है। इस उपागम को संबंधात्मक उपागम (transactional approach) कहा जाता है। ऐसे मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कुछ परिस्थिति या घटनाएँ निश्चित रूप से ऐसी होतीं हैं जो सभी व्यक्तियों के लिए तनावपूर्ण होती हैं। कई ऐसी भी घटनाएँ या परिस्थितियाँ होती हैं जो कुछ व्यक्तियों में तनाव उत्पन्न कर

नोट

सकती हैं। अत: तनाव को उद्दीपक के रूप में सार्थक ढंग से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। उसी तरह से तनावपूर्ण घटनाओं के प्रति की जाने वाली अनुक्रियाओं। यहाँ तक की दैहिक अनुक्रियाओं को मनोवैज्ञानिक कारकों द्वारा आसानी से प्रभावित किया जा सकता है। अत: मात्र अनुक्रिया के रूप में भी तनाव को ठीक ढंग से समझा नहीं जा सकता है। संबंधात्मक उपागम के अनुसार तनाव को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि व्यक्ति परिस्थिति या घटना का मूल्यांकन अपनी आवश्यकताओं या अभिप्रेरकों तथा वैसी परिस्थिति से निबटने के मौजूद साधन के रूप में किस तरह से करता है। दूसरे शब्दों में, इस उपागम के अनुसार तनाव व्यक्ति तथा वातावरण (जिससे व्यक्ति को खतरा महसूस होता है तथा उनके साधनों को चुनौती मिलती है) के बीच एक खास संबंध को प्रतिबिम्बित करता है। इन उपागम के प्रमुख समर्थक लेजारस एवं फोल्कमैन (Lazarus and Folkman, 1984) एवं टेलर (Taylor, 1991) रहे हैं।

लेजारस एवं **फोल्कमैन** (Lazarus and Folkman)] टेलर (Taylor) आदि के विचारों को संचित करते हुए मार्गन, किंग, विस्ज एवं स्कौपलर1 (Morgan, King, Weisz and Schopler, 1986) ने तनाव की एक उत्तम परिभाषा इस प्रकार दी है–"हम लोग तनाव को एक आन्तरिक अवस्था के रूप में परिभाषित करते हैं जो शरीर के दैहिक माँगों (बीमारी की अवस्थाएँ, व्यायाम, अत्यधिक तापक्रम आदि) या वैसे पर्यावरणीय एवं सामाजिक परिस्थितियाँ जैसे सचमुच हानिकारक, अनियंत्रण योग्य तथा निबटने (coping) के मौजूद साधनों को चुनौती देने वाले के रूप में मूल्यांकन किया जाता है, से उत्पन्न होता है।" इसी तरह से वुड एवं वुड (Wood and Wood, 1999) ने तनाव को इस प्रकार परिभाषित किया है, "अधिकतर मनोवैज्ञानिकों ने एक ऐसी अवस्था के प्रति दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक अनुक्रिया को तनाव कहा है जो व्यक्ति को चुनौती देता है या धमकी देता है तथा जिसमें अनुकूलन या समायोजन के कुछ प्रारूप की जरूरत होती है।"

बेरोन (Baron, 1992) ने भी तनाव (stress) को कुछ इसी अर्थ में परिभाषित किया है– "तनाव एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो हम लोगों में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रिया के रूप में उत्पन्न होती है जो हमारे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्यों को विघटित करता है या विघटित करने की धमकी देता है।"

यदि हम उपर्युक्त दोनों विस्तृत परिभाषाओं का विश्लेषण करें तो तनाव के स्वरूप के बारे में निम्नांकित विशेषताएँ प्रकाश में आएँगी।

1. तनाव एक बहुआयामीय प्रक्रिया (multi-facted process) है जो आसेधकों (stressors) के मूल्यांकन के बाद उसके प्रति की गयी एक तरह की अनुक्रिया है।
2. सामान्यत: यह समझा जाता है कि तनाव जीवन की नकारात्मक घटनाओं (negative events) या दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं से होता है। परन्तु सच्चाई यह है कि तनाव स्वीकारात्मक घटनाओं (positive events) से भी व्यक्ति में उत्पन्न होता है। जैसे–किसी उच्च कुल में शादी होना, अच्छे पद पर प्रोन्नति होना, बहुत बड़ा पुरस्कार या इनाम पाना आदि कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जिनसे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। यही कारण है कि मशहूर कैनाडियन शरीर विज्ञानी (physiologist) हैन्स सेली ने तनाव या प्रतिबल को दो भागों में बाँटा है–स्वीकारात्मक तनाव (positive stress) तथा नकारात्मक तनाव (negative

नोट

stress)। उन्होंने स्वीकारात्मक तनाव को यूस्ट्रेस (eustress) तथा नकारात्मक तनाव को डिसस्ट्रेस (distress) की संज्ञा दी है। इन कारणों से तनाव को एक बहुआयामी प्रक्रिया कहा गया है।

3. तनाव में जो घटनाएँ, परिस्थितियाँ आदि होती हैं (जिनसे तनाव उत्पन्न होता है) वे व्यक्ति के नियंत्रण के बाहर होती हैं। यदि किसी विशेष कारण से परिस्थिति व्यक्ति के नियंत्रण में हो जाती है तो तनाव कम हो जाता है।
4. तनाव में मनोवैज्ञानिक (psychological) तथा दैहिक (psysiological) दोनों तरह की अनुक्रियाएँ होती हैं। दूसरे शब्दों में, तनाव में व्यक्ति मानसिक रूप से तथा शारीरिक रूप से क्षुब्धता (disturbance) का अनुभव करता है।
5. तनाव थोड़े समय के बाद समाप्त भी हो सकता है या लम्बे समय तक चल भी सकता है। तनाव कम समय तक चलेगा या लम्बे समय तक चलेगा, यह बहुत कुछ तनाव उत्पन्न करने वाली घटनाओं या परिस्थितियों के स्वरूप पर निर्भर करता है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि तनाव परिस्थिति या घटना का मूल्यांकन करने के बाद उसके प्रति की गयी एक विशेष अनुक्रिया होती है जिसमें व्यक्ति अपने मानसिक एवं दैहिक कार्यों को विघटित होते हुए पाता है।

4.13 तनाव की प्रतिक्रियाएँ

जब व्यक्ति तनाव (stress) में होता है, तो वह उसे अनुभव करता है तथा उसके प्रति प्रतिक्रिया (React) करता है। इस तरह की प्रतिक्रियाओं को पूर्णरूपेण समझने के लिए निम्नलिखित दो बिन्दुओं को ध्यान में रखना आवश्यक है।

1. व्यक्ति तनाव के प्रति सम्पूर्ण रूप से प्रतिक्रिया करता है। इसका मतलब यह हुआ कि तनाव मनोवैज्ञानिक (psychological) तथा दैहिक (physiological) दोनों तरह की प्रतिक्रिया (reactions) न कि कोई एक तरह की प्रतिक्रिया व्यक्ति में पैदा करता है। तनाव व्यक्ति के तंत्रिका तंत्र के कई भागों यथा–हाइपोथैलमस तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (autonamic nervous system) को प्रभावित करता है जो शरीर के मनोवैज्ञानिक प्रकार्यों अर्थात् संवेग एवं अभिप्रेरकों को तथा शरीरिक प्रकार्य जिसमें अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के कार्य भी सम्मिलित होते हैं, को नियंत्रित करता है। इस तरह से तनाव व्यक्ति के दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों तरह के कार्यों को प्रभावित करता है।
2. चाहे तनाव दैहिक हो या मनोवैज्ञानिक, तनाव के प्रति व्यक्ति के मन (mind) तथा शरीर (body) की प्रतिक्रियाएँ (reactions) काफी समान होती हैं। हालांकि तनाव का प्रत्येक स्रोत विशिष्ट तरह की समंजन प्रतिक्रिया (coping reactions) उत्पन्न करता है। सभी तनावों के प्रति व्यक्ति में एक सामान्य प्रतिक्रिया (general reactioद) भी उत्पन्न होता है जो हाइपोथैलमस, एड्रीनल ग्रन्थि तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के अनुकम्पी तंत्र (sympathetic system) के अंतर्संबंध अनुक्रियाओं पर आधारित होता है।

तनाव में व्यक्ति दो तरह की अनुक्रियाएँ या प्रतिक्रियाएँ करता है जो निम्नांकित हैं–

(क) मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ (Psychological reactions)

(ख) दैहिक प्रतिक्रियाएँ (Physiological reaction)

इन दोनों तरह की प्रतिक्रियाओं का वर्णन निम्नांकित है–

(क) मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ (Psychological reactions)– तनाव में कई तरह की मनोवैज्ञानिक या मानसिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। दूसरे शब्दों में, तनाव में व्यक्ति का मानसिक कार्यों में एक तरह का विघटन (disruption) या क्षुब्धता पायी जाती है। इन सभी तरह के मानसिक विघटनों को निम्नांकित दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है।

नोट

1. **संज्ञानात्मक विकृति** (Congnitive impairment)– तनाव में स्पष्ट संज्ञानात्मक विकृति (cognitive impairment) पायी जाती है। व्यक्ति में एकाग्रता (concentration) की क्षमता कम हो जाती है तथा वह अपने चिन्तन को तार्किक रूप से संगठित नहीं कर पाता है। चिन्तन में चिंता की भूमिका बढ़ जाती है और व्यक्ति परिस्थिति के विभिन्न पहलुओं को ठीक ढंग से प्रत्यक्षण नहीं कर पाता है। अवधान विस्तार कम हो जाता है तथा ध्यान या अवधान में क्षणभंगुरता बढ़ जाती है। स्मृति शक्ति भी इसमें कमजोर पड़ जाती है। दूसरे शब्दों में, तनाव में व्यक्ति के संज्ञानात्मक कार्य (cognitive functioning) में एक तरह की असामान्यता आ जाती है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोधों से यह भी स्पष्ट है कि तनाव की परिस्थिति में व्यक्ति कुछ वैसा व्यवहारात्मक पैटर्न दिखलाता है जिसे वह गत समय में कर चुका होता है। जैसे– जिन व्यक्तियों में सतर्क एवं चौकन्ना करने की प्रवृत्ति पहले से अधिक होती है, वे तनाव की स्थिति में और भी अधिक सतर्क एवं चौंकन्ना हो जाते हैं तथा जो आक्रमक प्रकृति के होते हैं, उनमें तनाव होने पर पहले से आक्रामकता और भी बढ़ जाती है और उनके सभी व्यवहारों में आक्रमकता के स्पष्ट सबूत मिलते हैं। इसका कारण बतलाया गया है कि तनाव से व्यक्ति में इस तरह की संज्ञानात्मक विकृति उत्पन्न हो जाती है कि व्यक्ति समस्या के समाधान के वैकल्पिक साधनों (alternative means) का प्रत्यक्षण नहीं कर पाता है तथा अपने व्यवहार में दृढ़ता (rigidity) दिखाता है।
2. **सांवेगिक अनुक्रियाएँ** (Emotional responses)–तनाव में व्यक्ति तरह-तरह की सांवेगिक अनुक्रियाएँ विशेषकर ऋणात्मक सांवेगिक अनुक्रियाएँ (negative emotional responses) करता है। ऐसी सांवेगिक अनुक्रियाओं में निम्नांकित प्रमुख हैं–
   (i) चिन्ता (Anxiety)–जब व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थिति में घिर जाता है तो उसमें सबसे पहले जो सांवेगिक अनुक्रिया होती है वह चिन्ता (anxiety) की होती है। चिन्ता एक ऐसी अप्रिय सांवेगिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति में डर, आशंकाएँ, परेशानी आदि की प्रधानता होती है। चिन्ता मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है–सामान्य (normal) तथा स्नायुविकृत (neurotic)। सामान्य चिन्ता का स्वरूप समायोजी (adaptive) होता है और इस तरह की चिन्ता तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के साथ समायोजन करने में व्यक्ति की मदद करती है। स्नायुविकृत चिन्ता (neurotic anxiety) में व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से इतना अधिक डर जाता है या आशंकित हो जाता है कि इसके कारण वैसी

नोट

परिस्थिति के साथ उसके निबटने की क्षमता लगभग समाप्त हो जाती है और वह अपने आप को बेसहारा महसूस करता है। फ्रायड (Freud) के अनुसार चिन्ता का कारण अचेतन का संघर्ष (unconscious conflict) होता है।

(ii) क्रोध एवं आक्रामकता (Anger and Aggression)–तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के प्रति एक अन्य संवेगात्मक अनुक्रिया (anger) भी होती है जिससे बाद व्यक्ति आक्रमक व्यवहार (aggressive behaviour) करने लगता है। मनुष्यों तथा पशुओं पर किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपक या परिस्थिति के प्रति प्राणी में पहले क्रोध उत्पन्न होता है और यदि ऐसे उद्दीपक प्राणी के सामने अधिक समय तक बने रहे तो वह उनके प्रति आक्रामकतापूर्ण व्यवहार भी करने लगता है। कभी-कभी लक्ष्य वस्तु या स्रोत (sources) जो व्यक्ति में कुण्ठा उत्पन्न करता है, अस्पष्ट होता है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति यह नहीं जानता कि उसे किस वस्तु पर आक्रमण करना चाहिए परन्तु उसमें क्रोध (anger) रहता है। ऐसी परिस्थिति में वह अपनी आक्रमकता को दिखाने के लिए उपयुक्त वस्तु की खोज करता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कुण्ठा उत्पन्न करने वाला स्रोत अधिक शक्तिशाली होता है, जिसके कारण उसके प्रति व्यक्ति आक्रमकता नहीं दिखा पाता है। इन सारी परिस्थितियों में व्यक्ति की आक्रमकता किसी विशेष व्यक्ति या वस्तु की ओर होती है न कि वास्तविक वस्तु या व्यक्ति की ओर विस्थापित हो जाती है। इस तरह की आक्रामकता को विस्थापित आक्रामकता (displaced aggression) कहा जाता है।

(iii) भावशून्यता तथा विषाद (empathy and depression)–तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के प्रति कुछ लोगों में क्रोध एवं आक्रमकता का व्यवहार न होकर ठीक उसके विपरीत भावशून्यता तथा विषाद का भाव विकसित हो जाता है। सामान्यत: यह देखा गया है कि अगर तनावपूर्ण परिस्थिति व्यक्ति के सामने बनी होती है और व्यक्ति उसके साथ निबटने में सफल नहीं होता है, तो वह उनके प्रति भावशून्यता या उदासीनता विकसित कर लेता है जो बाद में व्यक्ति में विषादी प्रवृत्ति (depressive tendency) उत्पन्न कर देता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि कुण्ठा उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के प्रति की गयी प्रतिक्रिया (reaction) को व्यक्ति अन्य व्यवहारों के समान सीखता है। जैसे–जो व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के प्रति आक्रामकता दिखाकर कभी सफलता प्राप्त नहीं कर पाता है, तो वह उसके प्रति उदासीन रहने की अनुक्रिया करना सीख लेता है और इससे धीरे-धीरे फिर उसमें दिखाई गयी प्रवृत्ति मजबूत हो जाती है। पशुओं तथा मनुष्यों पर किए गए अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि प्राणी जब तनावपूर्ण परिस्थिति में अपने आप को घिरा हुआ पाता है तो वह अपने आप को नि:सहाय (helpless) पाता है। इन अध्ययनों से ही मनोविज्ञान में अर्जित नि:सहायता (learned helplessness)

के संप्रत्यय का विकास हुआ है जिसमें सैलिगमैन (Seligman) का योगदान सबसे महत्त्वपूर्ण है।

नोट

(ख) दैहिक प्रतिक्रियाएँ (physiological reaction)–तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या उद्दीपक के प्रति व्यक्ति दैहिक प्रतिक्रियाएँ (physiological reactions) भी करता है। अक्सर देखा गया है कि तनावपूर्ण परिस्थिति से घिर जाने पर व्यक्ति में पेट की गड़बड़ी, हृदय गति का असामान्य होना, श्वसन गति में परिवर्तन आदि होते हैं। ये सभी दैहिक प्रतिक्रियाओं (physiological reactions) के उदाहरण हैं। ऐसी दैहिक प्रतिक्रियाओं (physiological reactions) को निम्नांकित दो शीर्षकों के तहत बाँटकर अध्ययन किया गया है–

1. **आपातकालीन अनुक्रियाएँ** (emergency responses)–तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के प्रति व्यक्ति के शरीर में कुछ ऐसी अनुक्रियाएँ होती है जिसे आपाकालीन अनुक्रियाएँ (emergency responses) कहा जाता है। ऐसी अनुक्रियाओं के माध्यम से शरीर में यकृत (liver) अतिरिक्त मात्रा में चीनी का उत्सर्जन करता है ताकि शरीर की मांसपेशियों को अधिक-से-अधिक शक्ति मिल पाये। शरीर में कुछ ऐसे हारमोन्स (harmones) निकलने लगते हैं जो चर्बी तथा प्रोटीन को चीनी में बदल देते हैं जिससे शारीरिक कार्य के लिए पर्याप्त ऊर्जा व्यक्ति को मिलने लगती है। व्यक्ति के हृदय, रक्त चाप तथा श्वसन गति में वृद्धि हो जाती है तथा मांसपेशियों में तनाव भी काफी बढ़ जाता है। लार तथा श्लेष्मा (mucus) की मात्रा में काफी कमी आ जाती है ताकि फेफड़े को अधिक-से-अधिक वायु प्रवेश करने के रास्ते में कही कोई रुकावट नहीं आए। शायद यही कारण है कि तनावपूर्ण परिस्थिति में व्यक्ति को मुँह सूखा होने का अनुभव होता है। इन्डोरफिन्स (endorphins) जो एक तरह का स्वाभाविक दर्दनाशक है, की मात्रा में वृद्धि हो जाती है तथा शरीर के सतही क्षेत्रों में पाये जाने वाली रक्त नलिकाएँ थोड़ी संकुचित हो जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप तनावपूर्ण परिस्थिति से निपटने में यदि शरीर में कहीं कुछ कट-फट भी जाता है, तो रक्त व्यक्ति के शरीर से कम मात्रा में निकलता है। शरीर का प्लीहा (spleen) अधिक मात्रा में रक्त में लाल कण का उत्सर्जन करते हैं ताकि अधिक-से-अधिक ऑक्सीजन शरीर के अंगों को मिल सके। इतना ही नहीं हड्डी मज्जा (bone marrow) से अधिक श्वेत रक्त कण का उत्सर्जन होने लगता है ताकि शरीर किसी प्रकार के सम्भावित संक्रामण (infection) से ठीक ढंग से निपट सके।

   उक्त सभी तरह की आपातकालीन अनुक्रियाओं का उद्देश्य मात्र एक ही होता है–तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के साथ ठीक ढंग से निपटना तथा उसके साथ उपर्युक्त समायोजन (adjustment) करना। ये सभी दैहिक अनुक्रियाएँ स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (antononic nervous system) तथा अन्तःस्रावी ग्रन्थि (endocrine gland) खासकर एड्रीनल ग्रन्थि तथा पीयूष ग्रन्थि (pituitary gland) की मदद से नियमित एवं नियंत्रित होती है। प्रायः ऐसी परिस्थिति में स्वायत्त तंत्रिका तंत्र अपना

नोट

कार्य हाइपोथैलेमस (hypothalamus) के नियंत्रण में करता है। इस तरह की दैहिक अनुक्रियाओं के पैटर्न जो जटिल होने के साथ-ही-साथ जन्मजात भी होते हैं, को कैनन (Cannon, 1920) ने 'भिड़ो या भागो अनुक्रिया' (fight or flight response) कहा है। क्योंकि ऐसी अनुक्रियाएँ व्यक्ति को परिस्थिति से भिड़ जाने या उससे भाग जाने के लिए तैयार करता है। उसे सेली (Seyle, 1979) ने चेतावनी प्रतिक्रिया (alarm response) कहा है। क्योंकि ऐसी अनुक्रियाएँ व्यक्ति को परिस्थिति से भिड़ जाने या उससे भाग जाने के लिए तैयार करती हैं।

2. **सामान्य अनुकूलन संलक्षण** (General Adaptiation Syndrome or GAS)–GAS के संप्रत्यय का प्रतिपादन सेली (Selye, 1979) द्वारा किया गया। इसके माध्यम से सेली ने तनावपूर्ण परिस्थिति में होने पर पशुओं द्वारा दिखलाये जाने वाले दैहिक परिवर्तनों (physiological changes) का वर्णन किया है। यद्यपि ऐसे परिवर्तन पशुओं में होते पाये गए हैं फिर भी सेली का मत है कि इस तरह का शारीरिक परिवर्तन मनुष्यों में भी होता है अगर उन्हें आसेधकों (stressors) या तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों से लगातार लम्बे समय तक घिरा रहना पड़ता है। ळौ में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों की व्याख्या तीन अवस्थाओं (stages) में बाँटकर की गयी है जो निम्नांकित हैं–

   (i) चेतावनी प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of alarm reaction)

   (ii) प्रतिशोध की अवस्था (Stage of resistance)

   (iii) समापन की अवस्था (Stage of exhaustion)

   इन तीनों अवस्थाओं का वर्णन इस प्रकार है–

   (i) चेतावनी प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of alarm reaction) – जब व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या घटना जिसे आसेधक (stressor) कहा जाता है, से घिर जाता है और उससे प्रभावित होता है तो उसमें सबसे पहले जो शारीरिक परिवर्तन होते हैं, उसे चेतावनी प्रतिक्रिया (alarm reaction) की संज्ञा दी जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति का शरीर अपने आप को आसेधक के प्रति तात्कालिक अनुक्रिया (immediate response) करने के लिए तत्पर करता है। अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र (sympa- thetic nervous system) उत्तेजित हो जाता है और व्यक्ति आसेधक की चुनौती या धमकी से निपटने के लिए तैयार होता है। इस अवस्था की दो उपअवस्थाएँ (substages) होतीं हैं–आघात अवस्था (shock phase) तथा प्रतिआघात अवस्था (countershock phase)। आघात अवस्था में अवरोधक से पहली बार सामना होने से एक तरह का शारीरिक आघात व्यक्ति को लगता है जिसमें शारीरिक तापक्रम तथा रक्तचाप गिर जाता है, हृदय गति कम हो जाती है तथा मांसपेशियाँ सुस्त हो जातीं हैं। इस अवस्था के तुरंत बाद प्रतिआघात अवस्था उत्पन्न होती है जिसमें शरीर अपने रक्षा प्रक्रमों को बढ़ा देता है और सभी तरह की आपातकालीन अनुक्रियाएँ जैसे हृदय गति, रक्त चाप एवं श्वसन आदि में तीव्रता आ जाती है। इसका परिणाम यह होता

नोट

है कि आसेधक से निबटने की प्रतिशोध क्षमता (resistance capacity) बढ़ने लगती है जैसा कि आगे दिए गए चित्र 4.1 में ऊपरी वक्र (curve) जो मौलिक आसेधक (original stressor) के हैं, से पता चलता है। चित्र से स्पष्ट है कि प्रतिआघात अवस्था में वक्र ऊपर की ओर बढ़ने लगता है।

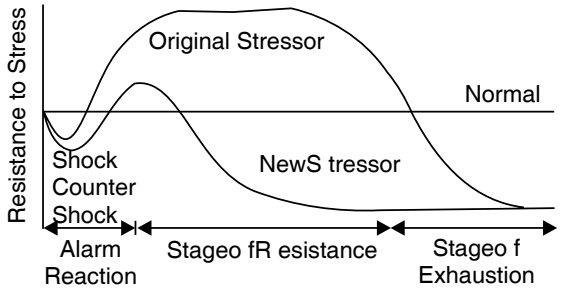

चित्र 4.1 सामान्य अनुकूलन संलक्षण (GAS)

(ii) प्रतिरोध की अवस्था (Stage of resistance)–अगर व्यक्ति के सामने आसेधक (stressor) की मौजूदगी जारी रहती है, तो ळौ की दूसरी अवस्था अर्थात् प्रतिरोध की अवस्था का प्रारंभ होता है जहाँ शरीर आसेधक की निरंतर मौजूदगी से उत्पन्न प्रभाव को अवरुद्ध करता है। इस अवस्था में शरीर में कुछ हारमोन्स (hormones) निकलते हैं जिनसे प्रतिरोध की मात्रा में वृद्धि हो जाती है अर्थात् इन हारमोन्स के सहारे शरीर अपने मुख्य प्रक्रमों को मज़बूत कर आसेधक के प्रभावों से अपने आप को बचाता है। पीयूष ग्रन्थि (pituitary gland) के कुछ कोशिकाओं (cells) द्वारा शरीर की रक्तधारा में एक विशेष हारमोन्स जिसमें एड्रोनोकोरटिकोट्रोपिक (adrenocorti cotropic ACTH) प्रधान है, विशेष रूप से उत्सर्जित किया जाता है। (ACTH) का स्राव अंशत: एक दूसरे तरह के रासायनिक पदार्थ कौरटिकोट्रोपीन रीलीजिंग फैक्टर (corticotropin-releasing fac- tor) या CRF कहा जाता है तथा जो हाईपोथैलमस (hypothalamus) द्वारा उत्सर्जित होता है, द्वारा नियंत्रित होता है। आसेधक (stressors) से हाईपोथेलेमस उत्तेजित हो जाता है जिसके फलस्वरूप CRF अधिक मात्रा में पीयूष ग्रन्थि (pituitary gland) में भेजे जाते हैं जो ACTH की मात्रा को रक्त में बढ़ा देता है। ACTH की मात्रा रक्त में अधिक होने से आसेधक के प्रभावों को शरीर पर पड़ने से रोका जाता है। इस तरह से प्रतिरोध स्तर (resistance level) बढ़ जाता है। इतना ही नहीं, ACTH एड्रीनल ग्रन्थि के कार्टेक्स (cortex) को भी उत्तेजित करता है जिससे कोर्टिसल (cortisol) नामक हारमोन्स शरीर के रक्त में मिलता है और इससे भी आसेधकों के प्रभावों से लड़ने की क्षमता शरीर में बढ़ती है। परन्तु इस हारमोन्स का अधिकतम स्तर का बना रहना शरीर के लिए हानिकारक होता है।

अगर इसी अवस्था में व्यक्ति के सामने कोई नया आसेधक (stressor) आ जाता है तो इस नये आसेधक के प्रति व्यक्ति की प्रतिरोध शक्ति काफी कम

नोट

हो जाती है। जैसा कि चित्र में नया आसेधक (new stressor) के वक्र में दिखलाया गया है।

(iii) समापन की अवस्था (Stage of exhaustion): GAS की तीसरी अवस्था समापन की अवस्था (stage of exhaustion) है जिसमें मौलिक आसेधक (original stressors) तथा नया आसेधक (new stressors) दोनों के ही प्रति अनुक्रिया करने की क्षमता में काफी कमी आ जाती है और प्राणी में शिथिलन बढ़ जाता है। वह निष्क्रिय-सा हो जाता है तथा बीमार पड़ जाता है। यह भी देखा गया है कि आसेधक-उत्पन्न हारमोन्स (stressor-induced hormones) का स्तर अधिक समय तक बने रहने से व्यक्ति में आंत का घाव (stomach ulcer), दमा, उच्च रक्त चाप, कैंसर के होने की सम्भावना एवं मधुमेह (diabetes) आदि रोग हो जाते हैं और व्यक्ति की मृत्यु की सम्भावना काफी बढ़ जाती है।

स्पष्ट है कि आसेधकों (stressors) के प्रति व्यक्ति न केवल मनोवैज्ञानिक बल्कि दैहिक प्रतिक्रियाएँ भी करता है। चूंकि इन आसेधकों से उत्पन्न तनाव व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है, अत: इसके कारणों तथा उससे निपटने के उपायों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

4.14 तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाले कारक

जैसा कि हम जानते हैं, तनाव के प्रति सभी व्यक्ति एक ही तरह की प्रतिक्रिया न करके भिन्न-भिन्न तरह की प्रतिक्रियाएँ करता है। दूसरे शब्दों में, तनाव के प्रति की गयी प्रतिक्रियाओं में वैयक्तिक विभिन्नता होती है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस वैयक्तिक विभिन्नता के कारणों को समझने की कोशिश की गयी है। इन लोगों के शोधों के अनुसार निम्नांकित कुछ ऐसे कारक हैं जिनसे ऐसी प्रतिक्रियाएँ प्रभावित होती हैं–

1. **पूर्व अनुभूति** (Prior experience)–जब व्यक्ति को तनावपूर्ण घटना का सामना करने की पूर्व अनुभूति होती है, तो सामान्यत: यह देखा गया है कि तनाव के प्रति की गई उसकी प्रतिक्रियाएँ कम गंभीर होती हैं। जैसे–किसी उग्रवादी क्षेत्र में यदि कोई किसी आफिसर का चौथी बार तबादला (posting) होता है, तो वह वैसे पुलिस आफिसर की तुलना में कम तनावपूर्ण प्रतिक्रियाएँ करेगा जिसे पहली बार वैसे क्षेत्र में भेजा जा रहा है।
2. **सामाजिक समर्थन** (Social support)–जिन व्यक्तियों को अपने परिवार, दोस्त, पास-पड़ोस आदि से अधिक सामाजिक समर्थन प्राप्त होता है, तनावपूर्ण परिस्थिति या आसेधकों (stressors) के प्रति उनकी प्रतिक्रियाएँ कम गंभीर होती हैं। सामाजिक समर्थन के होने से इन प्रतिक्रियाओं की गंभीरता में किस तरह से कमी आती है, यह तो स्पष्ट नहीं है परन्तु हेलर, स्विन्डल तथा डुसेनवरी (Heller, Swindle and Dusenbury, 1986) ने यह दावा किया है कि जब व्यक्ति अपने तनाव के बारे में दूसरों से बातचीत करता है, उनसे राय प्राप्त करता है, और उनसे उनका साथ होने का वादा मिलता है, तो इनसे स्वभावत: तनाव के प्रति की गयी प्रतिक्रियाओं की गंभीरता कम हो जाती है।

नोट

जिन व्यक्तियों को सामाजिक समर्थन पर्याप्त मिलता है, वे जीवन की नकारात्मक घटनाओं के प्रति जो प्रतिक्रियाएँ करते हैं, उनमें तुलनात्मक रूप से चिंता, विषाद (depression) तथा स्वास्थ्य समस्याएँ (health problems) कम होतीं हैं। जैसे–डीऊ, रैगनी तथा निमोरविक्ज (Dew, Ragni and Nimorwicz, 1990) ने अपने अध्ययन में पाया कि एड्स (AIDS) रोग से ग्रसित व्यक्ति में इसके जानलेवा स्वरूप के कारण उत्पन्न तनाव चिंता, निराशा तथा विषाद की मात्रा उस परिस्थिति में काफी कम दिखी जब उन्हें पर्याप्त सामाजिक समर्थन दिया गया। उसी तरह से केण्डाल-टैकेट (Kendall-Tackett, 1993) ने अपने अध्ययन में पाया है कि लैंगिक रूप से बच्चों में तुलनात्मक रूप से उस परिस्थिति में तनाव की प्रतिक्रियाएँ कम गंभीर हुईं जब उन्हें ऐसी परिस्थिति में अपने माँ का समर्थन प्राप्त था। सामाजिक समर्थन का यह पहलू कि जब व्यक्ति तनाव से उत्पन्न अनुभूतियों को दूसरों से कह देता है, तो उसके मन का बोझ कम हो जाता है, का प्रयोगात्मक अध्ययन गहन रूप से किया गया है। इस तथ्य की संपुष्टि पेन्नबेकर तथा वील्ल (Pennebaker and Beall, 1986) ने अपने बहुचर्चित अध्ययन में किया है। यह अध्ययन कॉलेज छात्रों पर किया गया था। छात्रों का दो समूह था। छात्रों के एक समूह को लगातार चार रात में प्रत्येक दिन की आघातजन्य घटनाओं (traumatic events) को लगातार 15 मिनट तक लिखकर बतलाना था जिनमें उन्हें घटनाओं का वर्णन करने के साथ ही साथ उनके द्वारा उत्पन्न भावों (feelings) का भी उल्लेख करना था। तुलना के लिए छात्रों का एक अन्य समूह था जिसे प्रयोगकर्त्ता के द्वारा दिये गए कुछ महत्त्वहीन विषयों के बारे में उन्हें लिखना था। ऐसा देखा गया कि जब छात्र अपने जीवन के आघातजन्य घटनाओं को विशेषकर परिवार में किसी की मृत्यु के बारे में लिख रहे थे, तो उनमें उदासी एवं विषादी प्रवृत्तियाँ तीव्र हो गयीं तथा रक्तचाप भी थोड़ा बढ़ गया। फिर 6 महीने के बाद यह पाया गया कि जिन छात्रों ने अपने ऋणात्मक भावों (negative feelings) को अन्य छात्रों से कह दिया था, वे अब न केवल कम तनाव का अनुभव कर रहे थे बल्कि तनाव के प्रति उनकी प्रतिक्रियाएँ भी काफी कम गंभीर थीं। स्पष्ट हुआ कि सामाजिक समर्थन से तनाव के प्रति की गयी प्रतिक्रियाएँ कम गंभीर हो जाती हैं।

3. **भविष्यसूचकता तथा नियंत्रण** (Predictability and control)–तनाव के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया की गंभीरता बहुत हद तक तनाव की भविष्य सूचकता तथा उस पर नियंत्रण की क्षमता द्वारा प्रभावित होती है। यदि परिस्थिति ऐसी है जिसमें तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के बारे में पहले से ही पूर्वकथन किया जा सकता है तो इससे तनाव के प्रति की जाने वाली प्रतिक्रिया की गंभीरता कम हो जाती है। उसी तरह से जब व्यक्ति यह पाता है कि तनाव की परिस्थिति पर वह अपना नियंत्रण रख सकता है, तो इससे भी तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं की गंभीरता कम हो जाती है। इपस्टीन तथा रोऊपेनियन (Epstein and Roupenian, 1970) ने एक अध्ययन किया जिसमें प्रयोज्यों के तीन समूह ने भाग लिया। तीनों समूह को ध्यानपूर्वक एक विशेष तरह की आवाज उत्पन्न होने की बारम्बारता को गिनना था। दस-दस बार की गिनती पूरी होने पर प्रयोज्यों के एक समूह को 95: समय में वैद्युतीय आघात (electric shock) दिया गया था, दूसरे समूह को 50: समय

नोट

में वैद्युतीय आघात दिया गया तथा तीसरे समूह को मात्र 5: समय में ही वैद्युतीय आघात दिये गए। स्पष्टत: तीसरे समूह के लिए वैद्युतीय आघात की भविष्यसूचकता सबसे कम थी क्योंकि इसमें अनिश्चितता (uncertainty) कम थी जबकि पहले समूह में आघात की भविष्यसूचकता सबसे अधिक थी। परिणाम में देखा गया कि यद्यपि तीसरे समूह को बहुत ही कम आघात दिया गया था, फिर भी इस समूह में मौजूद अनिश्चितता के कारण अन्य दोनों समूहों की तुलना में अनुकम्पी स्वायत्त उत्तेजन (sympathetic automonic arousal) काफी अधिक हुआ अर्थात् तनाव की प्रति की गई प्रतिक्रियाओं का स्वरूप अधिक गंभीर था। एबोट्ट स्कोयेन तथा बाडिया (Abbott, Schoen and Badia, 1986) ने इस अध्ययन के परिणाम का गहन विश्लेषण करके यह भी स्पष्ट कर दिया है कि अगर तनाव लम्बे समय तक जारी रहता है, तो भविष्यवाची तनाव (predictable tension) अभविष्यवाची तनाव (unpre- dictable tension) की तुलना में अधिक तनावपूर्ण साबित होता है।

4. **संज्ञानात्मक कारक** (Cognitive factors): तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं में वैयक्तिक विभिन्नता का एक कारण यह है कि व्यक्ति इस तनावपूर्ण परिस्थिति या घटना के बारे में किस तरह से सोचता है। इस तथ्य के प्रबल समर्थक लेजारस (Lazarus, 1982) हैं। कुछ लोग ऐसी घटनाओं या उद्दीपकों की व्याख्या तनाव उत्तेजक ढंग से करते हैं जिससे इनके प्रति की जाने वाली प्रतिक्रियाएँ अधिक गंभीर हो जाती हैं। दूसरे तरफ कुछ लोग ऐसी घटनाओं या उद्दीपकों की व्याख्या उन्हें कम महत्त्व देते हुए करते हैं जिनसे इनके प्रति की जाने वाली प्रतिक्रियाएँ कम गंभीर हो जाती हैं। रौथ एवं कोहेन (Roth and Cohen, 1986) ने आसेधकों (stressors) के प्रति सूचनाओं को संसाधित करने की दो तरह की शैलियों (styles) की पहचान की है–सुग्राहक (sensitizers) तथा दमनकारक (repressors)। सुग्राहक वैसे व्यक्ति होते हैं जो सूचनाओं को सक्रिय होकर ग्रहण करते हैं तथा तनावपूर्ण घटनाओं के बारे में सोचते हैं। दमनकारक वैसे व्यक्ति होते हैं जो तनावपूर्ण घटनाओं के बारे में नहीं सोचते हैं और उनसे प्राप्त होने वाली सूचनाओं से अपने आप को दूर रखते हैं। दमनकारक लोग कम ही समय में तनाव से प्रभावी ढंग से निपट तो लेते हैं परन्तु दीर्घकालीन समंजन (long-term coping) की क्षमता बहुत हद तक वे खो देते हैं। मिलर तथा मॉर्गन (Miller and Morgan, 1983) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि जब आरोधकों के बारे में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण सूचना उपलब्ध नहीं होती है तो वैसी परिस्थिति में दमनकारी शैली (repressive style) हानिकारक नहीं होते हैं परन्तु ऐसी ही परिस्थिति में सुग्राही शैली लाभदायक नहीं होता है। जैसे–इन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि वैसे रोगी जिनका डॉक्टरों द्वारा आपरेशन किया जाने वाला था तथा जो सुग्राही (sensitizers) थे, को जब होने वाले सर्जरी के बारे में अधिक सूचना दे दी गयी, तो वे कम तनाव का अनुभव किये परन्तु दमनकारकों को कम मात्रा में तनाव का अनुभव तब हुआ जब उन्हें ऐसी सूचनाएँ कम मात्रा में दी गयीं।

5. **टाइप ए व्यक्तित्व** (Type A Personality): टाइप ए व्यक्तित्व प्रकार से भी तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रिया में अंतर होता है। टाइप ए व्यक्तित्व की कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं जिनसे तनाव के प्रति की गई प्रतिक्रियाएँ निर्धारित होती हैं। फ्रिडमैन तथा रोजेनमैन

(Friedman and Rosenman, 1574), डायमंड (Diamond, 1982) तथा मैथ्यूज (Matthews, 1982) के अनुसार टाइप ए व्यक्तित्व की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

(i) उच्च प्रतियोगिता की भावना, कार्य, खेलकूद आदि में उच्च महत्त्वाकांक्षा एवं अधिक उर्जस्विता (driving) दिखलाना।

(ii) तेजी से किसी कार्य को करना, समय-अत्यावश्यकता (time urgency) पर बल डालना तथा प्राय: दो कार्य एक ही समय में करने की तीव्र प्रवृत्ति दिखलाना।

(iii) वर्कएहोलिक (Workaholic) तथा आराम के लिए कम समय लेना।

(iv) जोर-जोर से बोलना

(v) आवेगशीलता (impulsivity), डाह (hostile) तथा दूसरों के प्रति प्राय: आक्रमकपूर्ण व्यवहार करना। इन विशेषताओं का जिनमें अनुपस्थिति होती है, उसे टाइप बी व्यक्तित्व (Type B Personality) कहा जाता है। अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि टाइप ए व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में चक्रीय-हृदय रोग (Coronary Heart Disease or CHD) होने की संभावना प्रबल होती है। सच्चाई यह है कि टाइप ए व्यक्तित्व परोक्ष रूप से दो प्रमुख जोखिम कारकों (risk factors) के कारण ब्म्क से जुड़े होते हैं–उच्च रक्तचाप (high blood pressure) तथा कोलेस्ट्रोल का उच्च स्तर (high level of Cholesterol)। एक सिद्धांत के अनुसार-टाइप ए व्यक्ति तनाव के प्रति अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा दैहिक रूप से अधिक प्रतिक्रिया करते हैं। हेनेस तथा उनके सहयोगियों (Haynes et. al., 1980) तथा मैथ्यूज (Mathews, 1982) ने अपने-अपने अध्ययनों से इस तथ्य की संपुष्ट की है कि टाइप ए व्यक्ति तनाव के प्रति प्रतिक्रिया उच्च रक्तचाप दिखाकर करते हैं। ठीक उसी तरह से विलियम्स तथा उनके सहयोगियों (Williams et. al. 1992) ने अपने अध्ययन में पाया है कि टाइप ए व्यक्तित्व के द्वारा तनाव के प्रति प्रतिक्रिया किये जाने पर रक्त में इपाइनफ्राइन (epinephrine) तथा नोरइपाइनफ्राइन (norepinephrien) की मात्रा में तथा ककांली मांसपेशियों में रक्त प्रवाह तुलनात्मक रूप से अधिक बढ़ जाती है। इन परिवर्तनों का सीधा संबंध कोलेस्ट्रोल प्लेक1 (Cholesterol plaque) से होता है जो हृदय की धमनियों में कड़ापन उत्पन्न कर ब्म्क के उत्पन्न होने की संभावना को मजबूत कर देता है।

स्पष्ट हुआ कि तनाव के प्रति व्यक्ति जो प्रतिक्रियाएँ करता है उनमें विभिन्नता के कई कारण होते हैं।

4.15 तनाव का मापन

शोधकर्त्ताओं ने तनाव को मापने का सफल प्रयास किया है और इसके लिए उन्होंने निम्नांकित चार प्रमुख प्रविधि यों का वर्णन किया है–

1. **आत्म-रिपोर्ट विधि** (Self-report method)–यह एक ऐसी विधि है जिसमें तनाव से प्रभावित व्यक्ति सांवेगिक तकलीफ, उससे जीवन में होने वाले परिवर्तन तथा तनाव की गंभीरता (severity) आदि के बारे में बतलाता है। उसके द्वारा बतलाये गए सूचकांकों (indices) के आधार पर तनाव के बारे में मापन किया जाता है।

नोट

नोट

धमनियों के भीतर कोलेस्ट्रोल के जमे हुए थक्के को प्लेक (Plaque)कहा जाता है। होल्मस तथा राहे (Holmes and Rahe, 1967) द्वारा निर्मित सामाजिक पुनर्समायोजन रेटिंग मापनी (Social readjustment rating scale), नूतन अनुभूतियों का ही अनुसूची (schedule of recent experiences) तथा कैन्नर एवं उनके सहयोगियों (Kanner et. al; 1981) द्वारा निर्मित 'हास्सेल' मापनी (Hassles scales) प्रश्नावलियों का उपयोग आत्म-रिपोर्ट विधि के अन्तर्गत किया जाता है।

2. **व्यवहारपरक विधियाँ** (Behavioural methods)–इस विधि में तनाव का मापन इस परिस्थिति में किये गए कार्यों के निष्पादन के आधार पर किया जाता है। यदि निष्पादन में ऐसी परिस्थिति में तेजी से गिरावट आती है, तो समझा जाता है कि तनाव की गंभीरता व्यक्ति के लिए काफी है।

3. **दैहिक सूचकांक विधि** (Physiological indices method)–इसमें तनाव का मापन व्यक्ति के शरीर में हुए कुछ रसायनिक परिवर्तनों जैसे केटकोलामाइन्स तथा 17-हाईड्रोक्सीकार्टीकासटराड्स (17-hydroxycorticoster- iods) का रक्त स्तर में तथा मूत्रीय स्तर (urinary level) में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर तनाव का मापन होता है।

इनमें से प्रत्येक विधि के कुछ दोष हैं जिनके चलते उनका उपयोग काफी सोच-समझकर किया जाता है। ऐसे अवगुणों का उल्लेख यहाँ आवश्यक है जो इस प्रकार है–

(i) पहली विधि जो आत्म-रिपोर्ट पर आधारित है, पर इसलिए पूर्ण विश्वास नहीं किया जाता है क्योंकि व्यक्ति प्रायः अपने आप को अच्छे ढंग से उपस्थित करने की कोशिश करता है और इस कोशिश में वह तनाव की एक सही तस्वीर प्रस्तुत नहीं करता है।

(ii) व्यवहारपरक विधि को इसलिए दोषपूर्ण माना जाता है क्योंकि इसमें कार्य निष्पादन की व्याख्या विभिन्न ढंग से की जा सकती है। जैसे, किसी कार्य परिस्थिति में निष्पादन में ह्रास का कारण तनाव न होकर व्यक्ति के अभिप्रेरण में कमी, संज्ञानात्मक दाब (cognitive strain) तथा थकान भी होता है।

(iii) तनाव को दैहिक सूचकांकों द्वारा मापन करने के लिए यह आवश्यक है कि कुछ सम्बद्ध उपकरण खरीदे जाएँ और ऐसा करना सचमुच अपने आप में एक तनावपूर्ण अनुभूति होगा।

(iv) जैव-रसायनिक परिवर्तनों के आधार पर तनाव को मापना बहुत विश्वनीय नहीं रह जाता है क्योंकि शरीर में इस ढंग का परिवर्तन अन्य कारणों से भी होता है। जैसे, केटकोलामाइन स्राव (catecolamine secretion) में वृद्धि न केवल तनाव में बल्कि अन्य परिस्थितियों में भी होती है। अतः इस वृद्धि का कारण मात्र तनाव को मानना ठीक नहीं है।

स्पष्ट हुआ कि तनाव मापने की कई विधियाँ हैं। यद्यपि प्रत्येक विधि में कुछ खामियाँ (limitation) हैं, फिर भी उनका उपयोग परिस्थित के अनुसार किया जाता है। बॉम (Baum, 1982)

के अनुसार तनाव के सही मापन के लिए यह आवश्यक है कि इन विभिन्न मापकों का उपयोग एक साथ किया जाए ताकि उससे प्राप्त परिणाम अधिक विश्वसनीय हो सकें।

4.16 तनाव के कारण या स्रोत

नोट

व्यक्ति में किन कारणों से तनाव उत्पन्न होता है, इसका गहन अध्ययन मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है और कई कारकों की एक सूची तैयार की गयी है जिनसे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। ऐसे कारकों में निम्नांकित प्रमुख हैं–

1. तनावपूर्ण जीवन की घटनाएँ (stressful life events)
2. प्रेरकों का संघर्ष (conflict of motives)
3. दिन प्रतिदिन की उलझन (daily hassles)
4. कार्य उत्पन्न तनाव (work-related sources)
5. पर्यावरणीय स्रोत (environmental sources),

1. **तनावपूर्ण जीवन की घटनाएँ** (stressful life events)–व्यक्ति की जिन्दगी में तरह-तरह की घटनाएँ घटती रहतीं हैं। कुछ सुखद होतीं हैं तथा कुछ दुखद होतीं हैं। इन दोनों तरह की घटनाओं की प्रमुख जरूरत यह होती है कि व्यक्ति उनके साथ पुनर्समायोजन (re-adjustment) करें। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि ऐसी घटनाओं के प्रति जब व्यक्ति ठीक ढंग से समायोजन नहीं कर पाता है तो वे तनाव (stress) उत्पन्न करती हैं और व्यक्ति में दैहिक एवं सांवेगिक विकृतियाँ (emotional disorders) उत्पन्न कर देती हैं। इस सिलसिले में होलम्स एवं राहे (Holmes and Rahe, 1967) का अध्ययन काफी महत्त्वपूर्ण रहा है। इन्होंने जीवन की तनावपूर्ण घटनाओं के महत्त्व को मापने के लिए एक विशेष मापनी (scale) अर्थात् मात्रा उत्पादन (magnitude production) की विधि द्वारा विकसित किया है जिसे सामाजिक पुर्नसमायोजन रेटिंग मापनी (social Re-adjustment rating scale or SRRS) कहा गया है। इस मापनी में विभिन्न तरह की 43 घटनाओं जैसे पति या पत्नी की मृत्यु, तलाक, वैवाहिक अलगाव (marital separation), शादी, परिवार के किसी सदस्य की बीमारी, अवकाश प्राप्ति, किसी गहरे दोस्त की मृत्यु, परिवार में किसी नये सदस्य की प्राप्ति, गर्भ, घर के किसी सदस्य का गुम हो जाना, ससुराल वालों से झगड़ा, घर बदलना, खाने की आदत में परिवर्तन, हल्का फुल्का कानूनी उल्लंघन आदि को सम्मिलित किया गया है तथा सबसे अधिक तनावपूर्ण से सबसे कम तनावपूर्ण होने की दिशा में श्रेणीबद्ध (ranking) किया गया है। इन विभिन्न घटनाओं का जीवन परिवर्तन इकाई मूल्य (life change unit value) जो 100 से 1 के बीच होता है, भी निर्धारित किया गया। जीवन परिवर्तन इकाई मूल्य से यह पता चलता है कि ऐसी घटनाओं के होने पर कितना पुनर्समायोजन (re-adjustment) की जरूरत व्यक्ति को पड़ती है। जैसे–इस मापनी में सबसे अधिक तनावपूर्ण जीवन घटना पति या पत्नी की मृत्यु बतलाया गया है। जिसका इकाई मूल्य 100 है। उसी तरह से अवकाश प्राप्ति (retirement) का इकाई मूल्य 45 बतलाया गया है तथा सबसे अंतिम श्रेणी में अर्थात्

नोट

43तक श्रेणी में मामूली कानूनी उल्लंघन (minor violation of law) को रखा गया है जिसका इकाई मूल्य 1 बतलाया गया है। यह पता लगाने के लिए कि व्यक्ति एक खाास अवधि जैसे पिछले एक या दो साल में कितना तनाव (जतमे) का अनुभव करता है, उसे मापनी के 43 एकांशों में से उन एकांशों पर चिह्न लगाने के लिए कहा जाता है, जो उक्त अवधि में उनके लिए सही पाये गए। इसके बाद एकांशों के संबंधित इकाई मूल्यों को जोड़ दिया जाता है जिसे कुल तनाव प्राप्तांक (total stress score) कहा जाता है। यह प्राप्तांक जितना ही अधिक होता है, उनमें तनाव उतना ही अधिक होता समझा जाता है और उनका सांवेगिक एवं दैहिक स्वास्थ्य खराब होने की संभावना उतनी ही अधिक होती है। सामान्यत: जब इस मापनी पर किसी व्यक्ति का 250 या उससे अधिक प्राप्तांक मात्र एक साल की अवधि के जीवन घटना परिवर्तनों के आधार पर आता है तो उसका जीवन तनावपूर्ण समझा जाता है और अगले साल के भीतर उसे सांवेगिक एवं दैहिक रूप से बीमार पड़ने की संभावना बढ़ जाती है। सामान्यत: 150 या उससे कम कुल प्राप्तांक वाले व्यक्ति को सामान्य, 150 से 199 के बीच प्राप्तांक लाने वाले का हल्का तनाव (mild stress), 200 से 299 प्राप्तांक लाने वाले को साधारण तनाव (moderatestress) तथा 300 से ऊपर प्राप्तांक लाने वाले व्यक्ति को जीवन के बड़े तनावपूर्ण घटना से ग्रस्त समझा जाता है। होलम्स एवं मासूद (Holmes and Masuda, 1974) ने भी एक अध्ययन करके एक दिखलाया है कि वैसे व्यक्ति जिनका कुल प्राप्तांक उक्त जीवन घटना परिवर्तन मापनी पर 300 या उससे ऊपर आया, वे अगले 9 महीनों में उन व्यक्तियों की तुलना में भयंकर रूप से बीमार पड़े, जिनका कुल तनाव प्राप्तांक 200 या उससे नीचे था। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जितना ही अधिक तनावपूर्ण घटनाएँ किसी व्यक्ति की जिन्दगी में घटती हैं उसमें तनाव की मात्रा उतनी ही अधिक होती है तथा उसके स्वास्थ्य पर उतना ही अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है।

यद्यपि जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना-परिवर्तनों को तनाव (stress) का एक प्रमुख कारण बतलाया गया है फिर भी निम्नांकित कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनसे उक्त संबंध पर आशंकाएँ होती हैं–

(i) तनाव (stress) के प्रभावों को कुछ सामान्य स्वास्थ्य आदत (health habit) जैसे–विशेष तरह का भोजन करने की आदत, सिगरेट पीने की आदत, शराब पीने की आदत से उत्पन्न प्रभावों से अलग करना कठिन है। व्यक्ति अपने जीवन की घटनाओं में हुए प्रमुख परिवर्तनों के साथ समायोजन करने में संभव है कि वह और अधिक शराब पीना शुरू कर दे या सिगरेट पीना प्रारंभ कर दे। ऐसी परिस्थिति में उसमें उत्पन्न बीमारी या सांवेगिक एवं दैहिक अवस्थाओं के कारण स्वास्थ्य आदत अधिक खराब हो जाएगी तथा जीवन की प्रमुख घटनाएँ कम होंगी।

(ii) अगर जीवन की परिवर्तित घटना ही सिर्फ तनाव का कारण होती तो कोई भी घटना समान ढंग से सभी व्यक्तियों में तनाव उत्पन्न करती है परन्तु ऐसा नहीं होता है। ऐसा देखा गया है कि कुछ घटनाएँ कुछ व्यक्ति में अधिक तनाव उत्पन्न करती हैं परन्तु वही घटनाएँ दूसरे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न नहीं कर पातीं। इतना ही नहीं, यह भी देखा गया है कि साधारण-सी घटना कुछ व्यक्ति में अधिक सांवेगिक एवं

नोट

दैहिक क्षति उत्पन्न करती है परन्तु कभी-कभी अधिक तनावपूर्ण घटना भी कुछ व्यक्तियों में अधिक सांवेगिक एवं दैहिक क्षति उत्पन्न नहीं कर पाती। ऐसे वैयक्तिक विभिन्नताओं से इस ओर संकेत मिलता है कि तनाव का कारण सिर्फ घटना विशेष को मानना पूर्णत: तर्क संगत नहीं है।

(iii) जीवन घटना मापनी (life scale events) के कुछ एकांश ऐसे हैं जिन्हें सांवेगिक एवं दैहिक अस्वस्थता का परिणाम (result) न कि कारण माना जा सकता है। जैसे–किसी व्यक्ति के खराब सांवेगिक या दैहिक स्वास्थ्य के कारण उसमें वैवाहिक एवं आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं जो तनाव का कारण बन सकती हैं।

(iv) जीवन घटना मापनी की एक महत्त्वपूर्ण परिकल्पना यह है कि परिवर्तन अपने आप में तनावपूर्ण (stressful) होता है। परन्तु बाद में किए गए शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि धनात्मक परिवर्तनों का संबंध स्वास्थ्य से नहीं होता है और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि परिवर्तन न होने से ही व्यक्ति में तनाव होता है। इससे यह पता चलता है कि कोई भी जीवन घटना तनावपूर्ण होगा या नहीं, यह बहुत कुछ व्यक्ति के व्यक्तिगत इतिहास एवं वर्तमान जीवन परिस्थिति पर निर्भर करता है।

इन परिस्थितियों के बावजूद जीवन घटना में होने वाले परिवर्तन को तनाव का एक मुख्य कारण बतलाया गया है।

2. **प्रेरकों का संघर्ष** (Conflict of motives)–जब अभिप्रेरकों के बीच संघर्ष होता है, तो इससे व्यक्ति में तनाव (stress) उत्पन्न होता है। ऐसी परिस्थिति में जिस अभिप्रेरक की तुष्टि नहीं होती है, उससे व्यक्ति में कुण्ठा उत्पन्न होती है जो तनाव का एक प्रमुख स्रोत होता है। जैसे–एक छात्र जो वर्ग में उत्तम अंक नहीं प्राप्त कर सकता है, खेल के मैदान में ख्याति पाकर अपने मानसिक संघर्ष को दूर तो करता है, परन्तु फिर भी उसमें तनाव यह सोचकर अवश्य होगा कि इसका निष्पादन वर्ग में उत्तम नहीं है। व्यक्ति के जीवन में कई ऐसे मानसिक संघर्ष होते हैं जो तनाव उत्पन्न करते हैं। इनमें सहयोग बनाम प्रतियोगिता, स्वतंत्रता बनाम निर्भरता (independence vs dependence), घनिष्ठता बनाम पृथकता (intimacy vs isolation) तथा आवेग अभिव्यक्ति बनाम नैतिक मानक (impulse expression vs moral standard) आदि प्रमुख हैं।

उसी तरह से व्यक्ति में दूसरों के साथ रहने तथा दूसरों के सुख-दुख में हाथ बँटाने की इच्छा का टकराव इस बात से हो सकता है कि यदि ऐसा अधिक करते हैं तो इससे हमें परिवार के लोग तिरस्कृत कर देंगे और हम अकेले हो जाएँगे। यह स्थिति भी व्यक्ति में तनाव (stress) उत्पन्न कर सकती है। उसी तरह से कभी-कभी व्यक्ति दूसरों पर अधिक निर्भरता दिखाता है परन्तु साथ-ही-साथ वह यह भी सोचता है कि वयस्क होकर दूसरों पर निर्भर रहना अच्छी बात नहीं हैं। इससे भी व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। कुछ क्षेत्र में जैसे–यौन एवं आक्रामकता ऐसे होते हैं जिसमें व्यक्ति की अपनी इच्छाएँ नैतिक तनाव मानकों (normal standards) से टकराती हैं और यदि व्यक्ति इन मानकों की अवहेलना करता है तो इससे उसमें दोष-भाव (guilt feeling) उत्पन्न होता है जो तनाव का एक स्रोत बन जाता है।

नोट

स्पष्ट हुआ कि विरोधी अभिप्रेरकों के बीच समझौते का प्रयास अपने आप में तनाव (stress) की उत्पत्ति करता है।

1930 में कर्टलेविन (Kurt Lewin) ने दो विरोधी झुकावों के रूप में संघर्ष का वर्णन किया है–उपागम (approach) तथा परिहार (avoidance)। जब व्यक्ति को दो वांछनीय विकल्पों के बीच चुनना आवश्यक हो जाता है, तो इसे उपागम-उपागम संघर्ष (approach-approach conflict) कहा जाता है। परिहार-परिहार संघर्ष (avoidance-avoidance conflict) में व्यक्ति को दो आवांछनीय विकल्पों के बीच किसी एक को चुनने के लिए बाध्य किया जाता है। तीसरे तरह के संघर्ष को उपागम-परिहार संघर्ष (approach-avoidance conflict) कहा जाता है जहाँ व्यक्ति को एक ही पसंद (choice) में वांछनीय एवं अवांछनीय दोनों ही अभिप्रेरकों का सामना करना पड़ता है। अध्ययनों से यह पता चला है कि इन तीनों में उपागम-परिहार संघर्ष तनाव या प्रतिबल का सबसे मजबूत स्रोत है।

3. **दिन-प्रतिदिन की उलझन** (Daily hassles)–जिन्दगी की बड़ी एवं महत्त्वपूर्ण घटना तो निश्चित रूप से तनाव के स्रोत हैं परन्तु दिन-प्रतिदिन की छोटी-मोटी उलझनों से भी तनाव उत्पन्न होता पाया गया है। ऐसी उलझनें चूंकि व्यक्ति की जिन्दगी में लगभग अक्सर होती है, इसलिए तनाव उत्पन्न करने में इनका महत्त्व कम नहीं है। इस तथ्य की संपुष्टि लेजारस तथा उनके सहयोगियों (Lazarus et. al. 1985) एवं कैनर तथा उनके सहयोगियों (Kanner et. al., 1981) द्वारा किये गए अध्ययनों से होती है। दिन-प्रतिदिन की उलझन (hassles) जिनसे अक्सर व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होते देखा गया है, उन्हें निम्नांकित छः भागों में बाँटा जा सकता है–

   (i) पर्यावरणीय उलझन (environmental hassles)–इसमें आवाज, शोरगुल, अपराध, पास-पड़ोस से होने वाले बक-झक आदि को रखा गया है।

   (ii) घरेलू उलझन (household hassles)– इसमें भोजन बनाना, बर्तन धोना, घर की सफाई, कपड़ा या अन्य सामान खरीदना आदि से सम्बन्ध कारकों को रखा गया है।

   (iii) आन्तरिक भाव से सम्बद्ध उलझन (inner concern hassles)–इसमें अकेले होने का भाव, किसी से मनमुटाव या झगड़ा हो जाने पर भाव आदि कारकों को रखा गया है।

   (iv) समयाभाव से उत्पन्न उलझन (hassles due to time)–इसमें बहुत सारी चीजों को एक दिए गए समय के भीतर पूरा कर लेने तथा एक ही साथ बहुत सारे उत्तरदायित्वों को निभाने आदि कारकों को रखा गया है।

   (v) आर्थिक उत्तरदायित्व से उत्पन्न उलझन (hassles arising due to financial responsibility)– इसमें धन बचाने तथा कमाने से संबंधित कारकों तथा उनकी आर्थिक जवाबदेही स्वीकार करना आदि सम्मिलित होता है, जिसका भार सामाजिक एवं कानूनी रूप से सचमुच उन पर नहीं पड़ना चाहिए था।

   (vi) कार्य उलझन (work hassles)–कार्य (job) से असंतुष्टि, पदोन्नति के अवसर का न होना तथा किसी भी समय कार्य से हटाये जाने की संभावना आदि को रखा गया है।

(v) आर्थिक उत्तरदायित्व से उत्पन्न उलझन (hassles arising due to financial responsibility)– इसमें धन बचाने तथा कमाने से संबंधित कारकों तथा उनकी आर्थिक जवाबदेही स्वीकार करना आदि सम्मिलित होता है, जिसका भार सामाजिक एवं कानूनी रूप से सचमुच उन पर नहीं पड़ना चाहिए था।

(vi) आर्थिक उत्तरदायित्व से उत्पन्न उलझन (hassles arising due to financial responsibility)– इसमें धन बचाने तथा कमाने से संबंधित कारकों तथा उनकी आर्थिक जवाबदेही स्वीकार करना आदि सम्मिलित होता है, जिसका भार सामाजिक एवं कानूनी रूप से सचमुच उन पर नहीं पड़ना चाहिए था।

लेजारस एवं उनके सहयोगियों (Lazarus et. al; 1985) एवं कैनर तथा उनके सहयोगियों (Kanner et al 1981) ने अपने शोधों के आधार पर उक्त उलझनों को मापने के लिए एक उलझन मापनी (Hassles scale) विकसित की है। इस मापनी पर व्यक्ति उन घटनाओं के बारे में बतलाता है जिनसे वह गत महीनों में उलझन में पड़ा हुआ था। इस अध्ययन पर आये प्राप्तांकों तथा व्यक्ति द्वारा दिखलाये गये मानसिक लक्षणों के बीच धनात्मक संबंध (positive correlation) पाए गए। अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि दिन-प्रतिदिन की उलझनों से भी व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है और इससे उसमें सांवेगिक एवं दैहिक अस्वस्थता उत्पन्न होती है।

4. **कार्य से उत्पन्न तनाव** (Stress produced by work)–व्यक्ति जिस कार्य को करता है, उससे संबंधित कुछ कारक हैं जो उसमें तनाव (stress) उत्पन्न करते हैं– जैसे–किसी कर्मचारी को बहुत कम समय में बहुत सारे कार्य यदि करने के लिए कहा जाता है, तो इससे स्वभावत: उसमें तनाव उत्पन्न हो जाता है। ऊब (boredom) का भाव विकसित होता है जो बाद में तनाव उत्पन्न करता है। इतना ही नहीं, यदि कर्मचारी (employee) यह अनुभव करता है कि काम करने का मौलिक वातावरण (physical environment) ठीक नहीं है, अर्थात् उसमें रोशनी, हवा, आवाज, नियंत्रण आदि का ठीक प्रबंध नहीं है, तो भी उसमें कार्य असंतुष्टि (job dissatisfaction) होती है जिससे फिर व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। उसी तरह से कार्य (job) से संबद्ध कुछ अन्य कारण भी हैं जिनसे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। इनमें भूमिका संघर्ष (role-conflict) तथा निष्पादन मूल्यांकन (performance appraisal) प्रधान है। भूमिका संघर्ष की स्थिति में किसी कार्य-पालक (executive) या मैनेजर से कर्मचारियों के विभिन्न समूहों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रत्याशाएँ विकसित होती हैं जिसे पूरा करना व्यवस्थापक के लिए संभव नहीं हो पाता है जिसके परिणामस्वरूप उसमें तनाव उत्पन्न होता है। उदाहरण के रूप में विश्वविद्यालय में कुलपति के पद को ही ले लें। कर्मचारी उनसे अच्छी सेवा शर्तें की माँग करता है, शिक्षकगण उत्तम शैक्षिक माहौल बनाये रखने पर बल डालते हैं, छात्रगण उनसे नियमित पढ़ाई कराने की उम्मीद रखते हैं या सरकार उन्हें अपने साधनों (resources) की पहचान करते हुए कार्य करने पर बल डालती है। इस तरह की विरोधी प्रत्याशाओं के कारण जिनको पूरा करना उनके लिए संभव नहीं है, भूमिका संघर्ष उत्पन्न होता है जो उनमें तनाव उत्पन्न करता है। उसी तरह से यदि कर्मचारी के निष्पादन का मूल्यांकन करने का तरीका कुछ ऐसा है

नोट

जिसे कर्मचारी उचित समझते हैं, तो इससे उनमें तनाव उत्पन्न नहीं होता है। परन्तु यदि वे यह समझते हैं कि तरीका अनुचित है तो इससे स्वभावत: उनमें तनाव उत्पन्न होगा।

जब कार्य पर तनाव अत्यधिक तीव्र होता है और व्यक्ति उससे अपने आप को छुटकारा नहीं दिला पाता है, तो इससे उसमें एक विशेष अवस्था जिसे 'बर्नआउट' (Brunout) कहा जाता है, उत्पन्न होता है। इसमें कर्मचारी काफी निराश असंतुष्ट, कार्य पर अक्षमता तथा मनोवैज्ञानिक रूप से कमजोर दिखते हैं। बर्नआउट के अंतिम चरण में व्यक्ति कार्य करने में असमर्थ रहता है। राईस (Rice, 1987) के अनुसार बर्नआउट कार्य तनाव का लक्षण नहीं है बल्कि अप्रबंधित कार्य तनाव (unmanaged work stress) का परिणाम है।

5. **पर्यावरणीय स्रोत** (Environmental sources)–तनाव उत्पन्न होने का कारण पर्यावरण (environment) भी होता है। कुछ पर्यावरणी कारक ऐसे हैं जो स्वाभाविक होते हैं और व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करते हैं। जैसे–भूकंप, आगजनी, तीव्र आंधी, तूफान आदि कुछ ऐसे ही कारक हैं जो व्यक्ति में तनाव (stress) उत्पन्न करते हैं। कास्ल (Kasl, 1990) के अनुसार, ऐसे स्वाभाविक पर्यावरणीय कारकों का अध्ययन तो उस समय नहीं किया जा सकता है जिस समय इनकी प्रबलता होती है परन्तु बाद में व्यक्तियों की अनुभूति के आधार पर यह अंदाज़ा लगाया जाता है कि ऐसी स्वाभाविक घटनाएँ व्यक्ति में काफी तनाव उत्पन्न करती हैं। इन स्वाभाविक कारकों के अलावा कुछ पर्यावरणीय कारक ऐसे हैं जो मनुष्यों द्वारा निर्मित हैं और व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करते हैं। जैसे–शोरगुल प्रदूषण (noise pollution), अणु परीक्षण (nuclear test) से उत्पन्न स्थिति कुछ ऐसे कारकों के उदाहरण हैं जिनसे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। बाम तथा उनके सहयोगियों (Baum et al. 1983) ने अपने अध्ययन में पाया कि अणु परीक्षण के स्थान से नजदीक में रहने वाले व्यक्तियों में उन व्यक्तियों की तुलना में अधिक तनाव उत्पन्न हुआ जो उस स्थान से दूर रहते हैं। इसी तरह से कोहेन तथा उनके सहयोगियों (Cohen et al; 1986) ने एक अध्ययन किया जिसका उद्देश्य शोरगुल का तनाव पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना था। इस प्रयोग में एक व्यस्त हवाई अड्डा (busy aerodram) के नजदीक के स्कूली बच्चों की तुलना उन स्कूली बच्चों से की गयी जिनका स्कूल ऐसे जगह पर अवस्थित था जो एकान्त एवं सुनसान जगह पर था जहाँ काफी शांति बनी रहती थी। परिणाम में देखा गया कि पहले तरह के स्कूली बच्चों में दूसरे तरह के स्कूली बच्चों की तुलना में तनाव अधिक होता था। जिसकी अभिव्यक्ति उनके बढ़े हुए रक्त चाप तथा मानकीकृत परीक्षणों (standardized tests) पर खराब निष्पादन से पता चलता है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति में तनाव (stress) कई कारणों से उत्पन्न होता है। यदि हम तनाव को कम करने के उपाय पर सोचते हैं तो हमें इन कारकों को भी ध्यान में रखना होगा।

4.17 तनाव कम करने के उपाय

तनाव का कारण चाहे जो भी हो, यह व्यक्ति के सांवेगिक एवं दैहिक स्वास्थ्य पर खराब असर डालता है। अत: इसे कम करने के उपायों पर मनोवैज्ञानिकों ने गम्भीरता से सोचा है। तनाव को

कम करने से सम्बद्ध व्यवहार को समायोजी व्यवहार (coping behaviour) कहा जाता है। समायोजी व्यवहार को मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। जैसे, गुडस्टीन एवं लेनियोन1 (Goodstein and Lanyon, 1975) ने समायोजी व्यवहार को इस प्रकार परिभाषित किया हैं–

नोट

"समायोजी व्यवहार से तात्पर्य उस सीमा से होता है जहाँ तक व्यक्ति कम-से-कम तीन तरह के चुनौतियों से निबटने में सक्षम होता है–(1) भौतिक वातावरण से मिलने वाली प्रत्यक्ष चुनौतियाँ (2) अपनी दैहिक सीमाओं से मिलने वाली चुनौतियाँ (3) अन्तरवैंयक्तिक चुनौतियाँ।" लेजारस तथा लाउनियर1 (Lazarus and Launier, 1978) ने भी समायोजी व्यवहार को इस ढंग से परिभाषित करते हुए कहा है, "पर्यावरणीय एवं आंतरिक मांगों तथा उनके बीच के संघर्षों को नियंत्रण करने (अर्थात् उसे वश में करने, सहने, या कम करने) के क्रिया-उन्मुख एवं अंत: मानसिक दोनों तरह के प्रयासों को समायोजी व्यवहार कहा जाता है।" वुड एवं वुड (Wood and Wood, 1989) के अनुसार, "समायोजी व्यवहार से तात्पर्य विचार एवं क्रिया के माध्यम से किए गए व्यक्ति के उस प्रयास से होता है जिसके द्वारा वह भार डालने वाला या अपने ऊपर हावी होने वाली समझे जाने वाली माँगों के साथ निपटता है।" उक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर समायोजी व्यवहार (coping behaviour) के कई विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है जो निम्नांकित हैं–

1. "By coping we mean the degree to which individuals are able to meet and master atleast three kinds of challenges to their existence: (1) direct challenges from the physical environment (2) challenges steming from their physical limitation (3) interpersonal challenges."

—Goodstein and Lanyon : Adjustment, Behaviour and Personality: 1975, p. 14-15.

2. "Coping consists of efforts, both action-oriented and intrapsyhic,to manage (that is, master, tolerate, reduce, minimize) environmental and internal demands and conflicts among them."

–Lazarus and Launier: Internal and External determinants of behaviour, 1978, p. 311

(i) समायोजी व्यवहार व्यक्ति तथा पर्यावरण की माँगों के बीच किया गया किसी एक समय का क्रिया व्यवहार नहीं होता है बल्कि इन दोनों के अपने-अपने प्रसाधनों, मूल्यों एवं माँगों के बीच एक विशेष समय तक लगातार चलने वाली अन्त:क्रिया है। अत: यह एक प्रक्रिया (process) या उपाय (stretegy) है।

(ii) समायोजी व्यवहार में तनावयुक्त उद्दीपकों या परिस्थितियों के प्रति कई तरह की क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ की जाती हैं।

(iii) इस तरह से समायोजी व्यवहार (coping behaviour) में पर्यावरण की माँग, शारीरिक सीमाओं एवं अंतरवैयक्तिक चुनौतियाँ तीनों तरह के कारकों को व्यक्ति अपने मूल्यों, प्रसाधनों आदि के साथ इस ढंग से व्यवस्थित करता है कि उनका कम-से-कम प्रभाव स्वयं व्यक्ति पर पड़ सके।

(iv) समायोजी व्यवहार प्रयासयुक्त (effortful) होता है, यह अपने आप नहीं होता है।

(v) समायोजी व्यवहार एक सीखा गया व्यवहार होता है।

लैजारस एवं फौल्कमैन (Lazarus and Folkman, 1984) के अनुसार इन सभी उपायों को निम्नांकित दो भागों में बाँटा गया है–

नोट

1. **समस्या-केन्द्रित समायोजी उपाय** (Problem-focused coping strategies)–इस तरह के उपाय में व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थिति या समस्या का मूल्यांकन करता है और कुछ ऐसा उपाय करता है जिसमें वह उसे परिवर्तन कर सकने में या उससे दूर कहने में सफल हो सके। इन उपायों का उपयोग व्यक्ति तब करता है जब वह यह देखता है कि समस्या जो तनाव उत्पन्न कर रही है, अधिक गंभीर नहीं है तथा उस समस्या के स्वरूप में कुछ परिवर्तन ला सकता है। इस उपाय में समस्या जो तनाव उत्पन्न कर रही है, व्यक्ति उसे स्पष्ट करता तथा परिभाषित करता है, फिर उसका वैकल्पिक समाधान (alternative solution) ढूँढ़ता हैं। उन सभी समाधानों के सम्भावित लाभ एवं हानियों के रूप में उनका मूल्यांकन करता है। उसमें से सही विकल्प को चुनकर फिर उसे कार्य रूप देता है। व्यक्ति इन क्रमिक उपायों को कितना सही-सही और मुस्तैदी से कार्य रूप देता है, यह उसके गत अनुभूतियों, बौद्धिक क्षमता तथा आत्म-नियंत्रण की क्षमता आदि पर निर्भर करता है। इस तरह से व्यक्ति समस्या के स्वरूप को परिवर्तित करके तनाव को कम करने की कोशिश करता है। यहाँ विशेष रूप से निम्नांकित उपाय (strategies) अधिक लाभकारी सिद्ध हुए हैं।

   (i) आमने-सामने का समायोजी व्यवहार (Confornational coping)–इस तरह के समायोजी उपाय (coping stretegy) में व्यक्ति समस्या के आमने-सामने खड़ा होकर उसका मुकाबला करता है तथा उससे निपटने की कोशिश करता है। जैसे–यदि कोई पदाधिकारी अपने अधीनस्थ से काफी खफा है और उसे निलंबन की धमकी देता है, तो वह अपने इस पदाधिकारी के सामने खड़ा होकर यह जानना चाहेगा कि उसकी गलती क्या है क्या अपने पदाधिकारी को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करेगा कि वे अपना विचार बदल दें। होलाहान एवं मूस (Holaham and Moos, 1987) ने अपने अध्ययन के आधार पर

3. "Coping refers to a person efforts through action and thought to deal with demands perceived as taxing or overwhelming."

   –Wood and Wood: The World of Psychology, 1999. p. 478

   यह बतलाया है कि मुकाबला (corforntation) की प्रविधि परिहार (avoidance) की तुलना में अधिक लाभकारी सिद्ध हुई है। जो व्यक्ति समस्या के साथ स्वयं निपटने की कोशिश करते हैं, वे न केवल समस्या का ठीक ढंग से समाधान ही करते हैं बल्कि भविष्य में तनावपूर्ण परिस्थिति के साथ सांवेगिक उढंग से निपटने की क्षमता भी विकसित कर लेते हैं। फेल्टन (Felton, 1984) द्वारा किये गये शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि जिन लोगों द्वारा तनावपूर्ण परिस्थिति से निपटने के लिए परिहार प्रविधि का उपयोग अधिक किया जाता है, उनमें अतिरिक्त तनाव उत्पन्न होने का जोखिम अधिक रहता है तथा साथ-ही-साथ स्वास्थ्य समस्याएँ (health problem) भी अधिक उत्पन्न होते हैं। परन्तु समायोजी उपाय के रूप में परिहार हमेशा एक

बुरी प्रविधि नहीं है। जब व्यक्ति के सामने लघु एवं कोई साधारण तरह का तनाव आता है, तो उससे परिहार प्रविधि अपनाकर आसानी से तनाव को कम किया जा सकता है। इस प्रविधि में व्यक्ति अपने आप को उस तनावपूर्ण परिस्थिति से अलग कर लेता है।

नोट

(ii) सामाजिक समर्थन (Social support)–व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थिति से किस तरह से निपटता है, यह न केवल आंतरिक स्रोत (internal source) बल्कि बाह्य स्रोत (external source) अर्थात् उसके सामाजिक समर्थन पर निर्भर करता है। कोब्ब (Cobb, 1976) ने सामाजिक समर्थन की परिस्थिति को परिभाषित करते हुए कहा है कि इससे तात्पर्य उस विशेष सूचना से होता है जो व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों द्वारा पसंद किया जाना है, सम्मान दिया जाना है, महत्त्व दिया जाना है तथा उसकी उचित देख-भाल किया जाना है। जब किसी व्यक्ति को अन्य लोगों के सामाजिक समर्थन का एहसास होता है, तो वह तनावपूर्ण परिस्थिति से काफी ठीक ढंग से निपटता है तथा उसे स्वास्थ्य संबंधी सदस्य जैसे चाचा, चाची, मामा, मामी कोई संगठन जैसे क्लब या राजनैतिक पार्टी कुछ भी हो सकते हैं।

हाऊस (House, 1981), स्केफर तथा उनके सहयोगियों (Schaefer et al, 1981) द्वारा किये गये शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि सामाजिक समर्थन के विभिन्न प्रारूपों को मुख्यत: तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है– ठोस मदद (tangible assistance) सूचना (information) तथा सांवेगिक समर्थन (emotional support)। ठोस मदद में व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों द्वारा सामाजिक समर्थन के रूप में धन, भोजन या अन्य सम्बद्ध चीजें दी जाती हैं ताकि वह तनावपूर्ण परिस्थिति से निपट सके। सूचना में व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों द्वारा कुछ इस ढंग के विचार प्रदान किये जाते हैं जिनके माध्यम से वह आसानी से तनावपूर्ण परिस्थिति के साथ निबट सकें। सांवेगिक समर्थन जो सामाजिक समर्थन के रूप में तनावपूर्ण परिस्थिति से निपटने का सबसे महत्त्वपूर्ण संयंत्र है, में परिवार, दोस्त या पास-पड़ोस के लोगों द्वारा इस ढंग से व्यवहार किया जाता है मानों वे भी समस्यात्मक परिस्थिति से निपटने में उनके साथ हैं।

कोहेन तथा विल्स (Cohen and Wills 1985) द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि सामाजिक समर्थन तनाव की परिस्थिति में उत्पन्न दु:ख को काफी कम करने में सहायक होता है। कुलिक एवं माहेलर (Kulik and Mahler, 1989) ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि सामाजिक समर्थन से व्यक्ति में कोई बीमारी होने की संभावना में कमी हो जाती है, व्यक्ति किसी बीमारी से जल्दी चंगा होता है तथा गंभीर बीमारियों से मृत्यु होने की संभावना भी कम हो जाती है। बर्कमैन तथा सीमी (Berkman and Syme, 1979) ने एक अध्ययन में 7,000 वयस्क जो कैलिफोर्निया में रह रहे थे, से अपने सामाजिक एवं सामुदायिक संबंधों के बारे में बतलाने के लिए कहा और तब गत सात सालों में अपने परिवार के मृत्यु दर (mortality rate) के बारे में भी बतलाने के लिए कहा गया। परिणाम

नोट

में देखा गया कि जिन वयस्कों के सामाजिक एवं सामुदायिक समर्थन तथा संबंध काफी अच्छे थे, उनकी मृत्यु दर इस अवधि में उन वयस्कों की मृत्यु दर की अपेक्षा जिनके सामाजिक एवं सामुदायिक संबंध अच्छे नहीं थे, काफी कम पाये गए। इतना ही नहीं, यह भी पाया गया कि अन्य व्यक्तियों से मिलने वाले सामाजिक समर्थन से व्यक्ति में उत्तम आदतें भी विकसित होती हैं।

(iii) योजनाबद्ध समस्या समाधान (Planful problem solving)–इस तरह के समायोजी उपाय (cop- ing strategy) में व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली समस्या से निपटने के लिए एक योजना (plan) बनाता है और उसी के अनुरूप व्यवहार करके समस्या का समाधान करता है। जैसे, एक बेरोजगार युवक बेरोजगारी से उत्पन्न तनाव को कम करने के लिए रोजगार समाचार में अपनी योग्यता के अनुरूप छपे विज्ञापनों को पढ़कर अपने वायो-डाटा को नियोजकों (employers) के पास भेजकर अपनी समस्या का समाधान कर तनाव को कम कर लेता है।

समस्या-केन्द्रित उपाय (problem-focused strategy) के तहत कुछ उपाय कभी-कभी ऐसे भी होते हैं जिनमें व्यक्ति का ध्यान समस्या के स्वरूप को परिवर्तित करने की ओर न जाकर स्वयं अपनी ओर जाता है और वह अपने आप में कुछ परिवर्तन लाकर समस्या का समाधान करता है। इसमें व्यक्ति अपनी आकांक्षा स्तर (level of aspiration) में परिवर्तन लाने की कोशिश करता है, वह संतुष्टि के वैकल्पिक माध्यमों (alternative sources) की खोज कर लेता है तथा नये-नये कौशलों को सीख लेता है। इन आन्तरिक उपायों से भी तनाव उत्पन्न करने वाली समस्या के साथ उत्तम ढंग से निपटा जाता है।

2. संवेग केन्द्रित समायोजी उपाय (Emotion-focused coping strategies)–इस तरह के उपाय में व्यक्ति समस्या से उत्पन्न सांवेगिक अनुक्रिया पर ध्यान केन्द्रित करता है। व्यक्ति समस्या के स्वरूप को परिवर्तित करने की कोशिश नहीं करता है परन्तु समस्या से उत्पन्न चिंता को कम करने का उपाय करता है। इन उपायों का उपयोग वहाँ किया जाता है जहाँ व्यक्ति को यह महसूस होने लगता है कि तनाव उत्पन्न करने वाली समस्या इतनी गंभीर है कि उसे बदला नहीं जा सकता है तथा व्यक्ति में तनाव अधिक मात्रा में उत्पन्न हो रहा है। इसके तहत निम्नांकित दो तरह के उपायों का वर्णन किया गया है–

(क) व्यवहारात्मक उपाय (Behavioural strategy)–इस उपाय में कुछ खास-खास तरह के व्यवहार करके व्यक्ति अपने तनाव को दूर करने का प्रयास करता है। जैसे–वह समस्या से ध्यान हटाकर किसी दूसरी चीज में ध्यान लगाता है, शराब तथा सिगरेट अधिक मात्रा में पीने लगता है तथा समय प्रबंधन में प्रत्येक दिन किये वाले कार्यों की एक क्रमबद्ध सूची बनाकर उसी के अनुरूप कार्य करता है। इसका फायदा यह होता है कि व्यक्ति को ऐसे कार्यों से बाधा नहीं उत्पन्न होती है, जो उसके मुख्य लक्ष्ण में बाधक हो सकता है।

(ख) संज्ञानात्मक उपाय (Cognitive strategy)–इस उपाय में व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थिति के अर्थ में परिवर्तन लाकर तनाव को कम करने की कोशिश करता है। इस तरह

नोट

से व्यक्ति यहाँ तनावपूर्ण परिस्थिति का पुनर्मूल्यांकन (reappraisal) करता है। यह पुनर्मूल्यांकन वास्तविक होता है जहाँ व्यक्ति गंभीरता से सोचने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समस्या सचमुच उतनी गंभीर नहीं थी। इस प्रक्रिया को मिकेनबाँम (Meichambaunm, 1977) ने संज्ञानात्मक पुनर्संरचना (cognitive restructuring) कहा है। परन्तु कभी-कभी ऐसा करने में हम लोग वास्तविकता को विकृत (distort) कर देते हैं तथा अपने आप को एक तरह से धोखा देते हैं। ऐसे संज्ञानात्मक उपायों को फ्रायड (Freud) ने रक्षा प्रक्रम (कममिदेम उमबींदपेउ) कहा है जिनमें निम्नांकित सात प्रमुख हैं–

(1) **दमन** (repression)–इसमें तनावपूर्ण समस्या से उत्पन्न चिन्ताओं, यादों आदि व्यक्ति के चेतन से निकलकर अचेतन में चले जाते हैं क्योंकि वे मानसिक रूप से कष्टकारी होती हैं। इसे दमन (repression) की प्रक्रिया कहा जाता है जो दलन (suppression) से भिन्न होता है जहाँ व्यक्ति चिंता उत्पन्न करने वाली इच्छाओं एवं यादों को जान-बूझकर चेतन से हटाये रखता है ताकि वह किसी दूसरे तथ्य पर ध्यान दे सके। अत: दमन में व्यक्ति अपनी इच्छाओं एवं यादों से अवगत नहीं होता है जबकि दलन में व्यक्ति को यह पता होता है कि किन-किन इच्छाओं एवं यादों को चेतन से अलग किया है।

(2) **प्रतिक्रिया निर्माण** (reaction formation)–इसमें व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाले इच्छा या विचार के ठीक विपरीत इच्छा या विचार विकसित करके तनाव को कम करता है। भ्रष्टाचार से चिन्तित एवं तनावग्रस्त एक नेता प्राय: भ्रष्टाचार के खिलाफ भाषण देकर अपना मानसिक बोझ एवं उलझन कम कर लेता है।

(3) **यौक्तिकीकरण** (rationalization)–इसमें व्यक्ति अपने अयुक्तिसंगत व्यवहारों को एक युक्तिसंगत एवं तर्कसंगत व्यवहार के रूप में परिणत कर अपने आप को संतुष्ट कर अपना मानसिक तनाव दूर करता है। इस तरह से यौक्तिकीकरण से दो उद्देश्यों की पूर्ति होती है–पहला तो यह कि जब व्यक्ति लक्ष्य पर पहुँचने में असमर्थ रहता है, तो इससे उत्पन्न कुण्ठा की गंभीरता को यौक्तिकीकरण कम कर देता है तथा दूसरा यह कि वह व्यक्ति द्वारा किए गए व्यवहार के लिए एक स्वीकार्य अभिप्रेरक (acceptable motive) प्रदान करता है। जैसे–एक छात्र समय पर परीक्षा भवन में नहीं पहुँचने पर यह यौक्तिकीकरण कर सकता है कि उसके कमरे के सहयोगी (room-mate) ने उसे ठीक समय पर सुबह नहीं उठाया। यहाँ छात्र परीक्षा भवन में सही समय पर नहीं पहुँचने से उत्पन्न तनाव को एक युक्तिसंगत व्यवहार के माध्यम से दूर करना चाहता है। संभव है कि उसके दोस्त ने सचमुच में उसे ठीक समय पर नहीं उठाया हो, परन्तु परीक्षा भवन में समय पर पहुँचने की जवाबदेही उस पर है न कि उसके दोस्त पर।

(4) **प्रक्षेपण** (projection)–इस तरह के रक्षा प्रक्रम में व्यक्ति अपना तनाव दूर करने के लिए अपनी गलतियों, असफलाताओं आदि का आरोपण दूसरों पर करता है और इस तरह से अपने आप को दोषमुक्त समझता है जिससे उसमें शांति

नोट

एवं आत्म-संतोष उत्पन्न होता है। सचमुच प्रक्षेपण एक तरह का यौक्तिकीकरण ही है परन्तु इसका महत्त्व अलग से इसलिए है क्योंकि यह हमारे समाज में अधिक व्यापक तौर पर उपयोग किया जाता है। परीक्षा में असफलता होने पर छात्र अपना तनाव प्रायः यह कहते हुए कम करता है कि शिक्षक ने ठीक ढंग से पढ़ाया नहीं था या उसे माता-पिता द्वारा घरेलू कार्यों में परीक्षा की अवधि में काफी व्यस्त रखा गया था। ऐसा सोचने से स्वभावतः वह अपने को दोषी नहीं पाता है और तब उसका तनाव कम हो जाता है।

(5) **विस्थापन** (displacement)—विस्थापन भी एक महत्त्वपूर्ण संज्ञानात्मक रक्षा प्रक्रम (cognitive defense mechanism) है। जिसके माध्यम से व्यक्ति अपना तनाव कम करता है। इसमें कष्टकर अभिप्रेरक एवं संघर्षों से उत्पन्न तनाव को मौलिक वस्तु जो ऐसे कष्टकर अभिप्रेरकों एवं संघर्षों की उत्पत्ति करती है, से असम्बद्ध वस्तुओं या परिस्थितियों के प्रति स्थानान्तर करके कम करता है। जैसे—माता-पिता द्वारा डाँट पड़ने पर यदि कोई बालक अपने छोटे भाई को पीटकर अपना तनाव दूर करता है तो यह विस्थापन का उदाहरण होगा। स्पष्ट है कि विस्थापन में व्यक्ति अपना तनाव उस वस्तु या व्यक्ति के प्रति प्रतिक्रिया करके करता है, जो उसे कम खतरनाक या कम भय उत्पन्न करने वाला दिखता है।

(6) **अस्वीकार** (denial)—जब बाहरी वास्तविकता (external reality) इतना अधिक कष्टकर या दुखदायी हो जाती है कि व्यक्ति उसको सहन नहीं कर सकता है, तो ऐसी परिस्थिति में उस वास्तविकता के अस्तित्व को मानने से इन्कार करके वह अपना तनाव दूर करता है। जैसे— घातक रूप से बीमार शिशु के माता-पिता अपना तनाव यह सोचकर कम कर लेते हैं कि शिशु को कुछ भी ऐसा घातक बीमारी नहीं हुई है। हालांकि बीमारी के परिणाम (outcome) को भी वह अच्छी तरह से समझते हैं।

(7) **बौद्धिकीकरण** (intellectualization)—बौद्धिकीकरण एक ऐसा रक्षा प्रक्रम है जिसमें व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थिति से उसके बारे में अमूर्त्त (abstract) ढंग से सोचकर एक तरह की निर्लिप्तता या अलगाव (detatchment) विकसित कर लेता है जिसके परिणामस्वरूप वह अपना तनाव कुछ कम कर पाता है। जैसे—एक डॉक्टर जिन्हें लगातार रोगी की जिन्दगी-मौत से जुझना पड़ता है, में उनकी अवस्थाओं को देखकर उनमें तनाव उत्पन्न होता है। परन्तु जब वह इन रोगियों के प्रति सांवेगिक रूप से आवेष्टन (involvement) न दिखाकर एक तरह का अलगाव विकसित कर लेता है जिससे उसका तनाव कम हो जाता है और वह रोगी का ठीक ढंग से उपचार करने में सफल हो पाता है।

स्पष्ट हुआ कि तनाव की गंभीरता को कम करने के कई उपायों का वर्णन किया गया है। फिर भी ये सारे उपाय अपने उद्देश्य में अधिक सफल नहीं हो पाये हैं क्योंकि समाज के अधिकतर व्यक्तियों में तनाव की गंभीरता इतनी बुरी तरह से छायी हुई है कि उनका

नोट

सांवेगिक एवं दैहिक स्वास्थ्य दिनों-दिन खराब होता जा रहा है। अत: इस सिलसिले में अभी बहुत कुछ करना बाकी है जिसे मनोवैज्ञानिकों ने एक चुनौती के रूप में लिया है। नवीनतम शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि समायोजी व्यवहार (coping behaviour) के सामयिक पहलू (temporal aspect) भी होते हैं। व्यक्ति तनाव के साथ समायोजन तनाव उत्पन्न होने के बाद भी कर सकता है। बीह एवं मैकग्राथ (Beehr and McGrath, 1996) ने निम्नांकित पाँच ऐसी परिस्थितियों का वर्णन किया है जो विशेष सामयिक संदर्भ (temporal context) उत्पन्न करते हैं तथा जिसमें व्यक्ति समायोजी व्यवहार करता है–

(क) **निरोधक समायोजी** (Preventive coping)–यह एक ऐसा समायोजी व्यवहार है जिसे व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली घटना से बहुत पहले ही करना प्रारंभ कर देता है। जैसे, धुम्रपान करने वाला व्यक्ति फेफड़े का कैंसर उत्पन्न होने की जोखिम से दूर रहने के ख्याल से धुम्रपान करना जब छोड़ देता है, तो इसे एक निरोधक समायोजी व्यवहार का उदाहरण माना जाएगा।

(ख) **प्रत्याशी समायोजी** (anticipatory coping)–जब व्यक्ति यह अनुमान लगाकर समायोजी व्यवहार करता है कि तनाव उत्पन्न करने वाली घटना अब तुरंत होने वाली है, तो इस तरह के समायोजी व्यवहार को प्रत्याशी समायोजी कहा जाता है। जैसे–यदि तुरंत सर्जिकल आपरेशन होने के अनुमान के फलस्वरूप व्यक्ति प्रशांतक (tranquilzer) लेता है, तो इस तरह के समायोजी व्यवहार को प्रत्याशी समायोजी व्यवहार कहा जाता है।

(ग) **गत्यात्मक समायोजी** (dynamic coping)–इस तरह का समायोजी व्यवहार व्यक्ति तब करता है जब तनावपूर्ण परिस्थिति से गुजर रहा होता है। जैसे; जब व्यक्ति चिरकालिक दर्द को कम करने के ख्याल से अपना ध्यान उससे हटाकर किसी अन्य वस्तु पर करता है, तो इसे गत्यात्मक समायोजी व्यवहार की संज्ञा दी जाती है।

(घ) **प्रतिक्रियात्मक समायोजी** (reactive coping)–इस तरह का समायोजी व्यवहार तनाव उत्पन्न करने वाली घटना घटने के बाद व्यक्ति अपनाता है। जैसे, एक पैर काट दिये जाने पर जब व्यक्ति अपने जीवन शैली में परिवर्तन लाकर उसके साथ समायोजन करता है, तो इसे प्रतिक्रियात्मक समायोजी व्यवहार कहा जाता है।

(ङ) **अवशिष्ट समायोजी** (residual coping)–यह एक ऐसा समायोजी व्यवहार है जिसमें व्यक्ति तनाव उत्पन्न होने के बहुत बाद उसके गहरे प्रभावों से निपटने के लिए व्यवहार करता है। जैसे, कोई आघातीय घटना (traumatic event) होने के बहुत बाद जब व्यक्ति उसके बारे में अपने भयावह चिंतन को नियंत्रित करके उसके साथ समायोजन करता है, तो उसे अवशिष्ट समायोजी व्यवहार कहा जाता है।

स्पष्ट हुआ कि समायोजी व्यवहार के सामयिक पहलू भी होते हैं जो काफी सार्थक हैं। अभी नवीनतम अध्ययनों से यह भी पता चला है कि पुरुष एवं महिलाएँ उपर्युक्त समायोजी उपायों (coping strategies) के चयन में एक-दूसरे से भिन्नता दिखलाते हैं। अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि पुरुषों द्वारा समस्या-केन्द्रित समायोजी उपाय (problem focused coping strategies) का अधिक उपयोग किया जाता है जबकि महिलाओं द्वारा संवेग केन्द्रित उपाय (emotion focused

नोट

strategy) जिसमें अन्य लोगों से सामाजिक समर्थन हासिल करने की कोशिश की जाती है, अधिक उपयोग किया जाता है, प्टेक, स्मीथ तथा डोज (Ptacek, Smith and Dodge, 1994) द्वारा किये गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि इसका कारण यह है कि जिंदगी के आरंभ से ही पुरुषों एवं महिलाओं को तनाव के साथ निपटने के लिए अलग-अलग रास्तों पर चलने के लिए सिखाया जाता है। परन्तु पोर्टर तथा स्टोन (Porter and Stone, 1995) द्वारा किये गए अध्ययन से यह निष्कर्ष शक के घेरे में आ जाता है, क्योंकि इनके अध्ययनों में यह पाया गया कि महिला एवं पुरुष अनुभव किए गए तनाव की मात्रा के ख्याल से आपस में एक-दूसरे से कम भिन्न होते हैं या फिर उस तनाव से निपटने के लिए जिन उपायों (strategies) का सहारा लेते हैं उनमें भी आपस में कम अन्तर होता है। परन्तु इन दोनों में अपनी-अपनी समस्याओं की अंतर्वस्तु (content) के ख्याल में अवश्य अन्तर होता है। पुरुषों द्वारा कार्य-सम्बद्ध समस्याओं के बारे में अधिक बतलाया जाता है जबकि महिलाओं द्वारा अपने से सम्बद्ध समस्याओं, मातृत्व-पितृत्व से सम्बद्ध समस्या तथा अन्य लोगों के साथ अंतर्क्रियाओं से सम्बद्ध समस्याओं पर अधिक बल डाला जाता है।

कुछ अध्ययनों से यह भी पता चला है कि समायोजी उपायों (coping strategies) पर संस्कृति (culture) का भी प्रभाव पड़ता है। चांग (Chang, 1996) ने एक अध्ययन किया जिसमें विशेष रूप से इस तथ्य पर विचार किया गया कि एशियन छात्रों तथा यूरोपियन छात्रों में आशावादी, निराशावादी तथा समायोजी उपायों (coping strategies) के ख्याल से कोई अंतर होता है या नहीं। परिणाम में यह देखा गया कि एशियन छात्र तुलनात्मक रूप से अधिक आशावादी थे तथा समस्या परिहार (problem avoidance) तथा सामाजिक प्रत्याहार (social withdrawal) को समायोजी उपाय के रूप में अधिक उपयोग करते थे।

4.18 प्रतिबल या तनाव का प्रबंधन

जैसा कि हम जानते हैं, व्यक्ति दिन-प्रतिदिन की जिंदगी में होने वाले तनावों को दूर करने के लिए तरह-तरह के उपायों को अपनाता है। परन्तु ऐसे उपाय हमेशा कई कारणों से कारगर साबित नहीं हो पाते हैं। इन कारणों में सबसे प्रमुख कारण प्रतिबल या तनाव की गंभीरता है या उसकी नवीनता है। ऐसी परिस्थितियों से निपटने के लिए स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिकों (health psychologists) ने प्रतिबल प्रबंधन (stress management) की कुछ प्रविधियों की ओर ध्यान दिया है। उन प्रविधियों पर विचार करने के पहले यहाँ बता देना उचित समझते हैं कि प्रतिबल प्रबंधन क्या है? प्रतिबल प्रबंधन से तात्पर्य एक ऐसे कार्यक्रम से होता है जिसमें लोगों को तनाव के स्रोतों से अवगत कराते हुए उनसे निपटने के आधुनिक एवं वैज्ञानिक तरीकों के बारे में शिक्षा दी जाती है। इतना ही नहीं, ऐसे कार्यक्रम में तनाव को कम करने के कौशलों का अभ्यास भी करवाया जाता है।

तनाव प्रबंधन के कई तरीके हैं जिनमें मूलत: तीन अवस्थाएँ सम्मिलित होती हैं–

(1) पहली अवस्था में तनाव प्रबंधन में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति यह सीखते हैं कि तनाव क्या होता है?

(2) दूसरी अवस्था में वे तनाव को दूर करने या कम करने के कौशलों को सीखते हैं तथा उनका इस कार्य में अभ्यास भी कराया जाता है।

(3) अंतिम अवस्था में लक्षित तनावपूर्ण परिस्थितियों (targeted stressful situations) में वे तनाव प्रबंधन प्रविधियों का अभ्यास करते हैं तथा उनकी प्रभावशीलता को मॉनीटर करते हैं।

उक्त तीनों अवस्थाओं पर आधारित अमेरिका में एक अति महत्त्वपूर्ण तनाव प्रबंधन कार्यक्रम (stress manage- ment programme) विकसित किया गया है जिसे 'कामवैट स्ट्रेस नाऊ' (Combat Stress Now or CSN) कहा जाता है जिसका सफलतापूर्वक उपयोग उन कॉलेज छात्रों के लिए किया गया जो शैक्षिक जीवन के तनावों से निपटने में कठिनाई अनुभव करते हैं।

नोट

लेहरेर एवं उलफोल्क (Lehrer and Wollfolk, 1993) के अनुसार तनाव प्रबंधन की कई प्रविधियाँ (tech- niques) हैं जिन्हें मोटे तौर पर दो मुख्य भागों में बाँटा गया है–

(क) वैयक्तिक उपागम (Individual approach)

(ख) पर्यावरणीय परिवर्तन उपागम (Environmental change approach)

इन दोनों उपागमों के तहत आने वाली प्रविधियों का वर्णन निम्नांकित हैं–

(क) वैयक्तिक उपागम (Individual approach)–इसके तहत तनाव प्रबंधन के लिए मुख्यत: व्यक्ति विशेष पर कार्य किया जाता है जिसमें निम्नांकित प्रविधियों को रखा गया है–

(i) उत्तेजन की कमी (arousal reduction)–इस प्रविधि में व्यक्ति को मांसपेशियों के शिथिलीकरण (relaxation) का प्रशिक्षण दिया जाता है और इस कार्य में कभी-कभी वायोफीडवैक (biofeedback) का भी सहारा लिया जाता है। ऐसा देखा गया कि इस तरह से व्यक्ति को प्रशिक्षित करने से वह इस कौशल का उपयोग फिर ध ीरे-धीरे अपने वास्तविक जिंदगी के तनावों को कम करने के लिए सफलतापूर्वक करने लगता है। डेविसन एवं थॉम्पसन (Davison and Thompson, 1988) ने इस क्षेत्र में किये गए अध्ययनों की समीक्षा करने के बाद यह बताया है कि इस तरह के प्रशिक्षण का स्थायी लाभ तभी मिलता है जब इस तरह के शिथिलीकरण का अभ्यास लगातार व्यक्ति करता है।

(ii) संज्ञानात्मक पुनर्संरचना (Cognitive restructuring)–इस प्रविधि के मुख्य प्रवर्त्तक मिकेनबॉम (Meichambaunm, 1977), इल्लिस (Ellis, 1962) तथा बेक (Beck) है। यह एक ऐसी प्रविधि है जिसमें व्यक्ति के विश्वास तंत्रों (belief systems) में परिवर्तन लाने की कोशिश की जाती है ताकि वह अपने जिंदगी की अनुभूतियों की एक उचित एवं सही व्याख्या प्रस्तुत कर सके एवं अपने संवेगों एवं स्पष्ट व्यवहार में वांछित परिवर्तन ला सके। इल्लिस एवं बेक का मत है कि व्यक्ति में तनावग्रस्त अनुभूतियों के उत्पन्न होने के कारण अयौक्तिक विश्वास (irrational belief) होता है। ऐसे विश्वास के कारण व्यक्ति दूसरों से और यहाँ तक कि स्वयं से अधिक अपेक्षाएँ करने लगता है और तनावग्रस्त हो जाता है। संज्ञानात्मक पुनर्संरचना की प्रविधि में ऐसे विश्वासों को दूर करके उनकी जगह को दूर रखने में समर्थ हो सके। फोल्कमैन तथा लेजारस (थ्वसाउंद दंक ब्रंतनेए 1984) ने अपने अध्ययन के आधार पर इस तथ्य का समर्थन किया है।

(iii) व्यवहारात्मक कौशल प्रशिक्षण (Behavioural skills traning)–तनाव प्रबंधन की यह एक ऐसी प्रविधि है जिसमें व्यक्ति को व्यवहार से सम्बद्ध कुछ ऐसे कौशलों

नोट

(skills) को सिखलाया जाता है जिनका उपयोग करके वह अपने तनाव को कम कर सकता है। जैसे समय प्रबंधन (time management) एक ऐसा ही कौशल है जिसे सिखा कर व्यक्ति अपने दिन-प्रतिदिन की जिंदगी के तनाव को कम कर सकता है। अक्सर देखा गया है कि व्यक्ति को कम समय में जरूरत से ज्यादा काम कभी-कभी करना होता है जो स्पष्टत: तनाव का एक कारण बनता है। समय प्रबंधन में व्यक्ति को इस बात का प्रशिक्षण दिया जाता है कि वह ऐसी परिस्थिति से किस तरह निबटेगा। स्पष्ट हुआ कि इस प्रविधि में व्यक्ति को कुछ विशेष व्यवहारात्मक कौशल (behavioural skills) सिखाया जाता है ताकि वह दिन-प्रतिदिन की घटनाओं से होने वाले तनावों पर नियंत्रण रख सके।

(iv) बायोफीडबैक (Biofeedback)–1970 के दशक में तनाव (stress) को कम करने के लिए नयी प्रविधि की लोकप्रियता बढ़ी जिसे बायोफीडवैक (biofeedback) कहा गया। बायोफीडवैक एक ऐसी विशिष्ट प्रविधि है जिसके माध्यम से तनाव के दैहिक पहलुओं (physiological aspects) को मॉनीटर एवं नियंत्रित किया जाता है। इसमें व्यक्ति को किसी विशेष आंतरिक अंग के कार्यों के बारे में पुनर्निवेशन (feedback) दिया जाता है जो सामान्यत: व्यक्ति के चेतन नियंत्रण से बाहर होता है और व्यक्ति को उसे पहचान करके नियंत्रित करना पड़ता है जैसे, रोगी का संबंध किसी एक ऐसी मशीन से स्थापित किया जा सकता है जो हृदय गति को आवाज (tone) में बदल देता हो ताकि व्यक्ति यह समझ सके कि हृदय कितना तेजी या मंद गति से धड़क रहा है। प्रयास एवं त्रुटि की प्रक्रिया से व्यक्ति धीरे-धीरे इस स्वायत्त अनुक्रिया (autonomic response) को नियंत्रण करना सीख लेता है। अब व्यक्ति यह महसूस कर सकता है कि इन आवाजों पर ध्यान न देकर यदि सांस की गति पर ध्यान केन्द्रित किया जाए, तो इससे उसकी हृदय गति को आसानी से कम किया जा सकता है।

बायोफीडबैक का उपयोग न केवल सामान्य तनाव को कम करने में बल्कि उच्च रक्त चाप, चिरकालिक दर्द, मांसपेशीय संकुचन कम होने सिरदर्द (muscle-contraction headaches) आदि के उपचार में भी किया जाता है। परन्तु यह प्रविधि कीमती (costly) होने के कारण अधिक लोकप्रिय नहीं हो पायी। इसकी लोकप्रियता का एक कारण यह भी था कि इससे अधिक उत्तम परिणाम अन्य प्रविधि से मिलने लगे।

(v) विश्रांति या तनाव मुक्ति प्रविधि (Relaxation techniques)–कई तरह की विश्रांति या तनावमुक्ति प्रविधि (relaxation techiques) ऐसे उपलब्ध हैं जिनसे व्यक्ति तनाव कम करने के लिए सफलतापूर्वक उपयोग करता है। जब व्यक्ति विश्रांति की अवस्था में होता है, तो व्यक्ति के शरीर में उत्तेजना (arousal) कम होता है जिसका मतलब यह हुआ कि व्यक्ति तनाव के प्रति प्रतिक्रिया करने के प्रति कम उन्मुखता दिखलाता है। इस तरह से विश्रांति प्रविधि में व्यक्ति अपने शरीर को निम्न उत्तेजना के सुखद अवस्था में ले जाना सीखता है तथा तनाव से साहचर्यित असामान्य तनाव की अवस्था को कम करना भी सीख लेता है। विश्रांति प्रविधियाँ जिनका उपयोग व्यक्ति तनाव को कम करने में करता है, कई हैं। इनमें निम्नांकित प्रमुख हैं–

नोट

(1) **ऐवरली** (Everly, 1989) के अनुसार, विश्रांति प्रविधि का एक प्रारूप वह है जिसमें शरीर की विभिन्न मांसपेशियाँ समूहों का प्रगतिशील विश्रांति (projective relexation) होती है। यहाँ पूर्वकल्पना यह होती है कि चूँकि तनाव एवं चिंता का संबंध मांसपेशियाँ तनाव (muscle tension) से होता है, अतः मांसपेशीय तनाव को कम करके भी तनाव एवं चिंता के भाव को कम किया जा सकता है। प्रगतिशील विश्रांति में व्यक्ति क्रमबद्ध रूप से शरीर की कुछ मांसपेशियों को विशेषकर शरीर के निचले हिस्से की मांसपेशियों से प्रारंभ होकर चेहरे की मांसपोशियों (facial muscles) को शिथिल (relax) तब तक करता है जब तक कि पूर्ण शरीर विश्रांति की अवस्था में न आ जाए। इस ढंग के सतत् अभ्यास से व्यक्ति में शांति का भाव उत्पन्न होता है तथा फिर वह एक कम तानवपूर्ण मनोवृत्ति विकसित कर लेता है।

(2) विश्रांति प्रविधि का दूसरा प्रारूप नियंत्रित श्वसन (controlled breathing) है। चूँकि विश्रांति की अवस्था गहरे एवं लम्बे श्वसन (breaths) से सम्बद्ध होती है, इसलिए इस ढंग का श्वसन पैटर्न उत्पन्न करके हम व्यक्ति में जान-बूझकर विश्रांति उत्पन्न कर सकते हैं। पहले, व्यक्ति एक लम्बी गहरी सांस लेता है जिसमें मुँह के माध्यम से व्यक्ति के फेफड़े में हवा भर जाती है। इस तरह से गहरी सांस जो कम-से-कम 10 सेकंड तक की होता है, के बाद व्यक्ति फिर छोटी सांस लेता है। इस प्रक्रिया को बार-बार दोहराने से तनाव-उत्पन्न दर्द काफी हो जाता है। इस तथ्य की पुष्टि तर्क एवं उनके सहयोगियों (Turk et al. 1977) तथा विसेनबर्ग (Weisenberg, 1977) के अध्ययनों से हुई है।

कुछ अध्ययनों से इस तथ्य को समर्थन मिला है कि विश्रांति प्रविधियों को लगातार अभ्यास में रखने से असंक्रामक तंत्र (imumune system) को उन्नत बनाने में काफी मदद मिलती है। काईकोल्ट-ग्लेजर एवं उनके सहयोगियों (Kiecolt-Glaser et al; 1984) ने एक अध्ययन किया जिसमें प्रथम वर्ष के कुछ मेडिकल छात्रों को यादृच्छिक ढंग से दो समूहों में बाँटा गया–विश्रांति समूह (relaxation group) तथा नियंत्रित या तुलनात्मक समूह (comparison group)। विश्रांति समूह के छात्रों को परीक्षा प्रारंभ होने के पहले वाले महीने में 5 से 10 विश्रांति सत्र (relaxation session) में अभ्यास दिया गया परन्तु तुलनात्मक समूह को कोई ऐसा प्रशिक्षण नहीं दिया गया। परीक्षा के समय दोनों समूहों के असंक्रामक तंत्र (immune systme) के कार्यों में कमी होते देखी गयी (अर्थात् टी-कोशिकाओं (T-cells) का प्रतिशत कम हो गया) परन्तु विश्रांति समूह के सदस्यों द्वारा चिन्ता कम महसूस की गयी तथा इस समूह के वैसे सदस्य जिन्होंने अधिक बार विश्रांति सत्र में अभ्यास किया थे, उनमें उन सदस्यों की तुलना में जिन्होंने कम बार विश्रांति सत्र में अभ्यास किये थे, टी-कोशिकाओं का प्रतिशत अधिक होते पाया गया। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्रांति से तनाव एवं सम्बद्ध चिन्ता में कमी आती है। काईकोल्ट-ग्लेजर एवं उनके सहयोगियों (Kiecolt-Glaser et al; 1985) ने एक अन्य अध्ययन किया जिसमें 45 वृद्ध लोगों को तीन समूहों में बाँटा गया एक समूह को विश्रांति प्रशिक्षण

नोट

(relaxation training) दिया गया, दूसरे समूह को पर्याप्त सामाजिक सम्पर्क (Socical contact) प्रदान किया गया तथा तीसरे समूह को नियंत्रित समूह (control group) के रूप में रखा गया है। प्रथम दो समूहों के सदस्यों को एक महीने तक सप्ताह में तीन बार प्रशिक्षण दिया गया। महीना समाप्त होने पर यह देखा गया कि विश्रांति समूह के असंक्रामक तंत्र के कार्यों में काफी उन्नति (improvement) देखी गयी। परन्तु उसके एक महीना बीत जाने के बाद यह देखा गया कि विश्रांति का यह उन्नत प्रभाव लगभग समाप्त हो गया जो अपने आप में यह बतलाता है कि विश्रांति का अभ्यास सतत् बने रहने से ही उसका प्रभाव स्पष्ट दिखता है।

(ख) पर्यावरणीय परिवर्तन उपागम (Environmental changes approach)–वैयक्तिक उपागम में उन प्रविधियों पर बल डाला जाता है जो व्यक्ति को विशेष तरह के वातावरण (environment) के साथ समंजन स्थापित करने के लिए तैयार करता है। परन्तु पर्यावरण ीय परिवर्तन उपागम में वातावरण को ही एक समस्या मानकर तथा उसमें परिवर्तन करके तनाव को कम करने का कौशल सिखाता है। इसमें सामाजिक समर्थन (social support) की भूमिका को काफी महत्त्वपूर्ण बताया गया है। कोहेन तथा विल्स (Cohen and Wills, 1985) ने सामाजिक समर्थन के दो प्रकार बताये हैं–संरचनात्मक सामाजिक समर्थन (structual social support) तथा कार्यात्मक सामाजिक समर्थन (functional social support)। संरचनात्मक सामाजिक समर्थन से तात्पर्य व्यक्ति के सामाजिक संबंधों के नेटवर्क जैसे उसके वैवाहिक स्तर तथा दोस्तों की संख्या आदि से होता है। कार्यात्मक सामाजिक समर्थन से तात्पर्य व्यक्ति के संबंधों की गुणवत्ता (quality) से है। जैसे, क्या व्यक्ति को यह विश्वास है कि संकट की घड़ी में वह अपने संबंधियों को अपने पास बुला सकता है? यदि हाँ, तो यह समझा जायेगा कि व्यक्ति को कार्यात्मक सामाजिक समर्थन भी प्राप्त है। गुडनाऊ एवं ग्रेडी (Goodnow anad Grady, 1990),

सीमैन तथा सीमी (Seeman and Syme, 1990) द्वारा किये गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ कि निम्न सामाजिक समर्थन से व्यक्ति में तनाव होता है और फिर कई तरह के शारीरिक एवं मानसिक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। अतः इस उपागम में कुछ इस तरह का प्रशिक्षण व्यक्ति को दिया जाता है जिसके सहारे वह अपने सामाजिक समर्थन के स्तर को मजबूत करके अपने इर्द-गिर्द के वातावरण को इस तरह से परिवर्तित कर देता है कि उसमें तनाव न के बराबर होता है। इस क्षेत्र में सामुदायिक मनोविज्ञानियों (community psychologists) द्वारा किया गया योगदान भी काफी सराहनीय है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि तनाव या प्रतिबल प्रबंधन की कई प्रविधियाँ हैं। इन प्रविधियों का संयुक्त रूप से उपयोग करके व्यक्ति तनावमुक्त जिंदगी व्यतीत कर सकता है।

4.19 व्यक्तित्व

पर्सनालिटी व्यक्तित्व का अंग्रेजी अनुवाद है जो लेटिन शब्द परसोना; परसोना से बना है जिसका अर्थ नकाब से होता है जिसे नायक नाटक करते समय पहनते हैं। इस शब्दिक अर्थ को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति को बाहरी वेश-भूषा तथा बा दिखावे के आधार पर परिभाषित किया गया है। आइजेन्क; 1952 के अनुसार, ''व्यक्तित्व

व्यक्ति के चरित्र, चित्तप्रकृति, ज्ञानशक्ति तथा शरीरगठन का करीब-करीब एक स्थायी एवं टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है।''

4.20 व्यक्तित्व विकृति की परिभाषाएँ

नोट

व्यक्तित्व विकृति एक ऐसी श्रेणी है जिसमें उन व्यक्तियों को रखा जाता है जिनमें व्यक्ति के शीलगुण एवं उनका विकास इतने अपरिपक्व तथा विकृत होते है कि अपने वातावरण के प्रत्येक चीज, घटनाओं एवं व्यक्ति के बारे में वे एक दोषपूर्ण चिन्तन तथा प्रत्यक्षण करते है।

कारसन तथा **बचरु** (1992) के शब्दों में ''सामान्यत: व्यक्तित्व विकृतियाँ व्यक्ति शीलगुणों का एक उग्रया अतिरंजित प्रारूप है जो व्यक्ति को उत्पाति व्यवहार विशेषकर अंतवैयक्तिक प्रकृति के उत्पाति व्यवहार को करने के लिए एक झुकाव उत्पन्न करता है।''

डेविसन एवं **नील** (1996) के अनुसार, ''व्यक्तित्व विकृति विकृतियों का विषय समूह है जो वैसे व्यवहारों एवं अनुभूतियों का स्थायी एवं अनम्य पैटर्न होता है जो सांस्कृतिक प्रत्याशाओं से विचलित होता है और तकलीफ या हानि पहुँचाता है।''

व्यक्तित्व विकृति का अर्थ एवं स्वरूप

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर इमें व्यक्तित्व विकृति का अर्थ एवं स्वरूप के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते है –

1. व्यक्तित्व विकृति में व्यक्ति में व्यवहारात्मक अर्थात् व्यवहारों में विसामान्यताएँ इतनी अधिक एवं विचित्र होती है कि दूसरे लोगों के लिए उनसे कोई अर्थ निकालना संभव नहीं हो पाता है तथा साथ-ही-साथ उनका व्यवहार अपूर्वानुमानेय हो जाता है।
2. व्यक्तित्व विकृति की श्रेणी में किसी विकृति को रखे जाने के लिए यह आवश्यक है कि विकृत शीलगुण का स्वरूप चिरकालिक हो।
3. अगर किसी बीमार; आदि के कारण उसमें थोड़े दिनों से विकृत शीलगुण के लक्षण उसमें दिखलाई देते है तो मात्र इसके आधार पर उसे व्यक्तित्व विकृति की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।
4. व्यक्तित्व विकृति के सभी लक्षण प्राय: किशोरावस्था तक स्पष्ट हो जाते है जो वयस्कावस्था में भी बने रहते है।

व्यक्तिगत विकृतियों की कुछ विशेष सामान्य विशेषताएँ है जिनके आधार पर व्यक्तिगत विकृति के स्वरूप को समझना आसान है। ऐसी कुछ सामान्य विशेषताएँ निम्नांकित है -

1. **विघटित व्यक्तिगत संबंध** – व्यक्तिगत विकृति का चाहे जो भी प्रकार क्यों न हो, उसमें विघटित व्यक्तिगत संबंध की विशेषता पायी जाती है। ऐसे व्यक्तियों का व्यक्तिगत संबंध अन्य व्यक्तियों के साथ इतना बुरा होता है कि अन्य लोग उससे काफी नाराज रहते ही हैं। साथ ही साथ घबराए भी रहते हैं।
2. **चिरकालिक दु:खदायी व्यवहार** – व्यक्तित्व विकृति में व्यक्ति ऐसा व्यवहार काफी लम्बे अरसे से दिखलाता है जो दूसरे के लिए कष्टकर एवं दु:खदायी होता है। वे एक पर एक कहर अन्य लोगों पर ढाते चले जाते है जिससे उनके संपर्क में आये व्यक्तियों को काफी दु:ख पहुँचता है।

नोट

3. **नकारात्मक नतीजा** – व्यक्तित्व विकृति में व्यक्ति को अपनी जिंदगी की घटनाओं का नकारात्मक नतीजा ही सामने आता है। इन नकारात्मक नतीजों में विवाह-विच्छेद; व्यसनी विकृति अपराधिक व्यवहार आदि प्रधान है।

4. **एक ही कुसमायोजी व्यवहार को दोहराना व** – ऐसा देखा गया है कि व्यक्तित्व विकृति में जो भी विशेष शीलगुण पैटर्न है जैसे - शक करना, विद्वेष दिखाना, जिद्दीपन करना आदि विकसित होता है, वह प्रत्येक परिस्थिति में उनके द्वारा दिखलाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति एक ही तरह का कुसमायोजी व्यवहार बार-बार करता है। जैसे - किसी व्यक्तित्व विकृति में यदि निर्भरता के शीलगुण की प्रधानता होती है, तो वह अपनी विशेष माँग पर हठ दिखलाकर अपने प्रियजन से संबंध को तोड़ लेता है। इसके बाद वह पुन: किसी दूसरे व्यक्ति के साथ उसी ढंग की निर्भरता का संबंध दिखलाता है और पुन: उसी व्यवहार को दोहराता है अर्थात् कुछ दिन के बाद पुन: उससे अपना संबंध विच्छेद कर लेता है।

5. **व्यक्तित्व विकृति** – व्यक्तित्व विकृति में व्यक्ति अपनी समस्याओं एवं कुसमायोजी पैटर्न से छुटकारा पाना नहीं चाहता है। फलस्वरूप वह अपनी और से शायद ही कभी किसी प्रकार की चिकित्सा उपायों पर अमल करता है। यदि कोई अन्य व्यक्ति द्वारा उसे चिकित्सा के लिये भेजा भी जाता है, तो वह चिकित्सक के साथ धोखाधड़ी करता है या उसके साथ पूर्ण सहयोग नहीं दिखलाता है जिसके फलस्वरूप उसकी विकृति की गंभीरता बनी रहती है।

6. **व्यवहार परिवर्तन के विरोधी** – व्यक्तित्व विकृति में व्यक्ति द्वारा ऐसा व्यवहार पैटर्न दिखलाया जाता है जिसमें वह किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना चाहता है। ऐसे व्यक्ति न तो अपने व्यवहार में नया परिवर्तन लाना चाहते है और न ही दूसरे को इस बात का अवसर ही देते है कि उनके व्यवहार में परिवर्तन की माँग कर सके।

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व विकृति की कुछ खास-खास विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर इनके स्वरूप को आसानी से समझा जा सकता है।

व्यक्तित्व विकृति के कारण

अनेक मनोवैज्ञानिकों ने मनोविकृत व्यक्तित्व के कारण के संबंध में भी अपने विचार व्यक्त किए है। इनके अनुसार व्यक्ति में विकृति उत्पन्न होने के कारण है जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण कारणों का वर्णन क्रमश: किया जाता है –

1. **वंशानुक्रम** – व्यक्ति की उत्पत्ति और निर्माण में वंशानुक्रम का महत्त्वपूर्ण योगदान है। व्यक्ति वंशानुक्रम के द्वारा ही शील-गुणों को प्राप्त करता है। इसीलिए जैविक रचना तथा शरीर रसायन के दोष होने के कारण व्यक्ति में यह विकार उत्पन्न होता है। इसी कारण से इनका उपचार नहीं किया जा सकता है। इसके विपरीत कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि यह कहना गलत है कि ये विकृति वंशानुक्रम की देन है; क्योंकि बहुत से लोग इस प्रकार के शील-गुण को अपने जीवन में वातावरण के द्वारा अर्जित करते है और यह भी देखा गया है कि एक मनोविकारी माता-पिता का बच्चा स्वरूप और सच्चरित्र होता है और दूसरी तरफ सच्चरित्र माता-पिता की संतान इस दोष से युक्त होती है।

2. **वातावरण** – हम जानते है कि व्यक्तित्व के निर्माण में जितना अधिक हाथ खानपान का रहता है उतना ही वातावरण का भी रहता है। इसीलिए विज्ञान का कहना है कि मनोविकारी व्यक्ति के निर्माण में सामाजिक और भौतिक वातावरण का प्रमुख स्थान है। व्यक्ति जैसे समूह या वातावरण में

रहता है या उसका पालन-पोषण होता है, उसी के अनुरूप उसका सामाजीकरण होता है और उसके व्यक्ति का विकास होता है। इसीलिए अपराधी समाज में रहने वाले व्यक्तियों में अपराध करने की विशेषता पायी जाती है।

नोट

3. **मनोवैज्ञानिक कारक** – हम जानते है कि व्यक्ति किसी भी तरह का अपराध मानसिक तनाव के कारण ही करता है। जब व्यक्ति को असफलता मिलती है, असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है, कोई इच्छा अतृ रह जाती है या संवेगात्मक असंतुलन उपस्थित हो तो इससे मुक्ति पाने के लिए व्यक्ति मदिरा इत्यादि का सेवन करता है और उसमें मनोविकारी व्यक्ति का विकास होता है।
4. **मस्तिष्क दोष** – हिल तथा वाटसन, साइमस एवं डीथेन्स ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया है कि मनोविकारी व्यक्ति की उत्पत्ति का कारण मस्तिष्क दोष है। इसका समर्थन सोलोमन ने भी किया है। अपने अध्ययन के आधार पर इन्होंने बतलाया कि मस्तिष्क में चोट लगने से व्यक्ति के मस्तिष्क तरंगों में असामानता आ जाती है जिसके कारण व्यक्ति में यह दोष उत्पन्न होता है।
5. **केन्द्रीय स्नायु-मण्डल की विकृति** – सिलवरमैन, डीथेम ब्रिल आदि ने अध्ययनों के आधार पर बतलाया कि केन्द्रिय स्नायु - मण्डल के विकृत विकास के कारण मनोविकारी व्यक्ति का विकास होता है।
6. **मातृ-प्रेम तथा अन्य ग्रन्थियाँ** – इसके अन्तर्गत फ्रायड का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अपने सिद्धान्त में बतलाया था कि लड़का माँ से प्रेम करता है और लड़की बाप से प्यार करती है। यदि कोई उसकी इस प्रवृति में बाधा उत्पन्न करता है तो व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास विकृत ढंग से हो जाता है और उसमें मनोविकारी व्यक्ति की विशेषताएँ दृष्टिगोचर होने लगती है।
7. **अवैध जन्म** – हैडसन् गिलस्पी इत्यादि मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया कि मनोविकारी व्यक्ति का कारण अवैध जन्म या अवैध गर्भाधान होता है।
8. **प्रारम्भिक सामाजिक वचना** – फ्रायड तथा नव्य फ्रायडियन का कहना है कि प्रारम्भिक सामाजिक जीवन का प्रभाव बच्चे के व्यक्ति के विकास पर पड़ता है, इनका कहना है कि जन बच्चों को प्रारम्भिक अवस्था में माता-पिता का उचित प्यार, स्नेह मिलता है, जिनकी आवश्यकता की पूर्ति उचित समय पर होती है उसमें सामान्य व्यक्ति की उत्पत्ति और विकास होता है और जिन बच्चों को कम उम्र में ही माता-पिता के प्यार से वंचित रहना पड़ता है, आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण बचपन की सुविधाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा उत्पन्न हो जाती है तो ऐसे ही बच्चों में मनोविकारी व्यक्ति का विकास होता है।
9. **दोषपूर्ण शिक्षण** – मनोवैज्ञानिक का कहना है कि दोषपूर्ण शिक्षण भी मनोविकारी व्यक्ति की उत्पत्ति का कारण होता है। जिस परिवार में माता-पिता का संबंध तनावपूर्ण होता है, जिस परिवार में बच्चों के अपराध को छिपा लिया जाता है ऐसे परिवार के ही बच्चे आगे चलकर अपराधी बन जाते है।

इस प्रकार हम देखते है कि मनोविकारी व्यक्ति की उत्पत्ति के अनेक कारण है जिनका वर्णन ऊपर किया गया है।

व्यक्तित्व विकृति की पहचान या निदान में सम्मिलित समस्याएँ

व्यक्तित्व विकृति का सही-सही पहचान करने या उसका सही-सही निदान करने में कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी प्रमुख समस्याएँ निम्नांकित हैं –

नोट

1. व्यक्तित्व विकृति का सही निदान या पहचान करने में सबसे पहली समस्या इस क्षेत्र में नाम मात्र किये गए शोध का होना है। व्यक्तित्व विकृति को अब तक लोगों ने स्पष्ट ढंग से परिभाषित भी नहीं किया है जिसके कारण रोग की पहचान ठीक-ठीक करना संभव नहीं हो पाता है।
2. प्राय: यह देखा गया है कि एक ही व्यक्ति में व्यक्तित्व विकृति के एक से अधिक प्रकार की विशेषताएं देखने को मिलते है जिससे व्यक्तित्व विकृति के किसी एक निश्चित प्रकार के होने की पहचान करना संभव नहीं है।
3. फ्रान्सेस (1980) के अनुसार व्यक्तित्व विकृतियों में पाये जाने वाले व्यक्ति शीलगुण का स्वरूप विमीय होने के कारण वे सामान्य अभिव्यक्ति; से लेकर रोगात्मक अभिव्यक्ति दोनों में पाये जाते है।
4. व्यक्तित्व विकृतियों को अनुमानित शीलगुणों के आधार पर परिभाषित किया जाता है नि कि वस्तुनिष्ठ व्यवहारों के आधार पर। नतीजन, ऐसी विकृतियों का सही-सही पहचान करना संभव नहीं हो पाता है।

उपयुक्त चार समस्याओं में से किसी भी समस्या से निदान की विश्वसनीयता बुरी तरह प्रभावित है। अत: मनिकिसकों; तथा नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा यह प्रयास किया जा रहा है कि व्यक्तित्व विकृति के कुछ वस्तुनिष्ठ कसौटी तैयार कर ली जाए ताकि इसके निदान में किसी प्रकार की कोई भूल नहीं हो सके।

व्यक्तित्व विकृति के उपचार

मनोविकारी व्यक्तित्व के उपचार के विषय में मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसे व्यक्तियों में कोई मानसिक रोग नहीं पाया जाता और इनका व्यवहार भी बहुत दूर तक सामान्य व्यक्तियों से मिलता-जुलता रहता है जिसके कारण इनका उपचार किसी भी विधि से करना कठिन कार्य है। फिर भी व्यवहारवादियों ने इनके उपचार के लिए व्यवहार चिकित्सा विधि को उपयोगी बतलाया है। उन्होंने बतलाया है कि इसके द्वारा उपचार करने के लिए सबसे पहले रोगी के सामने चिकित्सक एक अच्छे व्यवहार वाले व्यक्ति के रूप में उपस्थित होता है और अच्छा व्यवहार प्रस्तुत करता है। रोगी उनके व्यवहार का अनुकरण करता जाता है। जैसे-जैसे उसमें सुधार होता जाता है, उसे पुरस्कार प्रदान किया जाता है। जब रोगी बिना किसी की उपस्थिति के स्वयं उपर्युक्त व्यवहार करने लगता है तो उसे भौतिक पुरस्कार के बदले प्रोत्साहित किया जाता है, जिसके कारण उसके व्यवहार में नियंत्रण आ जाता है और वह बहुत दूर तक सामान्य व्यक्ति बन जाता है।

व्यक्तित्व विकृति के प्रकार

व्यक्तित्व विकृति के निम्नांकित प्रमुख 10 प्रकार है –

1. स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृति
2. स्किजोआयड व्यक्तित्व विकृति
3. स्किजोटाइपल व्यक्तित्व विकृति
4. हिस्ट्रीओनिक व्यक्तित्व विकृति
5. आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति
6. समाज विरोधी व्यक्तित्व विकृति
7. सीमान्त रेखीय व्यक्तित्व विकृति
8. परिवर्जित व्यक्तित्व विकृति

9. अवलिम्बत व्यक्तित्व विकृति
10. मनोग्रस्ति बाध्यता व्यक्तित्व विकृति

- कुंडेप्ट में स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृति, केजोआयड व्यक्तित्व विकृति तथा स्किजोटाइपल व्यक्तित्व विकृति को समूह 'अ'; में रखा गया है। इस समूह में आने वाले तीनों व्यक्तित्व विकृतियों का व्यवहार लगभग एक समान होता है। उनका व्यवहार विचित्र, अनियिमत तथा असामाजिक होता है। उनका व्यवहार विचित्र, अनियिमत तथा असामाजिक होता है।
- समूह 'ब' में चार व्यक्तित्व विकृतियों को रखा गया है– समाज विरोधी व्यक्तित्व विकृति सीमान्तरेखीय व्यक्तित्व विकृति हिस्ट्रीओनिक व्यक्तित्व विकृति तथा आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति। इन चारों को एक समूह में रखने का तर्क यह रखा गया है कि इन सब का व्यवहार नाटकीय, सांवेगिक तथा सनकी तरह का होता है।
- समूह 'स' में व्यक्तित्व विकृति के तीन उपप्रकारों को रखा गया है– परिवर्जित व्यक्तित्व विकृति अवलिम्बत व्यक्तित्व विकृति तथा मनोग्रासित-बाध्यता व्यक्तित्व विकृति। इनमें चिंता या डर होने की समानता के साथ-साथ, कुछ विशेष नियमों के साथ जुड़कर व्यवहार करके तथा सांवेगिक हार्दिकता की कमी आदि के रूप में अधिक समझा जाता है।

उपर्युक्त तीन समूहों में से चार व्यक्तित्व विकृतियों का वर्णन इस प्रकार है :-

सीमान्त रेखीय व्यक्तित्व विकृति

इस विकृति से पीड़ित व्यक्ति सामान्यता तथा मनोविदलता के बीच सीमारेखा पर होता है। व्यक्ति में कई तरह की असमर्थाएँ देखी जाती है। इस तरह की विकृति वाले व्यक्ति में व्यक्तित्व विकृति के लक्षण के अलावा कुछ ऐसे लक्षण भी पाये जाते है जो गंभीर मानसिक रोग यानी भावनात्मक रोग में पाये जाते है।

- जैसे – अस्थिर अन्तवैयक्तिक संबंध, नाटकीय ढंग से बदलते हुए भाव अनुपयुक्त भाव अभिव्यक्ति, विघटित आत्म-धारण क्रोध एवं मनोदशा का प्रदर्शन, जुआ तथा उचक्कापन जैसे आवेगी कार्य इत्यादि। ऐसे व्यक्ति थोड़ा सा भी उत्तेजम पाने से अत्यधिक क्रोधित हो जाते है। ऐसे व्यक्ति की प्रकृति आवेगशील होती है तथा उनका व्यवहार अपूर्वानुमेय अस्थिर एवं आक्रमकतापूर्ण होता है।
- विडिगर (1986) के अनुसार ऐसे व्यक्तियों की पहचान आवेगशीलता तथा आत्म-विकृति के आधार पर आसानी से किया जाता है।

आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति

ऐसी विकृति वाले व्यक्तित्व में आत्म-महत्त्व की भावना काफी तीव्र एवं मजबूत होती है। ऐसे व्यक्ति अपने आप को काफी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति समझते हैं और लोगों से अलग विशेष सेवा की उम्मीद करते हैं। ऐसे व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी होते हैं अपनी इच्छा एवं विचार के समक्ष दूसरे की इच्छा एवं दूसरे व्यक्ति को अपने निकट आने नहीं देते है तथा साथ-ही-साथ अपने ऊपर उसे निर्भर भी होने नहीं देते है। ऐसे व्यक्तियों में परानुभूमि की सर्वथा कमी होती है। वे अपने व्यक्तित्व में कभी भी किसी प्रकार के दोष या विकृति की उपस्थिति को स्वीकार नहीं करते है। फलत: वे कभी भी मनोवैज्ञानिक उपचार की आवश्यकता महसूस नहीं करते हैं। इस विकृति के मुख्य लक्षण या विशेषताएँ है –

आत्म-महत्त्व अपनी उपलब्धियों का अधिमूल्यांकन की प्रवृति, दूसरे से ध्यान एवं प्रशंसा पाने के लिए आत्मदर्शन, सफलता, सम्पति, अधिकार, सम्मान अथवा आदर्श प्रेम की कल्पनाओं में ध्यानमग्नता;

नोट

स्किजोआयड व्यक्तित्व विकृति

ऐसी विकृति वाले व्यक्तियों में लोगों के साथ सामाजिक संबध बनाये रखने की अक्षमता होती है और साथ-साथ उनकी इस दिशा में कोई अभिरुचि भी नहीं होती है। ऐसे लोगों में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने की पूरी क्षमता भी नहीं होती है। यही कारण है कि अन्य व्यक्तिययों द्वारा इन्हें असामाजिक एवं एकान्तप्रिय; समझा जाता है। इसमें सामाजिक कौशलता की सर्वथा कमी पायी जाती है। स्किजोआयड व्यक्तित्व विकृति के कुछ निश्चित लक्षण है, जिनके आलोक में इसे पहचाना जा सकता है –

नोट

- संवेगात्मक उदासीनता
- गोपनीयता
- एकाकीपन
- परिहार

तथा दूसरे के साथ घनिष्ठ संबंध कायम करने की अयोग्यता। इस विकृति में चिन्तन, वाणी तथा व्यवहार की अनियिमतता का अभाव रहता है।

स्थिर-व्यामोही व्यक्तित्व विकृति

ऐसे व्यक्तित्व विकृति वाले व्यक्तियों में मूल रूप से शक, अतिसंवेदनशीलता ईर्ष्या, जिद्दीपन जैसे शीलगुणों की अधिकता पायी जाती है। ऐसे लोग अपने गलत कार्यों को भी तर्क के आधार पर सही ठहराने की कोशिश करते हैं। वे हमेशा अपने को निदोष साबित करने की कोशिश करते हैं हांलाकि उनका व्यवहार हर तरह से दोषपूर्ण ही होता है। ऐसे लोग अपने पद एवं कोटि के प्रति अधिक सतर्क होते हैं और जो लोग इनसे उँचे आहदे या प्रतिष्ठा वाले होते है, उनके प्रति इनमें जलने का भाव अधिक होता है। स्थिर-व्यामोही व्यक्तित्व विकृति के मुख्य लक्षण है –

- अत्यधिक संदेह
- वैरभाव;
- दोषरोपण के संकेत के प्रति अति संवेदनशीलता

इस तरह से हम देखते है कि व्यक्तित्व विकृति के कई प्रकार है। जिनमें से हमने सीमान्त रेखीय व्यक्तित्व विकृति, आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति, स्किजोआयड व्यक्तित्व विकृति तथा स्थिर-व्यामोही व्यक्तित्व विकृति को विस्तारपूर्वक समझा।

क्योंकि व्यक्तित्व विकृतियों में सबसे प्रमुख व्यक्तित्व विकृति समाज विरोधी व्यक्ति है, जिसे मनोविकारी व्यक्ति भी कहा जाता है। जिसे मनोवैज्ञानिकों एवं मनिचिकित्सकों ने अधिक गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया है, अत: हम भी इसका थोड़ा सा वर्णन जरूर करना जाहेंगे –

4.21 मनोविकारी व्यक्तित्व या समाजविरोधी व्यक्तित्व

लैंडिस तथा बॉल्स ने मनोविकारी व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार दी है - ''मनोविकारी व्यक्तित्व ऐसे व्यक्ति की श्रेणी है जिसमें दुखदायी तथा व्यक्ति विध्वंसात्मक व्यवहार वाले व्यक्ति होते है, लेकिन ऐसे व्यक्ति को मन: स्नायुविकृति, मनोविकृति या मानसिक गड़बड़ी की श्रेणियों में नहीं रखा जाता है। '' ऐसे व्यक्ति परिवार तथा

समाज के लिए काफी दुखदायी होते हैं। ऐसे व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ होते हुए भी समाज में आतंक फैलाने व शांति भंग करने वाले होते है। कुंडेप्ट के वर्गीकरण पद्धति के अनुसार सिर्फ उन्हीं व्यक्तियों को समाज-विरोधी व्यक्तित्व की श्रेणी में रखा जा सकता है। जो निम्नांकित कसौटी के अनुरूप होते हैं –

नोट

1. किसी नियमानुकूल व्यवहार करने में सामाजिक मानकों के प्रति अनुरूपता दिखाने में असफल रहना।
2. बार-बार झूठ बोलना।
3. आवेगशील
4. चिड़चिड़ापन तथा आक्रमणशीलता दिखलाना।
5. सतत् उत्तरदायित्वहीनता दिखाना।
6. व्यक्ति की आयु कम से कम 18 वर्ष का निश्चित रूप से हो।

व्यक्तित्व विकृति के कारणात्मक कारक

व्यक्तित्व विकृति के निम्नांकित तीन कारण बतलाये गये हैं -

- **जैविक कारक** – कुछ अध्ययनों से यह पता चलता है कि बच्चों में खास तरह के शारीरिक संगठनात्मक प्रतिक्रियां प्रवृति जैसे : अत्याधिक संवेदंशीलता, उच्च या निम्न जीवन शक्ति आदि से एक खास तरह के व्यक्तित्व विकृति के उत्पन्न होने की संभावना अधिक हो जाती है। केडलर तथा ग्रुयनवर्ग (1982) ने अपने अध्ययन में पाया है कि जनिनक कारकों की भूमिका स्पष्ट होती है।
- **मनोवैज्ञानिक कारक** – मनोवैज्ञानिक कारकों ने प्रारम्भिक सीखना के कारक को काफी महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस विचार के अनुसार बचपनावस्था में ही बच्चे खास-खास ढंग से कुछ अनुक्रियाओं को करना विशेष परिस्थितिवंश या अपने से बड़ों को करते देखकर सीख लेते हैं। इनमें से कुछ अनुक्रियाएँ ऐसी होती है जो बालकों में बाद में चलकर व्यक्तित्व विकृति उत्पन्न करती है।
- **सामाजिक-सांकृतिक कारक** – ऐसे विशेषज्ञों का अनुमान है कि आधुनिक संस्कृति की विशेष माँग जैसे : समस्या का तुरन्त समाधान होना, आरामदेह जिन्दगी, तुरन्त संतुष्टि आदि से व्यक्ति के जीवन शैली में उत्तरदायित्वहीनता; आत्मकेन्द्रिता आदि जैसे : लक्षण विकसित होते है जो व्यक्ति में धीरे-धीरे व्यक्तित्व विकृति उत्पन्न करते हैं।

निष्कर्षत : यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व विकृति के तीन सामान्य कारण बतलाये गये हैं।

4.22 व्यक्तित्व विकृति के उपचार एवं प्रतिफल

विशेषज्ञों का मत है कि व्यक्तित्व विकृति का स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि वह अपने आप से किसी भी तरह की चिकित्सा का विरोधी होता है। ऐसे लोग यह मानने के लिए तैयार नहीं होते हैं कि उनमें कुछ असामान्यताएँ है जिनका उपचार करना आवश्यक है। फलत: व्यक्तित्व विकृति के रोगियों का उपचार काफी कठिन हो जाता है। यही कारण है कि भाईलैन्ट (1975) ने यह सुझाव दिया है कि ऐसे लोगों का उपचार बाहरी रोगी के रूप से नहीं करना चाहिए बल्कि इनका उपचार कुछ खास-खास पस्थिति जैसे : कारागार; आदि में रखकर करना चाहिए जहाँ ऐसे लोगों के व्यवहारों में उदंडता कम हो जाती है और वे चिकित्सक के साथ बहुत हद तक सहयोग भी करते है। **लीमनै** तथा **मुंलभे** (1973) ने उपचार के लिए एक विशेष उपाय का वर्णन किया है जिसमें उन्होंने दो तरह की बातों को ऐसे रोगी के उपचार में महत्त्वपूर्ण बतलाया है। पहली बात तो यह है कि ऐसे रोगियों को

प्रारम्भ में ही बतला देना चाहिए कि चिकित्सा की अवधि थोड़ी होगी तथा दूसरी बात यह है कि उनकी जिन्दगी चलाने का उत्तरदायित्व नहीं लेने जा रहे है।

इन बातों को बतलाकर यदि उन्हें चिकित्सीय सत्र; दिया जाता है, तो यह काफी लाभकर सिद्ध होता है।

नोट

4.23 मनोस्नायुविकृति का अर्थ एवं स्वरूप

'स्नायुविकृति' या 'मनोस्नायुविकृति' पद का प्रयोग सबसे पहले अंग्रेज वैज्ञानिक विलियम कूलेन द्वारा स्नायुमंडल के विकृत संवेदन के लिए 1796 में प्रकाशित सिस्टम ऑफ नोसोलॉजी में किया गया था। बाद में फ्रायड तथा उनके सहयोगियों ने स्नायुविकृति का उपयोग चिंता से उत्पन्न मानसिक रोग के लिये किया और आज भी इसका उपयोग करीब-करीब इसी अर्थ में आम लोगों द्वारा किया जाता है।

मनोस्याविकृति में कई तरह के मासिक विकृतियों को रखा गया था जिसमें चिन्ता स्नायुविकृति दुर्भिति स्नायुविकृति रूपांतर स्नायुविकृति रोगभ्रमी स्नायुविकृति मनोग्रस्ति बाध्यता स्नायुविकृति आदि को रखा गया। मनोचिकित्स्कों ने 'स्नायुविकृति' जैसे नैदानिक श्रेणी को अमान्य घोषित इसीलिए किया कि इतने विभिन्न विशेषताओं या लक्षणों वाले मानसिक विकृतियों को एक श्रेणी में रखना उचित नहीं होगा, क्योंकि उनके भिन्न लक्षणों एवं कारकों का वैज्ञानिक अध्ययन संभव नहीं हो पायेगा। फलत: 'स्नायुविकृति' जैसी श्रेणी को हटा दिया गया है और सचमुच में 'स्नायुविकृति' जैसी पुरानी श्रेणी को तीन नये प्रमुख भागों में बाँटकर उनके गहन अध्ययन पर प्रकाश डाला गया है। वे तीन श्रेणियाँ है - चिंता विकृति कायाप्रारूप विकृति तथा विच्छेदी विकृति।

उपर्युक्त अर्थ व स्वरूप से यह ज्ञात होता है कि 'स्नायुविकृति' या 'मनोविकृति' को दुश्चिन्ता विकृति जो सबसे प्रमुख नैदानिक समस्या है, से ही जाना जाता है।

4.24 दुश्चिन्ता विकृति का अर्थ तथा प्रकार

दुश्चिन्ता या चिंता विकृति से तात्पर्य वैसे विकृति से होता है जिसमें क्लायंट या रोगी में अवास्वतविक चिन्ता एवं अतार्किक डर की मात्रा इतनी अधिक होती है कि उससे उसका सामान्य जिन्दगी का व्यवहार अपअनुकूलित हो जाता है तथा उससे व्यक्ति का दिन प्रतिदिन का समायोजन कुप्रभावित हो जाता है। दुश्चिन्ता विकृति के मुख्य छह प्रकार होते है और केस्लर तथा उनके सहयोगियों के अनुसार वयस्क जनसंख्या के करीब 15 से 16% लोग दुश्चिन्ता विकृति के किसी-न-किसी प्रकार से अवश्य ही ग्रस्त होते है। दुश्चिन्ता विकृति के छह प्रकार निम्नांकित है –

1. दुर्भिति विकृति
2. सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति
3. भीषिका विकृति
4. मनोग्रसित-बाध्यता विकृति
5. तीक्षण प्रतिवल विकृति
6. उत्तर अभिघात प्रतिक्षण विकृति;

इनमें से इस इकाई में हम सबसे पहले चिंता विकृति, दुर्भिति तथा मनोग्रसित-बाध्यता विकृति को विस्तार में समझेंगे, इनका अर्थ, परिभाषा एवं लक्षण तथा कारण एवं उपचार का वर्णन करेंगे। तपश्चात हम 'मनोस्नायुविकृति की अन्य दो श्रेणियों का वर्णन अर्थात् कायाप्रारूप विकृति तथा विच्छेदि करेंगे।

चिंता विकृति या दुश्चिन्ता विकृति का स्वरूप, उत्पत्ति के सामान्य कारण एवं उपचार

असमान्य मानोविज्ञान में चिंता एवं उसमें उत्पन्न मानसिक विकृतियों पर सर्वाधिक ध्यान दिया गया है। चिंता से तात्पर्य डर एवं आशंका के दुखद भाव से होता है।

चिंता विकृति की उत्पत्ति के सामान्य कारण चिंता विकृति की उत्पत्ति के कुछ सामान्य कारण; बतलाये गए है :-

नोट

(क) जैविक कारक

(ख) मनोवैज्ञानिक कारक

(ग) सामाजिक - सांकृतिक कारक

चिंता विकृति की उत्पत्ति में इन तीन कारकों की भूमिका इस प्रकार है :-

(क) जैविक कारक – जैविक कारकों में शरीरगठनात्मक कारक तथा आनुवांशिक कारकों को मूलत: सम्मिलित किया गया है। नैदानिक अध्ययनों से यह सबूत मिला है कि चिंता विकृति का रोग उन व्यक्तियों में अधिक होता है जिनके परिवार में इस रोग के होने का इतिहास पहले से रहा हो।

इसके अलावा यौन, उम्र, शरीरगठनात्मक कारक एवं ग्रन्थीय कार्यों की अनियिमतता आदि के रूप में चिंता विकृति की उत्पत्ति की व्याख्या की गयी है।

(ख) मनोवैज्ञानिक कारक – चिंता विकृति की उत्पत्ति में जितना मनोवैज्ञानिक कारकों का हाथ है, उतना किसी भी अन्य कारकों का नहीं है। ऐसे प्रमुख मनोवैज्ञानिक कारक निम्नांकित हैं –

1. **चिन्ता - सुरक्षा** – कोई भी तनावपूर्ण परिस्थिति जब व्यक्ति में अत्याधिक चिन्ता उत्पन्न कर देती है तो उसे अपने अहं;महवद्ध को बचाने के लिए व्यक्ति कुछ अहं-सुरक्षात्मक उपायों को अपनाता है।
2. **दोषपूर्ण सीखना** – चिंता विकृति की उत्पत्ति कुछ कुसमायोजित व्यवहारों को सीखने तथा कुछ आवश्यक सक्षमताओं को न सीखने के फलस्वरूप भी होता है। जब किसी कारण से व्यक्ति में दिन-प्रतिदिन की समस्याओं का समाधान करने की आवश्यक सक्षमता नहीं होती है तो वह अपने आप को असुरक्षित, अपर्याप्त एवं चिंतित पाता है।
3. **अवरूद्ध व्यक्तिगत विकास** – जब किसी कारण से व्यक्ति का अपना मूल्य आशाएँ एवं अस्तित्व अर्थहीन नजर आता है, तो वैसी परिस्थिति में उसका व्यक्तिगत विकास मानसिक रूप से अवरूद्ध हो जाता है और उसमें आवश्यक निपुणता एवं कौशल की कमी हो जाती है। इसके परिणामपरूप उसकी जीवनशैली दोषपूर्ण हो जाती है।

(ग) सामाजिक - सांकृतिक कारक – नैदानिक मनोवैज्ञानिकों एवं मनोरोग विज्ञानियों के अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि विशेष प्रकार के चिंता विकृति कुछ खास प्रकार के सामाजिक-सांकृति में अधिक देखने को मिलता है। जैसे :- सामान्य रूप से रूपांतर हिस्टीरियां अविकसित देश की संस्कृति में अधिक देखने को मिलता है जबकि मनोग्रासित - बाध्यता विकृति तथा सामान्यीकृत चिंता विकृति विकसित देश में अधिक देखने मिलता है।

इस तरह यह स्पष्ट हुआ है कि चिंता विकृति जैसी नैदानिक समस्या की उत्पत्ति के कई कारण है।

चिंता विकृति के उपचारी उपाय

चिंता विकृति के उपचार के तरीके भिन्न-भिन्न है। चिंता विकृति के उपचार में जैविक चिकित्सा तथा मनोवैज्ञानिक चिकित्सा दोनों को अलग-अलग या संयुक्त रूप से उपयोग किया जाता है। इन दोनों तरह के उपचारी उपायों का वर्णन निम्नांकित है :-

नोट

(क) औषध चिकित्सा एवं अन्य जैविक चिकित्सा – कुछ मनोरोगिवज्ञानियों का मत है कि मन स्नायुविकृति के करीब 70% रोगियों का उपचार विभिन्न तरह के प्रशान्तकों जैसे - भेलियम या लिब्रियम आदि औषध को खिलाकर आसानी से कर लिया जाता है। इन औषध के खाने से उनकी चिन्ता तथा मानसिक तनाव कम हो जाती है।

इस औषध चिकित्सा के अलावा कुछ अन्य जैविक उपचारी प्राविधियाँ जैसे - 'एलोक्ट्रोस्टलीप' का भी उपयोग अधिक लाभप्रद बतलाया गया है। सामन्यीकृत चिंता विकृति के कोई-कोई रोगियों में एलेक्ट्रोस्लीप का प्रभाव ऐसा हुआ कि बहुत ही कम दिनों में उनमें सामान्यता कायम हो गई।

(ख) मनोवैज्ञानिक प्रविधियाँ – नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का दावा है कि चिंता विकृति के उपचार में मनोवैज्ञानिक विधियाँ, जैविक विधियों लाभप्रद एवं उपयोगी है।

(1) वैयक्तिक चिकित्सा – इस श्रेणी में आने वाली चिकित्सा प्रविधियों का मूल उद्देश्य आत्म-सूझ का विकास वास्तविक संदर्भ, मूल्य के संतोषजनक पैटर्न, समायोजनात्मक माँग को पूर्ति करने का प्रभावकारी प्रविधियों के विकास पर बल डालना होता है।

इस श्रेणी में अन्य चिकित्सा विधियों के अलावा क्लायंट - केन्द्रित चिकित्सा तथा मनोवैश्लेषित चिकित्सा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

(2) व्यवहार चिकित्सा – चिंता विकृति के उपचार में व्यवहार चिकित्सा मूलत: कुसमायोजी व्यवहार को दूर करने, आवश्यक सक्षमता तथा समायोजी व्यवहार को सीखने तथा उन पर्यावरणी हालातों को जो कुसमायोजी व्यवहारों को पुनर्बलित करते हैं तथा सपेषित करते हैं, को दूर करने पर बल डालना है। व्यवहार चिकित्सा की नई विधियाँ है जिनमें चिन्ता विकृति के रोगियों के लिए कुछ खास-खास प्रकार की प्रविधियाँ जैसे - क्रमबद्ध असंवेदिकरण विरूचि चिकित्सा अन्त: स्फोटात्मक चिकित्सा फ्लडिंग तथा मॉडलिंग काफी अधिक प्रचलित है।

(3) पारिवारिक चिकित्सा – रोगग्रस्त परिवारिक परिस्थिति से भी स्नायुविकृति; संतोषित होती है। अत: इन लोगों का मत है कि ऐसे मानसिक रोग का सही-सही उपचार तभी संभव है जब उनके परिवार के सभी सदस्यों को विश्वास में लेकर चिकित्सा की जाए। इस तरह की चिकित्सा मनोग्रसित-बाध्यता स्नायुविकृति तथा सामान्यीकृत चिंता विकृति के रोगीयों के उपचार में काफी लाभप्रद पाया गया है।

(4) बहुमॉडल चिकित्सा – यह चिकित्सा की एक ऐसी विधि है जिसमें चिंता विकृति के रोगियों का उपचार कई प्रविधियों को एक साथ मिलाकर किया जाता है। इस तरह के बहुमॉडल चिकित्सा से चिंता विकृति के रोगियों के उपचार में अप्रत्याशित सफलता मिलती है। ऐसे रोगी के स्नायुविकृति शैली जलसम को नियन्त्रित करने के लिए अन्तवैयक्तिक चिकित्सा तथा साथ-साथ ही विशेष कुसमायोजी लक्षण को दूर करने के लिए व्यवहार चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है, तो इससे ऐसे रोगियों के उपचार में आशातीत सफलता मिल सकती है।

4.25 दुर्भिति विकृति

दुर्भिति एक बहुत ही सामान्य चिंता विकृति है जिसमें किसी ऐसे विशिष्ट वस्तु या परिस्थिति से सतत एवं असंतुलित मात्रा में डरता है जो वास्तव में व्यक्ति के लिए कोई खतरा या न के बराबर खतरा उत्पन्न करता है। जैसे - जिस व्यक्ति में मकड़ा से दुर्भिति उत्पन्न हो गया है, वह उस कमरे में नहीं जा सकता है। जहाँ मकड़ा

मौजूद है। स्पष्टत: मकड़ा एक ऐसा जीव-जन्तु है जो व्यक्ति के लिए कोई खतरा नहीं पैदा करता है। परन्तु इससे दुर्भिति उत्पन्न हो जाने पर व्यक्ति के सामान्य व्यवहार को वह विचलित; कर देता है।

नोट

दुर्भिति विकृति की परिभाषाएँ एवं लक्षण

सेलिगमन एवं रोजेनहान 1998 ने दुर्भिति को इस प्रकार परिभाषित किया है - ''दुर्भिति एक सतत डर प्रतिक्रिया है जो खतरा के वास्तविकता के अनुपात से परे होता है।''

डेविडसन एवं नील 1996 ने दुर्भिति को कुछ और स्पष्ट ढ़ग से इस तरह परिभाषित किया है, ''मनोरोगविज्ञानियों द्वारा दुर्भिति को एक विघटकारी, डर-व्यवहत परिहार जो किसी खास वस्तु या परिस्थिति से उत्पन्न खतरा के अनुपात से अधिक होता है तथा जिसे प्रभावित व्यक्ति द्वारा आधारहीन समझा जाता है, के रूप में परिभाषित किया गया है।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि इस तरह से दुर्भिति में पाया गया डर दिन-प्रतिदिन के जीवन में पाया गया सामान्य डर से भिन्न होता है, तथा इस डर से व्यवहार अपअनुकूलित होता है।

दुर्भिति के लक्षण

(i) किसी विशिष्ट परिस्थिति या वस्तु से इतना अधिक सतत डर जो वास्तविक खतरा के अनुपात से कहीं अधिक होता है।

(ii) व्यक्ति या रोगी यह समझता है कि डर अत्यधिक या अवास्तविक है।

(iii) व्यक्ति दुर्भिति उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या वस्तु से दूर रहना पसंद करता है।

दुर्भिति विकृति के मुख्य तीन श्रेणी होते है - एगोराफोबिया

सामाजिक दुर्भिति तथा विशिष्ट दुर्भिति

(1) एगोराफोबिया : इसमें व्यक्ति ऐसे सार्वजनिक जगहों में जाने से डरता है जिससे पलायन संभव नहीं है या विभिषिका के समान लक्षण उत्पन्न होने पर उनकी कोई स्नानकरने के लिए उपलब्ध नहीं हो पायेगा।

(2) सामाजिक दुर्भिति : इसमें व्यक्ति वैसी सामाजिक परिस्थिति में जाने से डरता है जहाँ वह समझता है कि उसका मूल्यांकन किया जा सकता है। ऐसे लोग प्राय: जन समूह के सामने बोलने या कुछ क्रिया करने में काफी डरते है।

(3) विशिष्ट दुर्भिति : वैसी दुर्भिति होती है जिसमें व्यक्ति विशिष्ट वस्तु या परिस्थिति से काफी डरता है। जैसे – कुछ लोग विशेष तरह के पशु, पक्षी या कीड़े-मकोड़े से काफी डरते है।

दुर्भिति के कारण

दुर्भिति के निम्नांकित चार प्रमुख सिद्धांत या कारक या रूपावली; है जिनमें उसकी व्याख्या अलग-अलग ढंगों से की गयी है-

(1) जैविक सिद्धांत या कारक

(2) मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत या कारक

(3) व्यवहारपरक सिद्धांत या कारक

(4) संज्ञानात्मक सिद्धांत या कारक

नोट

इनका वर्णन निम्नांकित है -

(1) जैविक सिद्धांत या कारक – इस क्षेत्र में किये गये शोध से यह स्पष्ट हुआ है कि निम्नांकित दो क्षेत्रों से संबद्ध जैविक कारक महत्त्वपूर्ण है –

(i) स्वायत्त तंत्रिका तंत्र – दुर्भिति उन व्यक्तियों में अधिक उत्पन्न होता है। जिनका स्वायत्त तंत्रिका तंत्र कई तरह के पर्यावर्णी उद्दीपकों से बहुत ही जल्द उत्तेजित हो जाता है। लेसी 967 ने इस तरह के स्वायत्त तंत्रिका को स्वायत्त अस्थिरता कहा जाता है। गाबे 1992 के अनुसार स्वायत्त अस्थिरता बहुत हद तक वंशानुगत रूप से निर्धारित होता है। अत: व्यक्ति के अनुवांशिकता का दुर्भिति उत्पन्न होने में एक निश्चित भूमिका होती है।

(ii) आनुवांशिक कारक – कुछ ऐसे अध्ययन हुए है जिनसे यह स्पष्ट सबूत मिलता है कि दुर्भिति होने की संभावना उन व्यक्तियों में अधिक होता है जिसके माता-पिता तथा तुल्य संबंधियों में इस तरह का रोग पहले हो चुका हो।

(2) मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत – फ्रायड के अनुसार दमित उपांह इच्छाओं से उत्पन्न चिंता के प्रति रोगी द्वारा अपनाया गया दुर्भिति एक सुरक्षा; होता है। यह चिंता डर उत्पन्न करने वाले उपांह की इच्छाओं से विस्थापित होकर किसी वैसे वस्तु या परिस्थिति से संबंधित हो जाता है जो इन इच्छाओं से किसी-न-किसी ढंग से जुड़ा होता है। वह वस्तु या परिस्थिति जैसे बंद स्थान, ऊँचाई कीड़े मकोडे आदि तब व्यक्ति के लिए दुर्भिति उत्पन्न करने वाले उद्दीपक हो जाते है। उनसे दूर रहकर व्यक्ति अपने आप को दमित संघर्ष से बचाता है।

(3) व्यवहारपरक सिद्धांत – इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति में दुर्भिति उत्पन्न होने का मुख्य कारण दोषपूर्ण सीखना होता है। इस दोषपूर्ण सीखना की व्याख्या निम्नांकित तीन तरह के कारकों से की गयी है–

(i) परिहार अनबुंधन

(ii) मॉडलिंग

(iii) धनात्मक पुनर्बलन

इन तीनों का वर्णन निम्नांकित है –

(1) परिहार अनबुंधन – इसकी सटीक व्याख्या माऊर्र 1947 द्वारा किया, इसके अनुसार दुर्भिति दो तरह के संबद्ध सीखना से होता है– कलासिकी अनबुंधन द्वारा जब किसी तटस्थ उद्दीपक को जिसे अनबुंधित उद्दीपक भी कहा जाता है, डर उत्पन्न करने वाला उद्दीपक या घटक के साथ युग्मित कर दिया जाता है, तो व्यक्ति पहले इस तटस्थ उद्दीपक के प्रति डरना सीख लेता है। दुर्भिति के उत्पन्न होने के लिए यह आवश्यक है कि उत्पन्न डर सामान्यीकृत हो अर्थात् व्यक्ति सिर्फ अनबुंधित उद्दीपक से ही नहीं डरे बल्कि अन्य समान उद्दीपकों से भी डरे। जैसे - वह सिर्फ कोई विशेष ऊँचे मकान से ही नहीं डरे, बल्कि सभी ऊँची चीज पर जाने से डरे।

(ii) मॉडिलग – मॉडलिंग के अनुसार दुर्भिति व्यक्ति में दूसरों के व्यवहार को प्रेक्षण करके (या उसके बारे में दूसरों से सुनकर भी) विकसित होता है। प्रेक्षण द्वारा इस तरह के सीखना को स्थानापन्न सीखना या प्रेक्षणात्मक सीखना भी कहा जाता है। जिसमें यह स्पष्ट रूप से यह पाया गया कि जब प्रयोज्यों ने दूसरों से किसी वैद्युत उपकरण को स्पर्श करने पर दर्द का अनुभव होते कई प्रयासों में प्रेक्षण किया, तो उससे भी उस उपकरण से असंगत डर उत्पन्न हो गया।

नोट

(iii) **धनात्मक पुनर्बलन** – दुर्भिति का विकास व्यक्ति में धनात्मक पुनर्बलन के आधार पर भी होता है। जैसे - मान लिया जाए कि कोई बच्चा स्कूल जाने से डर कर अपने माता-पिता के सामने कुछ ऐसा बहाना बनाता है कि उसे स्कूल नहीं जाना पड़े। यदि माता-पिता उसके इस बहाना को सुनकर उसे स्वीकार कर लेते है और जिसके परिणामस्वरूप, उसे स्कूल नहीं जाना पड़ता है तो यहाँ माता-पिता द्वारा बच्चे को स्कूल नहीं जाने के लिए सीधा धनात्मक पुनर्बलन मिल रहा है। इसका परिणाम यह होगा कि बच्चा भविष्य में डर कर स्कूल न जाने की अनुक्रिया को करना सीख लेगा।

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि धनात्मक पुनर्बलन से भी व्यक्ति में डर या दुर्भिति उत्पन्न होता है।

(4) संज्ञानात्मक सिद्धांत – दुर्भिति के विकास में कुछ संज्ञानात्मक कारकों की भी अहम भूमिका रही है। दुर्भिति विकृति से ग्रस्त व्यक्ति जान-बूझकर परिस्थिति को या उससे मिलने वाली सूचनाओं को इस ढंग से संसोधित करते हैं कि उससे उनका दुर्भिति और भी मजबूत हो जाता है। इस तरह से दुर्भिति के उत्पन्न होने तथा उस संशोधित होने में एक तरह का संज्ञानात्मक पूर्वाग्रह; बवहदपजपअम इपवेपेद्ध होता इस तथ्य का समर्थन एक अध्ययन से होता है। इस अध्ययन में साँप या मकड़ा से डरने वाले प्रयोज्यों का दो समूह तैयार किया। साँप या मकड़ा से कम डरने वाले प्रयोज्यों का समूह तथा साँप या मकड़ा से अधिक डरने वालों का समूह। अध्ययन के आधार पर प्रयोगकर्ताओं द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँच गया कि साँप या मकडा से अधिक मात्रा में डरने वाले प्रयोज्य जान-बूझकर सूचनाओं को इस ढ़ग से संपोषित कर रहे थे कि उनमें ऐसे डर और अधिक संसोधित होता रहे या बना रहे।

दुर्भिति का उपचार

दुर्भिति के रोगियों के उपचार के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है।

मनोचिकित्सक को रोगी के साथ इतनी घनीता स्थापित करने की आवश्यकता होती है ताकि रोगी अपने प्रेम, घृणा, कुंठा, अपराध व पाप भावनाओं को खुलकर अभिवयक्त कर सके। इससे रोग के मूल स्रोत को समझने में आसानी होती है। इस प्रकार चिंता के मूल स्रोत की जानकारी के पश्चात रोगी को धैर्यपूर्वक तथा विश्वास के साथ ऐसी चिन्ता का सामना करने के लिए उसके व्यवहार को धीरे-धीरे परिवर्तित करना होता है। व्यवहार के ऐसे रूपान्तरण की दो मुख्य विधियाँ है –

(i) **असम्बद्धता** – इस विधि द्वारा व्यक्ति के गलत परिवेश से अधिगिमत भय एवं चिन्ता को दण्ड द्वारा या अन्य मनोवैज्ञानिक चरों के सहयोग से समाप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। इस विधि के उपयोग से यह उद्देश्य रहता है कि व्यक्ति अपने अतार्किक पूर्व अनुभवों को भूल जाए तथा पुन: उसका तार्किक अधिगम कर सके।

(ii) **असंवेदनशीलता** – इसका अर्थ है भय की स्थिति का वस्तु के प्रति व्यक्ति को असंवेदनशील बनाना। उदाहरणार्थ यदि एक व्यक्ति को छिपकली से डर लगता है, तो पहले उसके समक्ष प्लास्टिक की छिपकली लायी जाए, फिर धीरे-धीरे इस छिपकली को इतना निकट तक लाते रहना चाहिए जब तक वह इस विषय के प्रति असंवेदनशील न हो जाए। यदि दुर्भिति ग्रस्त व्यक्ति को उपरोक्त विधियों से लाभ नहीं मिल पाता है तब रोगी को विद्युत आघात मिलने पर रोगी में सुधार दिखाई देने लगता है।

नोट

4.26 सामान्यीकृत चिंता विकृति की परिभाषा, कारण एवं उपचार

सामान्यीकृत चिन्ता विकृति वास्तव में चिन्ता विकृति (anxiety disorder) का एक प्रकार है। इस मानसिक विकृति को स्वतंत्र प्रवाही विकृति (free-floating disorder) भी कहते है। इस विकृति में चिन्ता इतना अधिक चिरकालिक (chronic), दृढ़ (persistent) तथा व्यापक (Pervasive) हो जाती है कि सह स्वतंत्र प्रवाही लगने लगती है। इस मानसिक विकृति को चिन्ता-प्रतिक्रिया (anxiety reaction) भी कहते है।

सरासन तथा सरासन (Sarason and Sarason, 2003) ने इस मानसिक विकृति की एक समग्र परिभाषा दी है। उनके अनुसार -"सामान्यीकृत चिन्ता विकृति का तात्पर्य दृढ़ चिन्ता से है जो कम-से-कम एक महीना तक बनी रहती है और जिसमें कई लक्षण सम्मिलित होते है - गति, तनाव, स्वचालित अतिक्रिया, आशंकित प्रत्याशा, सतर्कता तथा अवलोकन।"

सामान्यीकृत चिन्ता विकृति के कारण

निम्नलिखित कारण है –

1. **मनोवैज्ञानिक कारक** (Causes of Generalized Anxiety disorder, GAD) – सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) के अनुसार इस रोग का कारण इड (id) तथा इगो (ego) के आवेगों (impulses) के बीच अचेतन है। इड की कामुक अथवा आक्रमणशील इच्छाएँ जब चेतन रूप से संतुष्ट नहीं हो जाती है तो वे अचेतन में दमित हो जाती है। किन्तु ये दमित या अचेतन इच्छाएँ अपनी अभिव्यक्ति एवं संतुष्टि के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहती है, किन्तु इगों इस पर रोक लगाए रहता है क्योंकि इसे दण्ड का भय लगा रहता है। इस प्रकार इड तथा इगो के विरोधी आवेगों से उत्पन्न या संघर्ष के कारण व्यक्ति चिन्ता का शिकार बन जाता है।
2. **अधिगत कारक** (learning factors) – अधिगम मॉडल (learning model) अथवा व्यवहारवादी मॉडल (behavioural model) के अनुसार सामान्यीकृत चिन्ता विकृति (GAD) के विकास में बाह्य कारकों का हाथ होता है। दूसरे शब्दों में यह चिन्ता विकृति का स्रोत वास्तव में वातावरणीय कारक है।
3. **व्यवहारवादी मॉडल** (Behavioural Model) – बरलों (Barlow, 1988) के अनुसार अनिवार्य आशंकित करने की घटना पर (unscapable threatening event) के लगातार प्रभावन के कारण यह विकृति विकसित होती है।
4. **संज्ञानात्मक कारक** (cognitive factors) – संज्ञानात्मक दृष्टिकोण (cognitive view) के अनुसार समान्यीकृत चिन्ता विकृति (GAD) का आधार व्यक्ति का विकृत संज्ञान है। संज्ञान का अर्थ प्रत्यक्षण चिंतन विवेक इत्यादि है। व्यक्ति किसी उत्तेजना से उत्तेजित होते समय क्या प्रत्युक्षण करता है, कैसे सोचता है आदि का गहरा प्रभाव उस रूप में उसकी मानसिकता पर पड़ता है।
5. **जैविक कारक** (Biologial factor) – टोरगरसेन (Torgersen, 1983) ने सही सामंजस्य सामान्यीकृत चिन्ता विकृति के लिए समान जुड़वा तथा असमान जुड़वाँ बच्चों के जोड़े में पाया लेकिन, वंशानुक्रम को इस रोग के लिए अपवर्जक कारक (exclusive factor) नहीं माना जा सकता है।

सामान्यीकृत चिन्ता विकृति के उपचार

सामान्यीकृत चिन्ता विकृति (generalized anxiety disorder) के उपचार के लिए निम्नलिखित चिकित्सा विधियों का उपयोग आवश्यकता के अनुसार किया जा सकता है –

नोट

1. **मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा** (Psychoanalytic therapy) – मनोविश्लेषण (psychoanalysis) के अनुसार इस मानसिक रोग का कारण ईगो की दुर्बलता से उत्पन्न अचेतन में दमित इड की लैंगिक इच्छा के चेतन में उपस्थित होने की धमकी है। अत: इसके उपचार के लिए इगो को पुनर्सरचित करना तथा सबल बनाना आवश्यक है। अत: ईगो को सबल बनाकर इस रोग का उपचार किया जा सकता है।
2. **व्यवहार चिकित्सा** (Behaviour therapy) – व्यवहारवादी विचारधारा के अनुसार इस रोग का कारण रोग में आत्मक्षमता तथा आत्मविश्वास की कमी है। अत: मॉडलिंग, मौखिक निर्देश, प्रवर्तन अनुकूलन आदि के माध्यम से रोगी के आत्मविश्वास तथा आत्म क्षमता को बढ़ाकर उसे रोगमुक्त किया जा सकता है।
3. **संज्ञानात्मक चिकित्सा** (Cognitive therapy) – संज्ञानात्मक उपागम (congnitive approach) के अनुसार इस रोग का कारण दोषपूर्ण संज्ञान है। अत: रोगी के प्रत्यक्षीकरण, विश्वास तथा चिंतन करने के ढंग में परिवर्तन लाकर इस रोग का उपचार किया जा सकता है।
4. **मेडिकल चिकित्सा** (Medical Therapy) – सामान्यीकृत चिन्ता विकृति के उपचार के लिए चिन्ता विरोधी औषधियों (anti-anxiety drugs) का उपयोग काफी प्रभावी होता है।

अत: सामन्यीकृत चिन्ता विकृति के रोगी के उपचार के लिए उपर्युक्त चिकित्सा प्रविधियों में से एक अथवा एक से अधिक प्रविधियों का उपयोग किया जा सकता है।

4.27 मनोग्रस्ति-बाध्यता विकृति की परिभाषा, कारण एवं उपचार

मनोग्रस्ति - बाध्यता एक ही व्यक्ति विकार के दो ऐसे अभिन्न रूप होते है जिसके अन्तर्गत मनोग्रस्ति (obsession) से व्यक्ति के चेतन पर किसी एक विशेष विचार अथवा अप्रिय इच्छा का अनिच्छित तथा सतत् रूप से आते रहने का बोध होता है तथा बाध्यता (compulsion) से प्रत्यक्षत: उसमें उस विचार से संबंधित किसी एक विशिष्ट क्रिया से सम्पन्न करने के लिए आन्तरिक रूप से बारम्बार एक अदम्य विवशता के आवेग के उत्पन्न होते रहने का बोध होता है।

Corson & Butcher, 1992 ने मनोग्रस्ति बाध्यता को परिभाषित करते हुए कहा है कि -±मनोग्रस्ति-बाध्यता से मनस्ताप में व्यक्ति जिस चीज पर विचार नहीं करना चहता है, उसके लिये अपने को बाध्य समझता है अथवा वह कोई कार्य अपने इच्छा के विपरीत करता है।''

मनोग्रस्ति – बाध्यता विकृति के नैदानिक लक्षणों का संबंध अभिन्न व्यक्ति के दमित व अचेतन काम - आवेगों, विरोध व घृणा के भावों, नैतिक व अनैतिक इच्छाओं तथा आकर्षण व विकर्षण के विभिन्न रूपों, विचारों तथा विचित्र क्रियाओं से जुड़ा रहता है। इसके अलावा मनोग्रस्ति व्यक्ति के मन में सदैव शंका व संशय के विचार घर किये रहते है।

मनोग्रस्ति – बाध्यता विकृति से संबंधित अनसु धान का सवक्षण करने पर इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि इस रोग से ग्रस्त रोगियों का व्यक्ति अन्तर्मुखी होता है, एसे व्यक्ति नैतिक तथा सामाजिक मूल्य का सम्मान करते है, पूर्णतावादी, बुद्धिमान, पुरातनपथी, अन्तिववके शील, दृढ़, भावकु, शकांलू तथा सावधानी रखने वाले होते है।

मनोग्रस्ति-बाध्यता के कारण

इस मनोविकृति व्यवहार के अनेक कारण है जिनका वर्णन अद्योप्रस्तुत है –

1. **जैविक कारक** (Biological Factors) – आनूवंशिकता (Heredity) अनेक चिकित्सकीय अध्ययनों से यह परिणाम प्राप्त किया गया है कि अनियिमतता के पाये जाने पर मनोग्रस्ति - बाध्यता विकृति के

नोट

लक्षण उत्पन्न होते है। इसी प्रकार मस्तिष्क -कल्प अध्ययनों (brain imaging studies) से प्राप्त प्रदत्त यह प्रदर्शित करते है। रोगी के अग्र प्रखण्ड (frontal lobes) बेंसल गेंगलिया (basal ganglia) तथा सिंगुलक (cingulum) की क्रीयाशीलता में वृद्ध होने से मनोग्रस्ता - बाध्यता विकृति के उत्पत्ति में सहायक होते है।

2. **पुनरावृत्ति** (Repetition)– कुछ मनोवैज्ञानिकों ने पुनरावृत्ति को इस रोग का कारण माना है। उनका कहना है कि बचपन में बहुत से खेल ऐसे होते हैं, जिनमें किसी संख्या या शब्द को बार-बार दुहराना पड़ता है। इसके साथ-साथ खेल के नियम का पालन करने के लिए भी एक ही क्रिया की पुनरावृत्ति करनी होती है। बार-बार एक शब्द या संख्या को दुहराने या किसी क्रियाविशेष को बार-बार करने से उसकी आदत पड़ जाती है। अत: कुछ दिनों के बाद व्यक्ति बाध्यता का गुलाम हो जाता है। परन्तु यह विचार भी सर्वमान्य नहीं है।
3. **असुरक्षा की भावना** (Insecurity feeling)– कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्ति अपनी सुरक्षा - भावना को दृढ़ बनाने के लिए बाध्यताओं का सहारा लेता है। रोगी में असुरक्षा की भावना प्रबल होती है और उसकी पूर्ति बाध्यताओं का सहारा होती है। इस तरह बार-बार हाथ धोना, बीमारी तथा गन्दगी से बचने का उपाय है। बार-बार ताला खींचकर देखना इसी रक्षात्मक मानसिक रचना की देन है।
4. **मानसिक संघर्ष** (Mental conflict)–फ्रॉयड का कहना है कि इस रोग का कारण लैंगिक इच्छा का दमन ही है। कामेच्छा के दमन के कारण मानसिक संघर्ष उत्पन्न हो जाता है और इस संघर्ष से निर्मुक्त होने के लिए व्यक्ति बाध्यता का शिकार हो जाता है। उसने काम-शक्ति (libido) के प्रतिगमन और उसकी असंतुष्टि पर विशेष जोर दिया है।
5. **स्थानापन्न क्रियाएँ** (Substitute activities)– कुछ मनोवैज्ञानिकों ने स्थानापन्न क आधार पर इसकी व्याख्या की है। उनका कहना है कि बाध्यताएँ सिर्फ थापन्न (substitute) की क्रियाएं है। एक समय में व्यक्ति एक ही विचार को मन में स्थान दे सकता है या एक ही क्रिया कर सकता है। इस तरह, यदि व्यक्ति बातें सोचने का मौका ही नहीं मिलेगा।

मनोग्रस्ति - बाध्यता विकृति के उपचार

मनोग्रस्ति - बाध्यता विकृति के विभिन्न कारणों के विवरण के पश्चात् अब इस विकार के उपचार की विधियों का वर्णन अति आवश्यक है।

इस व्यक्ति विकार के उपचार में मनोचिकित्सा की अति महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। इस क्रम के अन्तर्गत पहले व्यक्ति के अचेतन मन के अध्ययन के लिए मनोविश्लेषण विधि के उपयोग की आवश्यकता होती है, जिससे व्यक्ति के आन्तरिक तनाव के मूल स्रोत का पता लग सके।

अधिकांशत: ऐसे केस आन्तरिक रूप से तनाव के मूल स्रोत की जानकारी से ही ठीक होने लगते है। अब यदि इस संबंध में सफलता कम ही मिलती है, तब -

1. ऐसे व्यक्ति को अपने आन्तरिक काम-संबंधी आवेगों के स्वरूप को समझने व स्वीकार करने के लिए सहमत बनाना होता है।
2. काल्पनिक तथा वास्तविक संकट में भेद करने की आवश्यकता तर्क - शक्ति विकसित करने को प्रोत्साहित करना होता है, तथा
3. उसे आपके रूढ़िवादी व कर्मकाण्डी व्यवहार के पालन करने के स्थान पर सुनियोजित तथा रचनात्मक व्यवहार करने के लिए अभिप्रेरित करना होता है।

नोट

यदि ऐसे रोगी के आन्तरिक तनाव के अध्ययन में मनोविश्लेषण विधि सफल न होने पाये, तब इसके लिए नर्कोशिस (संवेदन मन्दता) की आवश्यकता पड़ सकती है। इस स्थिति में रोगी के गहन नैदानिक साक्षात्कार से भी महत्त्वपूर्ण सहायता मिल सकती है। इन विधियों के विफल होने पर ही विद्युत आद्यात विधि तथा एक अन्य शैल्य चिकित्सा अथवा मस्तिष्क अंशोन्छेदस (टोपेक्टामी - Topectomy) का भी अन्तिम विकल्प के रूप में उपयोग किया जा सकता है। टोपेक्टामी - चिकित्सा विधि के अन्तर्गत मस्तिष्क के उस विशेष अंग को विच्छेदित करके बाहर निकाल दिया जाता है। जिसका संबंध मनोग्रस्तिज विचार से पाया जाता है।

4.28 कायाप्रारूप विकृतियाँ

DSM–IV के अनुसार कायाप्रारूप विकृतियों का विभेदन उन शारीरिक लक्षणों के आधार पर किया जाता है जिनमें कुछ चिकित्सकीय दशाएँ पाई जाती है।

DSM–IV (1995) के अनुसार - ''कायाप्रारूप विकृति को अनेक उन शारीरिक लक्षणों के द्वारा विशेषीकृत किया जा सकता है जिनकी उपयुक्त व्याख्या शारीरिक अथवा प्रयोगशालायी परीक्षण के आधार पर सम्भव नहीं है।''

DSM–IV के अनुसार कायाप्रारूप विकृतियों के सात प्रकार है :-

1. कायिक विकृति (Somatization disorder)
2. अविभेदीकृति कायाप्रारूप विकृति (Undifferentiated Somatization disorder)
3. रूपान्तरण विकृति (Conversion disorder)
4. दर्द विकृति (Pain disorder)
5. रोग भ्रम (Hypochondriasis)
6. शरीर दुष्क्रिया या आकृति विकृति (Body dysmorphic disorder)
7. अन्य न वर्णित कायाप्रारूप विकृति (Somatoform disorder not otherwise specified) 'मनोस्नायुविकृति' की दूसरी श्रेणी।

इसमें से हम रूपान्तरण विकृति (conversion disorder or conversion hysteria) को विस्तार से जानेंगे।

रूपान्तर विकृति या रूपान्तर उन्माद की परिभाषा

DSM – IV (1994) के पहले रूपान्तर-उन्माद को स्नायुविकृति (neurosis) अथवा मनोस्नायुविकृति (psychoneurosis) का एक प्रकार माना जाना था। लेकिन DSM – IV में दो तरह के परिवर्तन किए गए। पहला परिवर्तन यह किया गया कि स्नायुविकृति या मनोस्युविकृति के स्थान पर चिन्ता विकृति शब्द का उपयोग किया। दूसरा परिवर्तन यह किया गया कि रूपान्तर उन्माद के स्थान पर रूपान्तर विकृति शब्द का उपयोग किया गया। इसे कायप्रारूप विकृति का एक प्रकार माना। अत: यह बात स्मरण रखना चाहिए कि रूपान्तर विकृति तथा रूपान्तर उन्माद समानअर्थी शब्द है।

रेबर तथा **रेबर** (Reber and Reber, 2001) ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि ''स्पान्तर विकृति एक कायाप्रारूप विकृति है, जिसमें मानसिक द्वन्द्वों का रूपान्तरण दैहिक लक्षणों के रूप में हो जाता है। उन्होंने यह भी कहा है कि रूपान्तर विकृति के रूपान्तर प्रतिक्रिया (conversion reaction) रूपान्तर उन्माद (conversion hysteria) या उन्माद स्नायुविकृति (hysteria neurosis) भी कहते है।''

रूपान्तर विकृति (रूपान्तर उमाद) के कारण

नोट

1. **अचेतन लैंगिक इच्छाएँ** (unconscious sexual wishes)– मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के अनुसार रूपान्तर उन्माद या रूपान्तर विकृति के विकास में अचेतन इच्छाओं और विशेष रूप से दमित लैंगिक इच्छाओं का हाथ होता है। सिंगमण्ड फ्रायड के अनुसार जिन लैंगिक इच्छाओं की संतुष्टि चेतन स्तर पर नहीं होती है, उनका दमन (repression) या दलन (suppression) अचेतन में हो जाता है। लेकिन, अचेतन स्तर पर भी वे सक्रिय रहती है जिससे अचेतन द्वंद्वो (conflicts) की उत्पत्ति होती है। इन्हीं द्वंद्वो का समाधान शारीरिक लक्षणों के रूप में होता है।
2. **गुप्त आक्रमणशील आवेग** (hidden aggressive urge)– उन्मत लकवा (hysterical paralysis) के विकास में अचेतन आक्रमणशील आवेग का हाथ होता है। जैसे - एक अनुभवी तथा सफल सर्जन का दाहिना हाथ अचानक लकवाग्रस्त हो गया। मेडिकल जाँच से उसके हाथ में कोई कायिक दोष नहीं पाया गया।
3. **भयानक तथा संकटमय परिस्थितियाँ** (Dreadful and threatening situation) – डेविडसन तथा नील (1996) ने इस संदभ में कहा है कि युद्ध या लड़ाई से भयानक तथा संकटमय परिस्थिति से बचाव के लिए सैनिक में उन्माद के लक्षण जैसे – लकवा, अंधपन, बहरापन, प्रकम्पन आदि विकसित होते है।
4. **आयु एवं यौन भिन्नता** (Age and sex difference) – रूपान्तर विकृति के विकास पर आयु तथा यौन-भिन्नता का प्रभाव पड़ता है। इस रोग का आक्रमण सामान्यत: किशोरा अवस्था अर्थात् 13 से 19 वर्ष की आयु में अधिक होता है।
5. **व्यक्ति शीलगुण** (personality traits) – अध्ययनों से पता चला है कि कुछ खास तरह के शीलगुण वाले व्यक्ति में रूपान्तर उन्माद के लक्षणों के विकसित होने की संभावना अधिक रहती है जबकि कुछ अन्य तरह के शीलगुण वाले व्यक्ति में इसकी संभावना कम होती है। जिन लोगों में अति-संवेदनशीलता अधिक संकेतशीलता संवेगशीलता तथा आवेगशीलता के शीलगुण होते है, उनमें इस रोग के विकसित होने की संभावना अपेक्षाकृत अधिक होती है।
6. **दोषपूर्ण अनुशासन** (Faulty discipline)– दोषपूर्ण अनुशासन का अर्थ है अनुशासन जो अत्यधिक ढीला-ढाला अथवा अत्यधिक कठोर होता है। इस तरह के अनुशासन से बच्चों में आत्मनियंत्रण की योग्यता का विकास समुचित रूप से नहीं हो पाता है, जिससे उनमें आगे चलकर उन्माद के लक्षणों के विकसित होने की पृष्ठभूमि बन जाती है।
7. **सामाजिक - सांकृतिक कारक** (socio-cultural factors)– परिवार की सामाजिक आर्थिक स्थिति, सामाजिक मानक के स्वरूप, देहाती-शहरी क्षेत्र आदि का प्रभाव भी इस मानसिक रोग के विकास पर पड़ता है। उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति की अपेक्षा निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के लोगों में यह रोग अधिक पाया जाता है।

रूपान्तर उन्माद विकृति के उपचार

रूपान्तर विकृति या उन्माद के उपचार के लिए कई तरह की चिकित्सा विधियों का उपयोग किया जा सकता है। इनमें से मुख्य निम्नालिखित है –

1. **मनोचिकित्सा** (psychotherapy) – इस प्रकार की विकृति में व्यक्ति के लिए मनोचिकित्सा (psycotherapy) के प्रभावी उपचार के रूप में सर्वप्रथम यह आवश्यक होता है कि संबंधित रोगी को विश्वस्त रूप से यह बताया तथा समझाया जाए कि उसके लक्षणों का आकार केवल प्रकार्यात्मक (functional) अथवा मनोजन्म ही है, कोई दैहिक विकार नहीं। दूसरे, ऐसे व्यक्ति के मानसिक भार

को कम करने के लिए उसके जीवन क्रम में से उन प्रतिबलक स्थितियों के निराकरण की आवश्यकता होती है, जो कि उसके संबंधित लक्षणों के लिए पुनर्बलन का कार्य करती देखी जाती है।

2. **प्लेस्बो** (Placebo) – अब यदि ऐसे रोगी पर मनिचिकित्सा का प्रभाव कम ही देखने में आता है, तब उसे उपचार के रूप में प्लेस्बो के देने की आवश्यकता होती है। प्लेस्बो एक निष्प्रभावी- सामग्री (जैसे व्यावहाकित:) कैल्शियम की टिकिया होती है, जिसे एक व्यक्ति को एक प्रभावी औषिध के रूप में दी जाती है। अब यदि संबंधित रोगी प्लेस्बो के उपचार से भी प्रभावित नहीं होता है।

नोट

3. **सम्मोहन** (hypnotism) – इसके द्वारा ही उपचार करना अधिक उपयुक्त रहता है। परन्तु इस संबंध में रोगी में लक्षणों के फिर से उभरने की सम्भावना समाप्त नहीं हो जाती।

4. **नैदानिक साक्षात्कार** (clinical interview)– इसमें मनोविश्लेषण नैदानिक साक्षात्कार फिर मनोविश्लेषण के माध्यम से समझने की आवश्यकता होती है। इसके आधार पर रोगी को अपने रोग के लक्षणों के कारणों को समझने तथा उनको दूर करने के लिए अपनी जीवन-शैली को यथासम्भव बदलने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता होती है।

4.29 मनोविच्छेदी विकृति का अर्थ, परिभाषा एवं लक्षण

DSM–IV के अनुसार मनोविच्छेदी विकृति', ''मनोस्नायुविकृति' की तीसरी श्रेणी में शामिल की गई है।

'मनोविच्छेदी विकृति' एक मानसिक रोग है जिसमें व्यक्ति (personality) का सामान्य समाकलन (normal integration) अकस्मात तथा अस्थायी रूप में विघटित (disintegrated) हो जाता है। रेबर तथा रेबर (Reber and Reber, 2001) ने इस मानसिक रोग को परिभाषित करते हुए कहा है कि- ''मनोविच्छेदी विकृति ऐसी मनोवैज्ञानिक विकृतियों के लिए एक आवरण शब्द है, जिनकी विशेषताएँ है चेतना के सामान्य समाकिलत कार्यों, स्व-प्रत्यक्षीकरण तथा संवेदी/गति व्यवहार में विघटन, जैसे व्यक्तिविलोप, बहव्यक्ति, स्मृतिलोप तथा आत्मिवस्मृति।''

मनोविच्छेदी का सबसे प्रमुख लक्षण विच्छेदन (dissociation) है। विच्छेदन की अनुभूति में अन्य बातों के अलावा निम्नांकित पाँच तरह की अनुभूतियाँ अधिक होती है–

(i) **स्मृतिलोप** (amnesia) – स्मृतिलोप में रोगी अपने पूर्व अनुभूतियों का आंशिक या पूर्णरूपेण प्रत्याहान (recall) करने में असमर्थ रहता है।

(ii) **व्यक्तिलोप** (depersolization) – इसमें रोगी अपने आप से असंबद्ध महसूस करता है।

(iii) **वास्तविकता लोप** (derealization) – इसमें रोगी को पूरा वातावरण ही अवास्तविक एवं अविश्वसनीय लगता है।

(iv) **पहचान संभ्रान्ति** (identity confusion) – इसमें रोगी को अपने बारे में यह संभ्रान्ति उत्पन्न होती है कि वह कौन है, क्या है, आदि।

(v) **पहचान बदलाव** (identity alteration) – इसमें रोगी कभी-कभी कुछ आश्चर्य उत्पन्न करने वाले कौशलों से अपने को लैश पाता है जैसे उसे आश्चर्य होता है कि उसे पता भी नहीं रहता है कि उसमें ऐसा कौशल है।

मनोविच्छेदी विकृति के कारण

अध्ययनों से पता चलता है कि मनोविच्छेदी विकृति अथवा मनोच्छेदी उन्माद के निम्नलिखित कारण है –

(1) **बाल्यावस्था के दुर्व्यवहार** (childhood abuse) – ब्लिस (Bliss, 1980) के अनुसार मनोविच्छेदी विकृति की पहचान विकृति (dissociation identity disorder) की स्थापना बचपन में अत्यधिक विक्षुब्ध घटनाओं (disturbed events) का सामना करने हेतु आत्म- सम्मोहन (self-hypnosis) द्वारा हो जाती है।

नोट

(2) **मातृप्रेम अवस्था की लैंगिक इच्छाओं का दमन** (Repression of unacceptable infantile sexual wishes of oedipal stage) – मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के अनुसार मनोविच्छेदी विकृति या मनोविच्छेदी उन्माद का मुख्य कारण मातृप्रेम अवस्था की अस्वीकृति लैंगिक इच्छाओं का दमन है।

(3) **मन्द बुद्धि** (Low intelligence) – हॉलिंगवर्थ (Hollingworth) का कहना है कि कम बुद्धिमान व्यक्ति ही इस रोग का शिकार होता है। अपने इस कथन की पुष्टि उसने सैनिक रोगियों के अध्ययन के आधार पर की है। उसने अपने अध्ययन में देखा कि ऊँचे पद वाले रोगी इस रोग से पीड़ित नहीं थे।

(4) **त्रुटिपूर्ण अनुशासन** (Defective discipline) – कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि इस रोग का कारण त्रुटिपूर्ण अनुशासन (defective discipline) है। स्वस्थ तथा समुचित अनुशासन में रहने से बच्चों में आत्म-नियंत्रण की योग्यता का विकास होता है। परन्तु अत्यधिक कठोर या अत्यधिक शिथल अनुशासन से आत्म-नियंत्रण की योग्यता का समुचित विकास नहीं हो पाता है।

(5) **व्यक्ति प्रकार** (Type of personality) – कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि इस विकृति का रोग अधिकतर बहिर्मुखी (extrovert) व्यक्ति को होता है। अध्ययनों से पता चलता है कि अन्तर्मुखी की अपेक्षा बहिर्मुखी व्यक्ति में मनोविच्छेदी विकृति अथवा मनोविच्छेदी उन्माद के लक्षणों के विकसित होने की संभावना अधिक होती है।

(6) **मानसिक उपाय** (Mental trauma) – मनोविच्छेदी विकृति का एक कारण मानसिक आघात या धक्का है। कुछ लोग अपने में ऐसी संवेगात्मक परिस्थिति में फँस जाते है कि उनसे निकलना मुश्किल हो जाता है।

मनोविच्छेदी विकृति के उपचार

मनोविच्छेदी विकृति अथवा मनोविच्छेदी उन्माद के रोगी के उपचार के लिए निम्नलिखित चिकित्सा विधियों का उपयोग किया जा सकता है –

1. **मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा** (Psychoanalytic therapy) – इस चिकित्सा विधि को सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) ने विकसित किया। इसमें रोगी के ईगो को पुनर्संरचित (restructured) करके इतना सबल बना दिया जाता है कि वह अचेतन को नियन्त्रित करने में सक्षम हो सक।
2. **सम्मोहन चिकित्सा** (Hypno therapy) – इस मानसिक रोग से पीड़ित रोगी के उपचार के लिए सम्मोहन का उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग सामान्यत: आदेश चिकित्सा (Directive therapy) में करना अधिक प्रभावी होता है।
3. **संज्ञानात्मक चिकित्सा** (Cognitive therapy) – संज्ञानात्मक चिकित्सा से भी मनोविच्छेदी विकृति के उपचार में स्नानिमलती है। इस चिकित्सा से रोगी के विवेक को जगाने का प्रयास किया जाता है।

अत: उपर्युक्त चिकित्सा विधियों का उपयोग मनोविच्छेदी विकृति के रोगी के उपचार के लिए आवश्यकता अनुसार किया जा सकता है।

4.30 मनोविकृति का अर्थ एवं परिभाषा

मनोविकृति; एक गंभीर मानसिक विकृति है, जिसके अन्तर्गत कई मानसिक विकृतियों की गणना की जाती है जैसे - व्यामोह विकृति; कमसनेपवदसं कपेवतकमत, मनोदशा विकृति; मनोविदलता आदि। इसी कारण मनीविकृति; को मनोविकृति विकृतियाँ कहते है।

सरासन तथा सरासन; 2003 के अनुसार - ''मनोविकृति वह विकृति है जिसमें व्यामोह, विभ्रम, असंगति, पुनरावृत्त विचार विचलन, विचार संगति की स्पष्ट कमी, स्पष्ट अतार्किकता तथा गंभीर रूप से विसंगिठत अथवा केटाटोनिक व्यवहार देखे जाते हैं।''

नोट

मनोविकृति एक प्रकार की असामान्यता है जिसका स्वरूप तीव्र एवं गम्भीर होता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति के व्यक्तित्व का विघटन हो जाता है, यथार्थ से उसका संबंध टूट जाता है, उसका व्यवहार अशोभनीय एवं विचित्र प्रतीत होता है, उसमें आत्मसंयम एवं सामाजिक सन्तुलन का अभाव पाया जाता है, उसे अपने कार्य की अच्छाई-बुराई का ज्ञान नहीं रहता है, इनके व्यवहार में विभ्रम और व्यामोह; की अधिकता पाई जाती है, तथा ऐसे रोगी चिकित्सक की बात को मानने के लिए तैयार नहीं होते है और आत्महत्या के लिए तत्पर रहते है। ऐसे रोगियों के इदम; अहम; तथा पराअहम; का सन्तुलन बिगड़ जाता है; बोलचाल की भाषा में ऐसे रोगियों को पागल; की संज्ञा दी जाती है। यह समाज के अन्य सदस्यों से उपयुक्त संबंध नहीं स्थापित कर पाते है। इसीलिए इस विकृति का स्वरूप मनस्ताप; की तुलना में अधिक गम्भीर होता है।

''मनोविक्षिप्ति गंभीर व्यक्ति विकार है जिसमें रोगी का संबंध वास्तविकता से टूट जाता है तथा जिसका चरित्र-चित्रण व्यामोह और विभ्रम से होता है। सामान्यतया इनको अस्पताल ले जाना पड़ता है।''

''मनोविक्षिप्ति के लक्षणों का जन्म या तो मनोवैज्ञानिक बालाघातपूर्ण स्थिति या आंगिक मस्तिष्क व्याधि या इन दोनों ही स्थितियों के कारण होता है। ''

4.31 मनोविकृति का वर्गीकरण

सामान्यतया मनोविकृति या मनोविक्षिप्ति को इस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है –

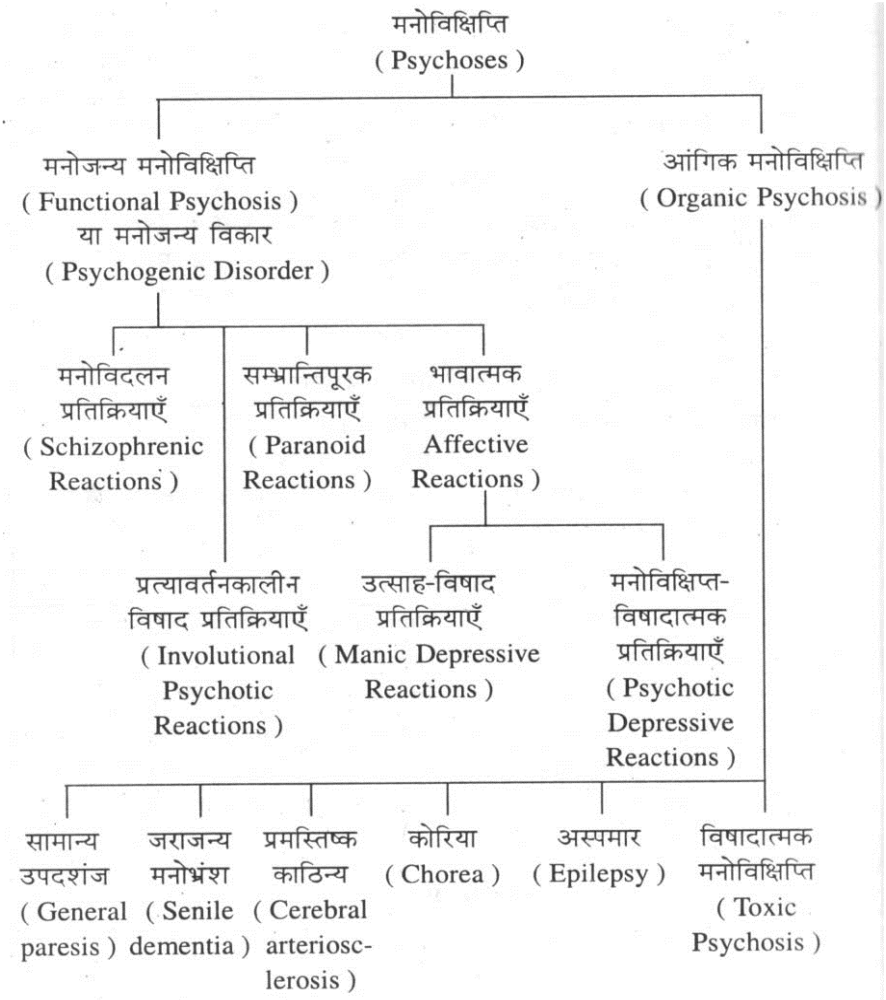

नोट

4.32 मनोविकृति के सामान्य लक्षण

मनोविकृति के सामान्य लक्षण निम्नलिखित है –

1. व्यवहार संबंधी लक्षण मनोविकृति से ग्रस्त रोगियों के व्यवहार का अध्ययन करने से पता चलता है कि उनका व्यवहार बढ़ेगा; विचित्र; झुंझलाहटपूर्ण; तथा अपने एवं दूसरे के लिए भी हानिकारक होते है।
2. **संवेगात्मक तथा सामाजिक विकृति** – मनोविकृति के रोगियों में संवेगात्मक विकृति तथा विकृत सामाजिक संबंध के लक्षण पाए जाते है। संवेगात्मक विकृति के अन्तर्गत आशंका, उदासीनता या विषाद की स्थिति; असंगति; सदेह, चिड़चिड़ापन, आत्महत्या की प्रवृत्त भाव-शून्यता; तथा उलास; के लक्षण मुख्य रूप से पाए जाते है। इन्हीं संवेगात्मक विकृतियों के कारण रोग में विवंसकारी क्रियाएँ उत्पन्न होती है तथा रोगी का चरित्र आचारहीन हो जाता है।
3. **व्यामोह** – इस रोग से ग्रस्त रोगी को यह गलत विश्वास हो जाता है कि दूसरे लोग सदा उसी के बारे में बातें करते रहते है या उसके संबंध में तरह-तरह के झूठे प्रचार का उसे बदनाम कर रहे है। वह सदा व्यक्तिगत महत्त्व के कारण बैचेन रहता है। फलत: दो या दो से अधिक व्यक्तियों बाते करते देखकर वह समझ लेता है कि वे उसी बारे में बातें कर रहे है।
4. **स्मृति दोष** – मनोविकृति से पीड़ित रोगियों की स्मृति दोषपूर्ण हो जाती है। रोगी को कुछ भी याद नहीं रहता है या जो कुछ वह याद करता है उसमें सम्बद्धता नहीं होती है।
5. वास्तविकता से संबंध का विच्छेद – इसके कारण उसे रात-दिन, उपस्थिति-अनपुस्थिति आदि बातों का सही ज्ञान नहीं रहता है।

4.33 मनोविकृति के मनोजन्य विकारों के प्रकार

प्रस्तुत अध्याय में हम मनोविकृति के मनोजन्य विकारों को विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे - मनोविदलता विकृति (Schizophrenia),

स्थिर व्यामोही मनोविकृति (Paranoid disorder)

भावात्मक मनोविकृति (Affective disorder)।

मनोविदलता का अर्थ एवं परिभाषा

मनोविदलता वास्तव में मनोविकृति का एक प्रकार है। इसका शब्दिक अर्थ है व्यक्ति विभाजन। इस व्यक्ति विभाजन के कारण रोग में गंभीर संज्ञानात्मक, संवेगात्मक तथा क्रियात्मक विकृतियाँ विकसित हो जाती है, जिससे रोगी का संबंध वास्तविकता; से टूट जाता है।

कैमरान के शब्दों में, ''मनोविदलता संबंधी प्रतिक्रियायें वे प्रतिगमनात्मक प्रयास है जिनमें व्यक्ति तनाव तथा चिन्ता से पलायन करता है। यह पलायन वह वास्तविक अन्तवैयक्तिक वस्तु संबंधों के स्थान पर व्यामोह और विभ्रम के निर्माण द्वारा करता है।''

कोलमैन के शब्दों मे, ''मनोविदलता वह विवरणात्मक पद है जिसमें मनोविक्षिप्तता से संबंधित कई विकारों का बोघ होता है इसमें बड़े पैमाने पर वास्तविकता की तोड़ मरोड़ दिखाई देती है। रोगी, सामाजिक अन्त:क्रियाओं से पलायन करता है। व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण विचार व संवेग अपूर्ण और विघटित रूप से होते है।''

मनोविदलता के लक्षण

मनोविदलता के लक्षण निम्न प्रकार है –

(1) **चिन्ता एवं आतंक** – मनोविदलता से पीड़ित व्यक्ति अक्सर चिन्तित व आतंकित रहता है। इस प्रकार के रोग के व्यक्ति का केन्द्र बिन्दु विसरित, अव्यवस्थित रहता है जिससे उसकी विचार प्रक्रिया अवरूद्ध हो जाती है और भावनाओं में सामंजस्य नहीं रहता।

(2) **व्यामोह** – मनोविदलता के रोगी में व्यामोह भी देखने को मिलते है जिसमें रोगी झूठे विश्वासों को बिना प्रमाण के ही सत्य मानने लगते हैं।

(3) **भाषा में विकृति** – मनौविदलता के रोगी प्राय: बहुत कम बोलते हैं यदि उनसे बार-बार कुछ पूछा जाये या उन्हें बुलाया जाये तो भी वे नहीं बोलते। इनकी बातें प्राय: असंगत व अस्पष्ट होती है। लेकिन कुछ ऐसे रोगी भी देखने को मिलते हैं जो सामान्य से अधिक बोलते हैं।

(4) **स्वलीनता** – मनोविदलता की स्थिति में व्यक्ति का स्वयं कल्पनाओं एवं संवेग द्वारा व्यवहार का निर्धारण होता है। अत: स्वलीनता भी एक लक्षण है जो मनोविदलता के रोगी में पाया जाता है।

(5) **असक्षमता** – मनोविदलता की स्थिति में व्यक्ति के जीवन की यथार्थता से संबंध विच्छेद हो जाता है तथा व्यक्ति सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने में असक्षम महसूस करता है।

(6) **संवेगात्मक प्रकृति** – मनोविदलता की स्थिति में संवेगात्मक दृष्टि से रोगी का व्यवहार छिन्न-भिन्न हो जाता है। अक्सर वह गम्भीर बात पर हँसने लगता है तथा जिस बात पर हँसना चाहिये उस बात पर वह गम्भीर हो जाता है। कई बार रोगी इतनी भयानक हँसी हँसने लगता है कि देखने वाला उससे डरने लगता है।

(7) **वास्तविकता से पलायन** – मनोविदलता की स्थिति में व्यक्ति अपने वातावरण एवं संबंधित व्यक्तियों में रुचि लेना प्राय: कम कर देता है। व्यक्ति अपने स्वयं तक ही सीमित रहने लगता है जिसमें वह अपनी कल्पनाओं, संवेगों व इच्छाओं में ही खोया रहता है। जैसे-जैसे व्यक्ति मनोविदलता से ग्रस्त होता जाता है वैसे-वैसे उसका वास्तविकता से पलायन होता जाता है।

मनोविदलता के कारण

यहां हम मनोविदलता के मुख्य कारणों को अग्रलिखित प्रकार से समझ सकते है -

(1) **सामाजिक** – सांकृतिक कारण – मनोविदलता के कारणों के संबंध में किये गये अध्ययनों से यह बात भी कुछ सीमा तक सिद्ध हुई है कि जिन लोगों का सामाजिक-आर्थिक स्तर निम्न होता है उनमें मनोविदलता के अधिक लक्षण पाये जाते है तथा इसके साथ यह भी प्रमाणित हुआ है कि जो व्यक्ति बड़े नगरों में रहते हैं वे गांवों और कस्बों के रहने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा मनोविदलता के अधिक शिकार होते हैं। इसका मुख्य कारण मनोवैज्ञानिकों के अनुसार नगरीय समाज में होने वाले सामाजिक परिवर्तन हैं। इसी प्रकार के कुछ अन्य भी सामाजिक - आर्थिक कारण मनोविदलता के लिए उत्तरदायी पाये गये है जैसे - गरीबी, भुखमरी, असुरक्षा की भावना, गन्दी वस्तियों की समस्यायें, सामाजिक विघटन आदि। सांस्कृतिक विभिन्नताओं को भी मनोविदलता का कारण माना गया है।

(2) **जैविक कारण** – ये निम्न प्रकार के होते है –

(i) **आनुवांशिकता** – आनुवांशिकता भी मनोविदलता होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण माना गया है। इस संबंध में मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये विभिन्न अध्ययनों से जो निषकर्ष सामने आये

नोट

नोट

हैं उनसे यह स्पष्ट होता है कि यदि माता-पिता या दोनों में से कोई एक भी मनोविदलता का शिकार है तो उनकी सन्तान में भी मनोविदलता के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

(ii) **केन्द्रीय स्नायुमण्डल** – ऐसा भी माना जाता है कि जब व्यक्ति को केन्द्रीय स्नायुमण्डल में दोष आ जाते है तो व्यक्ति मनोविदलता से ग्रस्त हो सकता है। अत: केन्द्रीय स्नायुमण्डल का दोषपूर्ण होना भी एक जैविक कारण माना गया है।

(iii) **व्यक्ति की शारीरिक बनावट** – व्यक्ति की शारीरिक बनावट को भी मनोवैज्ञानिकों द्वारा मनोविदलता का जैविक कारण माना गया है। इस संबंध में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक शेल्डन तथा क्रैश्मर ने अपने विचार स्पष्ट किये है, उनके अनुसार जो व्यक्ति एस्थेनिक प्रकार की शारीरिक वाला होता है वह मनोविदलता का शिकार हो सकता है।

(iv) **अन्तःस्रावी ग्रन्थि** – कुछ मनोवैज्ञानिक द्वारा व्यक्ति की अन्त:स्रावी ग्रन्थि द्वारा स्रावित रस की सामान्य से अधिक मात्रा को भी मनोविदलता का कारण माना गया है। इसी प्रकार से व्यक्ति के दिल का छोटा होना भी मनोविदलता के लिए जिम्मेदार माना गया है।

(3) **मनोवैज्ञानिक कारण** – निम्न मनोवैज्ञानिक कारणों को मनोविदलता के लिए उत्तरदायी माना गया है -

(i) **अन्तर्द्वन्द्व तथा नैराश्य** – मनोवैज्ञानिकों की इस संबंध में यह धारणा है कि व्यक्ति की अन्तर्द्वन्द्व तथा नैराश्य के प्रति दोषपूर्ण क्रियाओं के कारण मनोविदलता के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

(ii) **पारिवारिक स्थितियां** – परिवार में अतिसंरक्षण, अति तिरस्कार, कठोर अनुशासन, अत्यधिक उच्च नैतिक आदर्श आदि स्थितियां भी मनोविदलता के लिए कई बार उत्तरदायी बन जाती है इसके साथ ही परिवार के सदस्यों के पारम्परिक संबंध, माता-पिता का अनुचित प्रभाव भी बालकों में मनोविदलता के लक्षण उत्पन्न कर सकता है।

(iii) **यौन इच्छाओं का प्रतिगमन** – फ्रायड का मानना है कि अचेतन में छिपी समलैंगिकता के कारण व्यक्ति प्रतिगमन के माध्यम से अचेतन की अमान्य इच्छाओं से रक्षा करता है जिससे उसमें मनोविदलता के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

मनोविदलता का उपचार

रोगी के स्वरूप के अनुकूल निम्नलिखित चिकित्सा विधियों में किसी एक अथवा एक से अधिक विधियों का उपयोग किया जा सकता है –

1. **जैविक उपचार** – इस उपचार के अन्तर्गत आघात चिकित्सा मनोशल्यचिकित्सा; तथा औषध चिकित्सा का उपयोग किया जाता है। आरंभ में मनोविदलता के रोगी के उपचार के लिए आघात चिकित्सा का उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाता था। रोगी को विद्युत आघात देकर उसके लक्षणों को दूर करने का प्रयास किया जाता था। आगे चलकर इसके साथ-साथ इन्सुलिन चिकित्सा के उपयोग पर सकेल; नामक नैदानिक मनोवैज्ञानिक ने बल दिया। लेकिन यह चिकित्सा विधि अधिक सफल प्रमाणित नहीं हो सकी। जैविक उपचार के अन्तर्गत औषध चिकित्सा अधिक सफल प्रमाणित हुई। मनोविकृति विरोधी औषधियों; के उपयोग से मनोविदलता के रोग को लाभ होता है। विशेष रूप से क्लोरप्रोमाइजिन; का उपयोग मनोविदलता के उपचार में अधिक प्रभावी प्रमाणित हुआ। वर्तमान समय में अन्य औषधियों जैसे – बुटाइरोफेनोनेस तथा थीरौकसानथेन्स का उपयोग भी मनोविदलता के रोगियों के उपचार में सफलतापूर्वक किया जाता है।

नोट

2. **संज्ञानात्मक कौशल शिक्षण** – चिरकालिक मनोविदलता से पीड़ित व्यक्तियों के उपचार के लिए संज्ञानात्मक कौशल प्रतिक्षण लाभप्रद सिद्ध होता है। कारण, ऐसे रोगियों में सामाजिक कौशल तथा सामाजिक प्रत्यक्षीकरण की कमी पायी जाती है। संज्ञानात्मक कौशल शिक्षण से इस कमी को दूर किया जा सकता है; परिवार चिकित्सा - मनोविदलता के रोगी के उपचार में अनुकूल पारिवारिक कार्यक्रम के रूप में पारिवारिक चिकित्सा लाभप्रद सिद्ध होती है। मनोविदलता के रोगी के प्रति नकारात्मक भावों तथा हानिप्रद अभिव्यक्त संवेग; को दूर करने में पारिवारिक कार्यक्रम लाभदायक होता है। इसमें रोग के दोबारा होने तथा रोगी को दोबारा अस्पताल में भरती होने से बचाया जा सकता है।
3. **सामुदायिक चिकित्सा**– विशेष रूप से ऐसे रोगियों के लिए समुदाय-सहारा आवश्यक है, जिनके पारिवारिक सदस्य नहीं होते है। अस्पताल से निकलने के बाद ऐसे रोगियों के लिए समूह गृह दिवालोक सावधानी सुविधाएँ आदि का प्रबन्ध आवश्यक है।
4. **सम्मिलित उपचार** – मनोविदलता के रोगी के सफल उपचार के लिए औषध के साथ-साथ कौशल शिक्षण, परिवार कार्यक्रम तथा समुदाय सहारा का सम्मिलित उपयोग आवश्यक है।

पैरोनोयया या स्थिर व्यामोह का अर्थ एवं परिभाषा

स्थिर व्यामोह मनोविकृत का एक मुख्य प्रकार है, जिसको स्थिर व्यामोही विकृति भी कहते है। यह एक ऐसा मानसिक रोग है जिसमें नाना प्रकार के व्यामोह; पाए जाते है, जो अपेक्षाकृत स्थायी स्वरूप के होते है।

चैपिलन; 1975 के अनुसार – "स्थिर व्यामोह एक मनोविकृति है, जिसकी विशेषता है उत्पीड़न अथवा श्रेष्ठता के अत्यन्त क्रमबद्ध व्यामोह, जिनमें कोई बिगाड़ नहीं होता है।"

रेबर तथा रेबर 2001ने इस मानसिक रोग के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "व्यामोही विकृति एक व्यापक शब्द है, जिससे ऐसी मानसिक विकृति का बोध होता है जिसमें किसी तरह के व्यामोह का अर्थपूर्ण लक्षण होता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि स्थिर व्यामोह; अथवा व्यामोही विकृति; एक मनोविकृति है, जिसका मुख्य लक्षण व्यामोह है।

पैरानोयया मनोविक्षिप्तता का ही एक प्रकार है जो मूलत: ग्रीक के पैरा दो शब्दों से मिलकर बना है। पेरा से तात्पर्य विकृत, दोषपूर्ण या गलत से है तथा नोयस से तात्पर्य चिन्तन या मन से है। प्राचीन समय में व्यामोह के अर्थ में पैरानोयया शब्द का इस्तेमाल किया जाता था लेकिन 18वीं शताब्दी में पैरानोयया को एक मानसिक विकार के रूप में जाना जाने लगा जिसमें कुछ व्यामोह व्यवस्थित रूप से रहते है। पैरानोयया के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक द्वारा इसे शब्दों में बांधने का प्रयास किया गया है।

पैरानोयया या स्थिर व्यामोही के लक्षण

स्थिर-व्यामोही विकृति; के निम्नलिखित नैदानिक लक्षण है –

(i) इस विकृति का सर्वप्रमुख लक्षण यही है कि इसमें एक या एक से अधिक सामान्य व्यामोह के लक्षण पाये जाते है जिनकी अवधि कम-से-कम एक माह अवश्य होती है।

(ii) मनोविदलता के अन्य लक्षणों के अभाव में स्थिर-व्यामोही विकृति के पाये जाने की सम्भावना रहती है परन्तु उनका निदान सम्भव नहीं हो पाता है।

(iii) यदि श्रवण अथवा दृष्टिपरक विभ्रम पाया जाता है परन्तु वह प्रभावी नहीं है, तो त्वचीय अथवा गंधपरक विभ्रम उपस्थित एवं प्रभावी हो सकते है, यदि वे व्यामोहपरक विषय वस्तु से संबंधित है।

(iv) इसमें मनोसामाजिक प्रकार्यता अधिक दुर्बल नहीं होते है तथा व्यवहार न तो अनोखा प्रतीत है और न अनुपयुक्त ही।

(v) यदि व्यामोह के साथ ही मनोदशा संबंधी घटित होती है तो मनोदशा घटनाओं की अवधि स्थिर व्यामोह विकृति की कूल अवधि की तुलना में अधिक कम होती है।

नोट

(vi) यह व्यामोह विकृति किसी पदाथ (कोकीन) अथवा चिकित्सकीय दशा प्रत्यक्ष शारीरिक प्रभावों के कारण नहीं उत्पन्न होती है।

पैरानोययया या स्थिर व्यमोही के कारण

पैरानोययया की स्थिति में व्यक्ति मुख्य रूप से मनोवैज्ञानिक कारणों से ही पहुँचता है लेकिन कुछ जैविक कारण भी इसके लिए उत्तरदायी है अत: पैरानोययया के कारणों को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं –

1. **अहम संगठन का रूप विकृत होना** – व्यक्ति में पैरानोययया के लक्षण अहम संगठन के विकृत रूप होने के कारण उत्पन्न होते है। जब एक बालक जीवन की विषम परिस्थतियों के कारण निरन्तर मानसिक तनाव व दबाव में रहने लगता है तो उसमें घृणा की भावना जन्म लेने लगती है तथा बालक के विश्वास में कमी होने लगती है। तब बालक किसी भी व्यक्ति पर विश्वास करने में कमी होने लगती है। तब बालक किसी भी व्यक्ति पर विश्वास नहीं कर पाता जिससे उसके मन में विचार आते रहते है कि अन्य लोग हानि पहुँचा सकते है। परिणामस्वरूप व्यक्ति का व्यक्ति रूग्ण बन जाता है तथा आगे चलकर उसमें पैरानोययया के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं।
2. **विकृत मानसिक स्थिति** – कई बार ऐसा होता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्विरोध विकास नहीं हो पाता परिणामस्वरूप उसे सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के दुर्व्यवहार के कारण उत्पन्न विरोध व क्रोध की भावना को दबाना पड़ता है जिससे उसके अहम में विकृति आ जाती है व्यक्ति विकृत मानसिक स्थिति में पहुँच जाता है जिससे वह तनावग्रस्त रहने लगता है। व्यक्ति जब तनाव से बचने के लिए विभिन्न व्यामोही का सहारा लेता है तो उसमें पैरानोययया के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।
3. **आत्म आसक्ति की प्रवृति** – किसी बालक में आत्म आसक्ति की प्रवृति तब उत्पन्न होती है जब उसका पालन-पोषण उचित ढंग से नहीं हो पाता। इससे बालक अहम केन्द्रित हो जाता है अत: इस कारण भी बालक में पैरानोययया के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं।
4. **व्यक्ति की अक्षमता** – पैरानोययया होने का एक कारण व्यक्ति की अक्षमता भी होती है। ऐसा तब होता है जब व्यक्ति अपने बचपन में ही यथार्थता एवं कठिनाइयों का सामना करने की आदत नहीं अपनाता। इससे व्यक्ति को व्यावहारिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।
5. **कुंठा की भावना** – कई बार किन्हीं कारणों से व्यक्ति में कुंठा उत्पन्न हो जाती है जो आगे चलकर पैरानोययया का कारण बन सकती है।
6. **अतिरंजित संवेग** – अतिरंजित संवेग के कारण भी व्यक्ति में पैरानोययया के लक्षण उत्पन्न होने की संभावना रहती है। मनोवैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि व्यक्ति का मस्तिष्क अतिरंजित संवेगों के कारण असन्तुलित हो जाता है जिससे व्यक्ति में पैरानोययया के लक्षण उत्पन्न हो सकते है।
7. **यौन असमायोजन** – इस कारण के संबंध में मनोवैज्ञानिक फ्रायड का मानना है कि कई बार व्यक्ति में तीव्र समलिंगीय यौन इच्छा उत्पन्न होती है जब यह इच्छा व्यक्ति पूर्ण नहीं कर पाता तो प्रतिकरण एवं आरोपण के माध्यम से इस प्रकार की अमान्य इच्छाओं से अपने अहम् की रक्षा करने का प्रयास करता है।

8. **जैविक कारकों का प्रभाव** – कुछ मनोवैज्ञानिकों की यह मान्यता है कि व्यक्ति में पैरानोयया के लक्षण वंशानुक्रम के कारण भी उत्पन्न होते है जबकि इस मत से पर्याप्त पुष्टि नहीं हो पाई है।
9. **सामाजिक-आर्थिक स्तर** – जिन व्यक्तियों का सामाजिक तथा आर्थिक स्तर उच्च होता है उनमें पैरानोयया होने की अधिक संभावना पाई जाती है। मनोवैज्ञानिक द्वारा पैरानोयया के सामाजिक-आर्थिक स्तर (कारण) पर विस्तृत जानकारी नहीं दी गई है।

नोट

पैरानोयया या स्थिर व्यामोही का उपचार

स्थिर व्यामोह (व्यामोही विकृति) के रोगी के उपचार के लिए निम्नलिखित चिकित्सा विधियों का उपयोग किया जा सकता है –

1. **मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा** – यह चिकित्सा इस विश्वास पर आधारित है कि रोगी के लक्षणों के विकसित होने का मुख्य कारण ईगो की कमजोरी है। अत: रोगी के ईगो को फिर से संरचित करके उसको इस हद तक प्रबलित किया जाए कि वह अचेतन इच्छाओं पर फिर से पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर सके। लेकिन, निपूर्ण तथा प्रशिक्षित चिकित्सक ही इसमें सक्षम हो सकता है। इसीलिए, व्यावहारिक रूप से यह एक कठिन चिकित्सा विधि है।
2. **सम्मोहन-विश्लेषण** – इस विधि में रोगी की अचेतन इच्छाओं का विश्लेषण समोहित अवस्था में किया जाता है और इसी अवस्था में उसके ईगो को सबल बनाने का प्रयास किया जाता है। ईगो के सबल हो जाने पर रोगी के लक्षण दूर हो जाते है। लेकिन, यह विधि भी व्यावहारिक रूप से कठिन है।
3. **व्यवहार चिकित्सा** – इस मानसिक रोगी के उपचार के लिए एक प्रभावी विधि व्यवहार चिकित्सा है। इस संदर्भ में विमुखता चिकित्सा के उपयोग से रोगी को अधिक लाभ होता है।
4. **समूह चिकित्सा** – स्थिर व्यामोह के रोगी को समूह चिकित्सा से भी लाभ होता है। इस चिकित्सा से रोगी को स्व-अभिव्यक्ति; स्वीकृति एवं समर्थन दूसरे के निरीक्षण तथा दूसरे की समस्याओं से अपनी समस्या को साधारण समझने के अवसर मिलते है। इससे रोगी के लक्षणों के विलोपन में मदद मिलती है।

   अत: स्थिर व्यामोह या व्यामोही विकृति के रोगी के उपचार के लिए उपर्युक्त चिकित्सा प्रविधियों का उपयोग आवश्यकता के अनुसार किया जा सकता है। परिवार चिकित्सा तथा समुदाय-चिकित्सा का उपयोग भी लाभप्रद होता है।

भावात्मक मनोविकृतियाँ

जिसका संबंध रोगी के भावात्मक पक्ष (Affective side) से होता है। विकृति भावात्मक पक्ष मुख्य रूप से संवेगात्मक अव्यवस्थाओं से संबंधित होता है। दूसरे शब्दों में उत्साह- विषाद मनोविकृति संवेगात्मक अव्यवस्थाओं का परिणाम है। इस प्रकार के रोग में रोगी में दो विरोधाभासी भावना-तरंग उत्पन्न होती हैं। उन्माद या उत्साह की स्थिति में रोगी अत्यन्त क्रियाशील, प्रसन्न तथा बहिर्मुखी हो जाता है और विषाद की स्थिति में अत्यन्त दुखी, उदास तथा अन्तर्मुखी हो जाता है। यह रोग तीन अवस्थाओं में अपना प्रकाशन करता है - 1. उत्साह मनोविकृति 2. विषाद मनोविकृति 3. मिश्रित मनोविकृति।

I. उत्साह-मनोविकृति (Manic disorder) – उत्साह-अवसाद मनोविकृति दो विरोधाभासी संवेगात्मक अव्यवस्थाओं का परिणाम है। उत्साह को तीव्रता की अव्यवस्थाओं के अनुसार तीन भागों में विभक्त

नोट

किया जा सकता है– (1) अल्पोत्साह (Hypomania), (2) तीव्र उत्साह (Acutemania) (3) अतितीव्र उत्साह (Delirious mania)।

(1) **अल्पोत्साह** (Hypomania) की स्थिति में रोगी में उत्साह की मात्रा बहुत अधिक नहीं होती है। इस स्थिति में वह प्रत्येक बात को मजाक के रूप में लेकर विषयों को बार-बार बदलता है, वह बातचीत के समय दूसरों पर अधिकार जमाना चाहता है, उसकी जो आलोचना करता है उसे वह बेवकूफ समझता है।

(2) **तीव्र उत्साह** (Acutemania की स्थिति में उत्साह की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है। वह जोर-जोर से बोलने लगता है, नाचने, गाने तथा दौड़ने लगता है, वह क्षण भर भी शान्त नहीं रह पाता, वह विभ्रम तथा भ्रान्ति का शिकार बन जाता है, विचार व शारीरिक क्रियाओं में तीव्रता आ जाती है तथा वह अपने को ही सर्वेसर्वा समझने लगता है। वह अपने बौद्धिक तथा नैतिक कार्यों पर नियन्त्रण नहीं रख पाता है तथा उसकी विचार अव्यवस्थित हो जाती है।

(3) **अति तीव्र उत्साह** (Hyper acutemania or Delirious mania) – उत्साह की तीव्रतम स्थिति होती है। इस स्थिति में आकर रोगी पूरी तरह उत्तेजित तथा विभ्रमित हो जाता है। उसकी मनोगामकता अत्यधिक बढ़ जाती है, उसके व्यवहार इतने असंगत हो जाते है कि लोग उसे प्रत्यक्ष रूप से 'पागल' कहने लगते हैं। उसकी उत्तेजना इतनी बढ़ जाती है कि वह आक्रामक तथा विध्वंसात्मक कार्य करने लगता है। तोड़-फोड़ तथा मारपीट कर वह पास के लोगों को हानि पहुँचाने लगता है।

II. **विषाद या अवसाद-मनोविकृतियाँ** (Depressive Disorder) – मनो-अवसाद की स्थिति में मानसिक रोगी अत्यन्त घोर अवसाद से ग्रसित हो जाते है। इस रोग में रोगी अत्यन्त उदास, दुखी तथा एकान्तप्रिय हो जाते हैं। उत्साह-अवस्थाओं के समान ही अवसाद की अवस्थाएँ भी तीन स्तरों की पाई जाती है– (1) सरल विषाद (Simple Depression), (2) तीव्र विषाद (Actute Depression) तथा (3) अतितीव्र विषाद (Stuporous Depression)।

(1) **सरल विषाद** (Simple Depression) की स्थिति में रोगी की मनोगामक क्रियाओं में उल्लेखनीय मात्रा में कमी आ जाती है। रोगी उदास तथा दुखी रहता है। उसका किसी भी कार्य में मन नहीं लगता है। वह बहुत कम बोलता है तथा अपने चारों और निराशा ही निराशा उसे नजर आती है।

(2) **तीव्र विषाद** (Actute Depression) की स्थिति में रोगी की मनोगामक क्रियाएँ और भी अधिक कम हो जाती है। वह बहुत अधिक दुखी, उदास तथा आत्मकेन्द्रित हो जाता है। वह किसी से मिलना-जुलना पसंद नहीं करता है। वह प्राय: सोचा करता है कि उसने कोई भारी पाप किया है जिसके कारण सम्पूर्ण विश्व किसी घोर आपत्ति में जाने वाला है।

(3) **अतितीव्र विषाद** (Stuporous Depression) अवसाद या उदासीनता की तीव्रतम अवस्था है। इस अवस्था में रोगी की आत्म-ग्लानि अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। वह अत्यन्त दुखी तथा पश्चाताप की भावना से ग्रसित रहता है। फलत: प्राय: आत्महत्या की बात सोचता है। उसमें आत्म से संबंधित विभ्रम तथा भ्रान्ति विकसित हो जाते है। वह दु:ख तथा विभ्रम में इतना तलीन हो जाता है कि उसे अपने निकट के वातावरण का भी बोध नहीं रहता है तथा वह नाम, स्थान तथा घटनाओं को पूरी तरह भूल जाता है।

नोट

III. **मिश्रित उत्साह-विषाद** (Mixed Manic Deprssion) – मिश्रित उत्साह विषाद की स्थिति में रोगी में उत्साह तथा विषाद की स्थिति बारी-बारी से आती है। इस स्थिति में स्थिति में रोगी में उत्साह तथा विषाद की स्थिति बारी-बारी से आती है। इस स्थिति में रोगी कभी उत्साह स्थिति के लक्षण प्रकट करता है तथा थोड़ी देर बाद विषाद में डूब जाता है। इस स्थिति में रोगी कभी खिलिखलाकर हँसता, नाचता तथा दौड़ता है, तो दूसरे ही क्षण जोर-जोर से रोने लगता है अथवा विषाद में चला जाता है।

भावात्मक मनोविकृति के कारण

मनोविदलन (Schizophrenia) के समान ही उत्साह-विषाद मनोविकृतियाँ भी जैविक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कारणों से उत्पन्न होती है। नीचे इन्हीं तीन कारणों की चर्चा की गई है।

(i) **जैविक कारण** (Biological Factors) – अनेक शोध कार्यों के परिणाम से स्पष्ट हो चुका है कि उत्साह-विषाद मनोविकृतियाँ जैविक कारणों का परिणाम होती है। समरूप यमजों (Identical Twins) का अध्ययन करने पर कालमैन (Kallmann) के समरूप यमजों में उत्साह-विषाद मनोविकृति की सहसम्बद्धता 16% होती है। इसी प्रकार रेन (Renni) तथा फाउलर (Fowler) ने निष्कर्ष निकाला कि 63% रोगियों ने यह रोग वंशानुक्रम से प्राप्त किया है। क्रेश्मर (Kretschmer) तथा पावलॉव (Pavlov) जैसे मनोवैज्ञानिक उत्साह-विषाद की उत्पत्ति मस्तिष्क क्रियाओं की अव्यवस्था मानते है।

(ii) **मनोवैज्ञानिक कारण** (Psychological Factors) – कुछ व्यक्ति संबंधी आयाम भी अधिकांशत: उन्मादी-अवसादी स्थिति के जनन में विशिष्ट भूमिका अदा करते देखे जाते हैं। जो व्यक्ति सामाजिक प्रतिष्ठा तथा सामाजिक अनुमोदन के प्रति अत्यधिक अधीर व आकांक्षी रहते है, या फिर, अपनी अपरिपक्वता के कारण अत्यधिक ईर्ष्या व प्रतिस्पर्धा रखने वाले होते हैं, उनको भी कुण्ठित होने पर, या फिर, दूसरे व्यक्तियों की अप्रत्याशित सफलता से प्राय: अति दुखी व अवसादी होते देखा जाता है। ऐसे ही, व्यावसायिक तथा वैवाहिक जीवन की घोर विफलताएँ, तलाक, प्रियजन की मृत्यु घोर आत्महीनता, तीव्र ताप, अपराध भावना, संवेगात्मक संबंधों का विच्छेदन व बिछुड़न कुछ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संवेदनशील व्यक्तियों में अवसादी स्थिति के लिए उत्तरदायी होते देखा जाता है।

(iii) **सामाजिक कारण** (Social Factors) – उत्साह-विषाद मनोविकृतियों के विकास पर मनोविदलन की ही भाँति सामाजिक परिस्थतियों का भी प्रभाव पड़ता है। मनोविदलन के ही समान सरल सामाजिक व्यवस्थाओं में उत्साह-विषाद मनोविकृतियाँ अपेक्षाकृत कम पाई जाती हैं जबकि संघर्षपूर्ण जीवनयुक्त समाज में यह रोग अधिक पाया जाता है। इसी प्रकार भौतिक रूप से उन्नत समाज में भी यह रोग अधिक मात्रा में देखने को मिलता है। जिन समाज में आधुनिक शिक्षा व उद्योगों का विकास अधिक है वहाँ भी यह रोग अधिक होता है। इसी प्रकार, ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरीय क्षेत्रों में उत्साह-विषाद मनोविकृतियाँ अधिक पाई जाती है। जिन समाज में तलाक लेना अधिक सरल तथा प्रचलित है वहाँ भी यह रोग अधिक पाया जाता है।

भावात्मक मनोविकृति के उपचार

उत्साह-विषाद मनोविकृतियों से पीड़ित रोगियों को विभिन्न प्रकार के प्रशान्तक (Tranquillizers) देना लाभदायक रहता है। प्रप्रशान्तकों के प्रभाव से रोगियों की अतिसक्रियता (Hyper Activitation) कम हो जाती है। फलत: वे अधिक उत्साह या उन्माद की स्थित में नहीं जा पाते है। प्रशान्तकों का प्रयोग इस रोग का स्थायी उपचार

नोट

नहीं है, यह केवल सामयिक शान्ति प्रदान करते हैं। स्थायी उपचार हेतु इन्हें मानसिक अस्पताल में भर्ती करा देना सदैव ठीक रहता है। जहाँ उन्हें आघात-चिकित्सा (Shock Therapy), सामाजिक चिकित्सा (Socio Therapy) तथा मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) की सहायता से स्थायी उपचार दिये जाते है। इन रोगियों को तेल की मालिश के बाद गुनगुने जल से स्नान कराना भी लाभदायक रहता है। इन रोगियों के इलाज के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि ये रोगी लम्बे समय तक निष्क्रिय ना रहे, क्योंकि निष्क्रियता की स्थिति में रोगी संवेगात्मक अव्यवस्थाओं की दुनिया में जाकर उत्साह-विषाद का दर्शन कर सकते हैं अत: इन रोगियों को लिखने, पढ़ने, काम करने तथा मनोरंजन की सुविधाएँ बराबर मिलती रहनी चाहिए। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इन रोगियों को ऐसे उद्दीपक (Stimulus) प्रदान न किये जायें जिससे की इनको पुन: उत्तेजना हो। इन रोगियों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार सदैव लाभदायक रहता है।

4.34 सारांश

व्यक्ति के शरीर में मस्तिष्क का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि व्यक्ति जो भी कार्य करता है वह अपने मस्तिष्क के संकेत पर या मन के अनुसार करता है। जब तक हमारा मन स्वस्थ नहीं रहता है, तब तक हम किसी भी कार्य को ठीक से नहीं कर सकते। संसार में वे ही व्यक्ति भौतिक और सामाजिक परिस्थितियों में अपने को समायोजित (Adjust) कर पाते हैं जिनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है। शिक्षा-मनोविज्ञान के अन्तर्गत शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व विकास के उपायों पर विचार किया जाता है। व्यक्ति का विकास तभी सम्भव है, जब बालक के शरीर और मन पूर्ण रूप से स्वस्थ हों, क्योंकि शरीर और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। इसलिए शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान को, 'मानसिक आरोग्य' नाम भी दिया गया है। मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ है–मन को स्वस्थ या निरोग रखने वाला विज्ञान। जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य-विज्ञान का सम्बन्ध शरीर के स्वास्थ्य से होता है, उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य से होता है। मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के अन्तर्गत मन को स्वस्थ रखने के नियमों और उपयोग का अध्ययन किया जाता है।

वेबस्टर डिक्शनरी (Webster's Dictionary) में मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया गया है–"मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान वह विज्ञान है जिसके द्वारा हम मानसिक स्वास्थ्य को स्थिर रखते हैं तथा पागलपन और स्नायु सम्बन्धी रोगों को पनपने से रोकते हैं। साधारण स्वास्थ्य-विज्ञान में केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ही ध्यान दिया जाता है, परन्तु मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान में मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य को भी सम्मिलित किया जाता है, क्योंकि बिना शारीरिक स्वास्थ्य के मानसिक स्वास्थ्य सम्भव नहीं है।" इस कथन के अनुसार शिक्षण-प्रक्रिया में शिक्षार्थी एवं शिक्षक दोनों के मानसिक स्वास्थ्य का ठीक होना अनिवार्य है। मानसिक रूप से स्वस्थ न होने पर बालक को शिक्षा ग्रहण करने में तथा शिक्षक को शिक्षण-कार्य में सफलता नहीं मिलती। तनाव या प्रतिबल (stress) आधुनिक समाज की एक बड़ी समस्या है। आधुनिक शोधों से यह पता चलता है कि करीब 75% रोगों का कारण यही तनाव होता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को उद्दीपक (stimulus) कारकों के रूप में समझने की कोशिश की है और कहा है कि कोई भी घटना (event) या परिस्थिति जो व्यक्ति को असाधारण अनुक्रिया करने के लिए बाध्य करता है तनाव कहलाता है। घटनाएँ जैसे भूकंप, अगजनी, नौकरी छूट जाना,

व्यवसाय का खत्म हो जाना, प्रियजनों की मृत्यु आदि कुछ प्रमुख घटनाएँ हैं जो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती हैं।

नोट

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को अनुक्रिया (response) के रूप में परिभाषित करने की कोशिश की है। मनोवैज्ञानिकों का तीसरा समूह वह है जिसने उपर्युक्त दोनों ही दृष्टिकोणों के अनुसार तनाव को न सिर्फ उद्दीपक और न ही सिर्फ अनुक्रिया बल्कि इन दोनों के संबंध (relationship) के आधार पर परिभाषित करने की कोशिश की है। इस उपागम को संबंधात्मक उपागम (transactional approach) कहा जाता है। ऐसे मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कुछ परिस्थिति या घटनाएँ निश्चित रूप से ऐसी होतीं हैं जो सभी व्यक्तियों के लिए तनावपूर्ण होती हैं। कई ऐसी भी घटनाएँ या परिस्थितियाँ होती हैं जो कुछ व्यक्तियों में तनाव उत्पन्न कर सकती हैं। अत: तनाव को उद्दीपक के रूप में सार्थक ढंग से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। जब व्यक्ति तनाव (stress) में होता है, तो वह उसे अनुभव करता है तथा उसके प्रति प्रतिक्रिया (React) करता है।

मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ तनाव में कई तरह की मनोवैज्ञानिक या मानसिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। दूसरे शब्दों में, तनाव में व्यक्ति का मानसिक कार्यों में एक तरह का विघटन (disruption) या क्षुब्धता पायी जाती है। तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या उद्दीपक के प्रति व्यक्ति दैहिक प्रतिक्रियाएँ भी करता है। अक्सर देखा गया है कि तनावपूर्ण परिस्थिति से घिर जाने पर व्यक्ति में पेट की गड़बड़ी, हृदय गति का असामान्य होना, श्वसन गति में परिवर्तन आदि होते हैं। ये सभी दैहिक प्रतिक्रियाओं के उदाहरण हैं।

व्यक्ति में किन कारणों से तनाव उत्पन्न होता है, इसका गहन अध्ययन मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है और कई कारकों की एक सूची तैयार की गयी है जिनसे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। 1. तनावपूर्ण जीवन की घटनाएँ 2. प्रेरकों का संघर्ष 3. दिन प्रतिदिन की उलझन 4. कार्य उत्पन्न तनाव 5. पर्यावरणीय स्रोत।

तनाव का कारण चाहे जो भी हो, यह व्यक्ति के सांवेगिक एवं दैहिक स्वास्थ्य पर खराब असर डालता है। अत: इसे कम करने के उपायों पर मनोवैज्ञानिकों ने गम्भीरता से सोचा है। तनाव को कम करने से सम्बद्ध व्यवहार को समायोजी व्यवहार कहा जाता है। समायोजी व्यवहार को मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। जैसे, गुडस्टीन एवं लेनियोन (Goodstein and Lanyon, 1975) ने समायोजी व्यवहार को इस प्रकार परिभाषित किया हैं–

- "समायोजी व्यवहार से तात्पर्य उस सीमा से होता है जहाँ तक व्यक्ति कम-से-कम तीन तरह के चुनौतियों से निबटने में सक्षम होता है–(1) भौतिक वातावरण से मिलने वाली प्रत्यक्ष चुनौतियाँ (2) अपनी दैहिक सीमाओं से मिलने वाली चुनौतियाँ (3) अन्तर्वैयक्तिक चुनौतियाँ।"
- प्रतिबल या तनाव की गंभीरता है निपटने के लिए स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिकों (health psychologists) ने प्रतिबल प्रबंधन (stress management) की कुछ प्रविधियों की ओर ध्यान दिया है। प्रतिबल प्रबंधन से तात्पर्य एक ऐसे कार्यक्रम से होता है जिसमें लोगों को तनाव के स्रोतों से अवगत कराते हुए उनसे निपटने के आधुनिक एवं वैज्ञानिक तरीकों के बारे में शिक्षा दी जाती है। इतना ही नहीं, ऐसे कार्यक्रम में तनाव को कम करने के कौशलों का अभ्यास भी करवाया जाता है।

नोट

चिंता विकृति (anxiety disorder) से तात्पर्य ऐसी विकृति से है जिसमें व्यक्ति बेचैनी तथा आशंका का अनुभव करता है। वह अस्पष्ट दिशाहीन चिन्ता का अनुभव करता है, जिसका स्रोत वह बता नहीं पाता है। DSM–IV में मिकिसकों ने 'स्नायुविकृति' (neurosis) जैसे नैदानिक श्रेणी वाले मानसिकि विकृतियों को एक, दो व तीन श्रेणी में रखा है। इस पाठ के अन्तर्गत हमने इन तीनों श्रेणियों के अर्थ, कारण व उपचारों का वर्णन किया है। ये तीन श्रेणियाँ है- चिंता विकृति, कायाप्रारूप विकृति तथा विच्छेदी विकृति। चिंता विकृति में दुर्भिति, मनोग्रस्ति-बाध्यता विकृति जिसमें दुर्भिति में व्यक्ति असंगत भय से भयभीत रहता है तथा मनोग्रस्ति-बाध्यता में बार-बार एक ही तरह का विचार मन में आना और एक ही व्यवहार करने के लक्षण पाये जाते है।

इसी प्रकार कायाप्रारूप में रूपांतर विकृति जिसे पहले रूपांतर उन्माद भी कहते है, इसमें संवेदी लक्षण तथा पैशीय लक्षण प्रमुख है। मनोविच्छेदी विकृति एक महत्त्वपूर्ण एवं सामान्य (common) मानसिक रोग है जिसमें रोगी के मानसिक प्रक्रियाएँ विशेषकर स्मृति या चेतना विच्छेदित हो जाता।

मनोविकृति के रोगियों के बारे में सामन्यता यह बात कही जा सकती है कि केवल एक तिहाई रोगी ही अपने उपचार के लिए चिकित्सालय जाते हैं, शेष रोगी की देखभाल उनके परिवार के सदस्य ही करते है। ऐसे रोगियों की औसत आयु लगभग 44 वर्ष है।

मनोविकृति के रोगी का अहं और पराहम् अत्यन्त निर्बल हो जाता है। ऐसे रोगियों का इदम, अहम् और पराहम् (id, ego and super ego) का समन्वय छिन्न-भिन्न हो जाता है।

इस पाठ के अन्तर्गत हमने मनोविकृतियों का वर्गीकरण कर मनोविदालिता, स्थिर व्यामोही मनोविकृति तथा भावात्मक मनोविकृतियों का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया है, उनके लक्षणों, कारणों उवं उपचारों की जानकारी होने से हम सही तरह की मदद समाज को प्रदान कर सकते हैं।

व्यक्तित्व विकृतियों के तौर पर डिजाइन किया गया अनुदेशन है, जिसमें व्यक्तित्व विकृतियों की परिभाषा, अर्थ, स्वरूप, उसकी पहचान, प्रकार व निदान आदि शामिल है। इसके अन्तर्गत व्यक्तित्व विकृति के 10 प्रकार बताये गये हैं। इन प्रकारों में सीमान्त रेखीय व्यक्तित्व विकृति, आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति, स्किजोआयड व्यक्तित्व विकृति तथा स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृति का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। इन प्रकारों में समाज विरोधी व्यक्ति पर भी शुरूआत में प्रकाश डाला गया है, क्योंकि मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि समाज विरोधी व्यक्ति सबसे अधिक प्रमुख है।

इसके अलावा इन प्रकारों के लक्षणों तथा कारणों का भी वर्णन इसमें किया गया है। इन कारणों को मुख्य तीन श्रेणियों; मे बाँटा गया है। जैविक कारक मनोसामाजिक कारक तथा सामाजिक-सांकृतिक कारक जहाँ तक व्यक्तित्व विकृति के उपचार; तथा प्रतिफल का प्रश्न है, इस पर मनोवैज्ञानिकों ने प्रकाश डाला है। ऐसी विकृति वाले व्यक्तियों का उपचार थोड़ा कठिन कार्य अवश्य है फिर भी उन्हें विशेष परिस्थिति अर्थात् कारागार; आदि में रखकर सफलतापूर्वक उपचार किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि समायोजित व्यक्ति वह है जो नमनीयता, सृजनात्मकता तथा सहजता आदि गुणों के आधार पर जीवन की कठिनाइयों तथा अस्पष्टता का सामना करने की योग्यता रखता है। आज का बालक कल का जिम्मेदार नागिरक होगा। अत: शिक्षक का दायित्व है कि वह ऐसा वातावरण तैयार करे, जिससे बालक में कुसमायोजन की समस्या न उत्पन्न हो।

दिवास्वप्न को युक्ति संगत योजना, प्रत्यावर्तन में व्यक्ति की क्षमताओं के अनुरूप उद्देश्यों का ताप, निषेध प्रवृत्ति में दृढ़ रूप से नहीं कहकर दमन युक्ति में वाणी व विचारों पर नियंत्रण कर, तादात्मीकरण में केवल सांवेगिक रूप में जुड़कर स्वयं के विकास के दायित्व में अपनी कमजोरी को दूर करना आदि सकारात्मक युक्ति

द्वारा शिक्षक बालक के समायोजन में महत्ती भूमिका निभा सकता है। इनके अलावा छद्यवेशीय समायोजन की युक्तियों वस्तुत: बुद्धिमत्तापूर्ण समायोजन के लिए संकेत है। इनके नकारात्मक व सकारात्मक दोनों पक्ष हैं। शिक्षक की सकारात्मक पक्ष का सकारात्मक ढंग से विद्यार्थियों के स्वस्थ समायोजन के लिए प्रयोग करना आदि।

नोट

4.35 अभ्यास प्रश्न

1. मानसिक स्वास्थ्य से आप क्या समझते हैं?
2. मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान किसे कहते हैं? उपयुक्त परिभाषाओं के साथ समझाइए।
3. बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाले कारकों का विश्लेषण कीजिए।
4. तनाव अथवा प्रतिबल का अर्थ एवं विशेषताएँ बताइए।
5. तनाव की प्रतिक्रियाएँ कितने प्रकार की होती हैं? विस्तार से समझाइए।
6. तनाव में की गई प्रतिक्रियाओं के कारक तत्वों का विश्लेषण कीजिए।
7. तनाव मापन की विधियाँ समझाइए।
8. तनाव कम करने के उपाय एवं उसके प्रबंधन को विस्तार से समझाइए।
9. मनोस्नायुविकृति अथवा स्नायुविकृति क्या है? इसे क्यों चिंता विकृति पद द्वारा विस्थापित कर दिया गया है?
10. सामान्यीकृत चिन्ता विकृति क्या हैं? इसके कारण प्रस्तुत करें?
11. दुर्भिति से आप क्या समझते हैं? दुर्भिति के उपचार के विभिन्न प्रविधियों का वर्णन करें।
12. मनोग्रसित - बाध्यता विकृति के कारणों की विवेचना करें।
13. रूपांतर विकृति या रूपांतर हिस्ट्रीया के उपचारों का वर्णन करें।
14. कायाप्रारूप विकृति से आप क्या समझते है? उसके कारणों के विवेचना करें।
15. व्यक्तित्व विकृति के स्वरूप पर प्रकाश डालें। किन-किन कसौटियों के आधार पर आप ऐसे व्यक्तित्व विकृति की पहचान करेंगे।
16. व्यक्तित्व विकृति के पहचान या निदान में सम्मिलित मुख्य समस्याओं का उल्लेख करें।
17. व्यक्तित्व विकृति के कारणात्मक कारकों का वर्णन करें।
18. स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृति का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
19. समाज-विरोधी व्यक्ति का अर्थ बतलावें। सीमान्त रेखीय व्यक्तित्व विकृति के मुख्य लक्षणों का वर्णन करें।
20. मनोविदलता से आप क्या समझते है? इसके लक्षण एवं उपाय बताइये।
21. पैरानोयया मनोविकृति क्या है? इसके कारणों का वर्णन कीजिए।
22. मनोविदलता को परिभाषित करे तथा कारणों का वर्णन करें।
23. भावनात्मक मनोविकृति क्या है? इसके उपचारों की व्याख्या करें।
24. मनोविकृति को समझाये तथा उसका वर्गीकरण कीजिए।

नोट

25. व्यवहारवादी प्रतिमान के मूल सिद्धांत को समझाइए।
26. 'मिथ्या समायोजन' बालक पर भविष्य में किस तरह का प्रभाव पड़ता है?
27. अध्यापक यर्थात की स्थिति का स्वयं सामना करने के लिए बालक को किस प्रकार तैयार कर सकता है?
28. समायोजन प्रतिमानों के सिद्धांत परस्पर किस प्रकार भिन्न है? इन प्रतिमानों में कौन-सा समायोजि प्रतिमान आपके विचार से उपयुक्त है और क्यों?
29. यथार्थ का सामना करने से बचने के लिए बालक कौन-कौन सी रक्षा युक्तियों को अपनाता है? आप एक शिक्षक के रूप में इन रक्षा युक्तियों को बालकों के स्वस्थ समायोजन में किस प्रकार युक्त करेंगे।
30. तनाव के संप्रत्यय को स्पष्ट कीजिए। तनाव कितने प्रकार का होता है? प्रत्येक की व्याख्या कीजिए और बताइए कि बालक को वह क्या क्षति पहुंचाता है?
31. सुसमायोजित व्यक्तित्व की क्या विशेषतायें हैं? इन विशेषताओं के आधार पर बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिए क्या प्रयास किया जा सकता है?
32. प्रत्यक्ष संयोजन तथा रक्षात्मक संयोजन में अंतर बताइए।
33. प्रतिक्रिया विधान से आप क्या समझते हैं?
34. समायोजन की प्रकृति की विशेषताओं को समझाइए।

4.36 संदर्भ पुस्तकें

- डॉ. एस.पी. गुप्ता : शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- डॉ. आर.एन. सिंह : आधुनिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मदिंर आगरा -2
- डॉ. अरूण कुमार सिंह : आधुनिक मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना
- डॉ. पी.डी. पाठक : शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मदिंर आगरा - 2
- सिंह, अरूण कुमार (2002) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पिलकेशंस
- कार्टराइट (1971) साइकोलोजिकल एडजस्टमेंट विहेवयर एंड द इनर वर्ल्ड, शिकागो, रेड मैकनेले 1971
- स्किनर सी. ई. (1984) एजूकेशन साइकोलोजी प्रेन्टिस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली